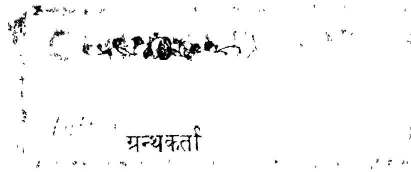
ओ३म् ।

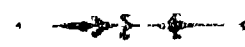
विश्वदिग्दर्शन ।



ग्रन्थकर्ता

स्वानुभवी पं० रामरत्न थपल्याल

माघ १९९० विक्रमीय, जनवरी १९३४ ईस्वी



प्रथमावृति १०००

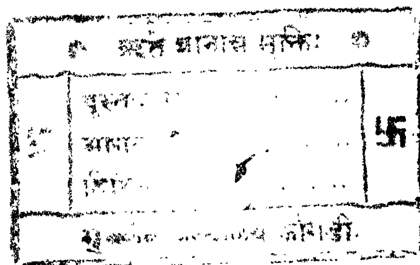
मूल्य २॥) सजिल्द

मुद्रक—भास्कर प्रेस, देहरादून ।

प्रकाशक—

श्री पूज्य पिता पं० धर्मदत्त जी
व
श्री पूज्य माता सरस्वती जी } के तनय रामरत्न

ग्राम चिलोली
जि० गढ़वाल ।



पुस्तक प्राप्ति स्थान—जगदीश एण्ड ब्रादर्स
बुकसेलर पल्टन बाजार, देहरादून ।

मुद्रक

पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार,
अध्यक्ष भास्कर प्रेस,
देहरादून ।

भूमिका

मैं उस सत्य आनन्द और ज्ञानमय सच्चिदानन्द परमात्मा को कोटिशः नमस्कार करता हूं, जो अपनी सत्य प्रेरणा से संसार-कल्याण के लिये अपने भक्तों की बुद्धि में सत्य रूप से प्रकाशित हो कर सत्य ज्ञान उत्पन्न करता है। उसकी सत्वगुण शक्ति से विश्वविराट् और प्राणियों के शरीर उत्पन्न होते हैं, जिस से प्राणियों को उस के सत्य ज्ञान के विना आनन्द नहीं हो सकता।

मुझ में इतनी योग्यता नहीं कि मैं निराधार "विश्वदिग्दर्शन" को लिख सकता। किन्तु परमात्मा सर्व समर्थ है और आत्मा परमात्मा ही है। यह पुस्तक केवल आत्मा का अनुभव मात्र है। विना शुद्ध अनुभव के इस का एक शब्द भी नहीं लिखा गया। शुद्ध ज्ञान से कार्य करना कल्याणकर है। महात्मा जन अपने कल्याण के साथ साथ संसार का कल्याण करने में समर्थ होते हैं।

आत्मा सर्व समर्थ है। उस की सामर्थ्य में कोई कार्य्य दुर्लभ नहीं। स्वप्न की सृष्टि, जिस को हम स्वप्न में देखते हैं, क्या उस को रचने वाला कोई अल्पज्ञ हो सकता है? अगर वह अल्पज्ञ माना जाय तो स्वप्न की सृष्टि रचने में कौन सर्वज्ञ हो रहा है? भेद सिर्फ इतना है कि सर्वज्ञ जिस परदे पर अपनी अनन्त सामर्थ्य से स्वप्न की सृष्टि रचता है, वह असत्य का है। इसलिये

स्वप्न की सृष्टि जैसी स्वप्न में बनती है, जागने पर वैसी सत्य नहीं भासती। यदि असत्य परदे के स्थान में सत्य का परदा होता तो स्वप्न की सृष्टि भी सत्य होती।

कहने का तात्पर्य्य यह है कि स्वप्न का सृष्टि-कर्ता स्वप्न की अनेक सृष्टि रचने को प्रत्यक्ष और सर्व समर्थ है। किन्तु जिस पर स्वप्न की सृष्टि का निर्माण होता है, वह असत्य है। इस लिये जागने पर स्वप्न की सृष्टि प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देती। अब आप स्वप्न को सत्य कहोगे या असत्य? क्यों कि आप को स्वप्न का स्मरण तो हो रहा है, लेकिन स्वप्न की सृष्टि नहीं दिखाई दे रही है।

अगर आप कहें कि स्वप्न असत्य है, तो आप का स्मरण सत्य कैसे बना है। अगर आप कहें कि स्वप्न सत्य है, तो जागने पर स्वप्न की सृष्टि प्रत्यक्ष क्यों नहीं दिखाई देती, क्यों कि सत्य प्रत्यक्ष है।

मैं अब आपको बताता हूं कि स्वप्न सत्य है या असत्य। स्वप्न का कर्ता तो सत्य है, इसलिये उसका कार्य्य भी सत्य है, जो जागने पर आप को स्मरण हो रहा है। लेकिन स्वप्न के कर्ता ने जिस आकार के धरातल पर स्वप्न की सृष्टि को रचा, वह असत्य था, जो निद्रा से जागने पर नष्ट हो जाता है। इसलिये उस में बनी हुई सृष्टि भी नष्ट हो जाती है, जिस से जागते ही स्वप्न की सृष्टि अप्रत्यक्ष होती है।

यह दशा तो स्वप्न की है। लेकिन जीवन और मरण में क्या होता है? जरा सावधान हो कर सोचो हम कौन हैं और कब से हैं? बस इसी पर निर्णय हो जायेगा। जिस शरीर में हम हैं, उस से पहिले हम क्या थे? और उस से भी पहिले क्या थे? इस शरीर से पहिले भी हम अवश्य कुछ थे और उस से भी पहिले कुछ थे। इसी तरह अगर हम अपने अस्तित्व की हद ढूंडें तो एक दिन अपनी असलियत को समझ सकते हैं।

यदि आप कहें कि हम पञ्च तत्व के योग से बने हैं और उन के नाश होने पर कुछ शेष नहीं रहता। इस मत के अनुसार भी मृत्यु के पश्चात् मृतक शरीर तो अवश्य रहता है जिस को आप देख रहे हैं। उस को जलाया जाय या धरती पर गाड़ा जाय फिर भी वह कुछ रह जाता है, क्यों कि वह भस्म होकर या सड़ गलकर रूपान्तर से पञ्चतत्व में विद्यमान रहता है। लेकिन अब जरा फिर बिचार करो कि हमारा शरीर नाश हो कर तत्वों में जाता है, लेकिन तत्व नाश होकर कहां जाते हैं?

सुनिये! जब सूर्य्य चन्द्रमा तारे आदि सब बुझ कर तत्वों सहित नाश हो जाते हैं, तब वे सब रूपान्तर हो कर अन्धकार में रहते हैं। लेकिन अन्धकार का भी अस्तित्व नहीं होता। क्यों कि हम देखते हैं रात्रि को अन्धकार होता है और सूर्य्य उदय होते ही वह नहीं रहता। इसी तरह अन्धकार चाहे छोटे विस्तार में हो चाहे बड़े विस्तार में, उस का अस्तित्व नहीं है। महाअन्धकार भी लोप होजाता है। परन्तु वह लोप किस में होता है? अन्धकार से परे निर्विकार चैतन्य सत्ता है, उसमें वह लोप हो

जाता है । अब चाहे किसी मार्ग से चलो अपने असली स्वरूप का पता आप को भली भान्ति मालूम हो जायेगा ।

प्रत्येक का असली अस्तित्व वही चैतन्य सत्ता है। उसी में तमाम विश्व ब्रह्माण्ड लय होता है और लय होने के पश्चात् उस की क्रिया से फिर उत्पन्न होता है ।

सर्व समर्थ अपनी क्रिया से जिस परदे में विश्वब्रह्माण्ड को उत्पन्न करता है, वह भी स्वप्न के परदे की तरह असत्य का है। इसलिये उस के नाश होने पर विश्वब्रह्माण्ड का अस्तित्व नहीं रहता ।

अब आप को अच्छी तरह मालूम हो गया होगा कि आप सर्व समर्थ और आद्यकाल से हैं। लेकिन अनन्त काल से अन्धकार के विस्तार में रहने से आप ने अपनी सर्वज्ञता का ज्ञान खो दिया है। अज्ञान के कारण अल्पज्ञता आगई है। जिन महात्माओं को आत्म-ज्ञान द्वारा सदैव यह दृश्य जैसा का तैसा भास रहा है, वे किसी शरीर में भी सर्वज्ञ होते हैं ।

इस पुस्तक के विषय, विश्वजनों के हितार्थ संक्षेप में लिखे गये हैं। हरएक विषय इतने गहन हैं कि मैं इस अवस्था में आजन्म पर्यन्त एक विषय को भी विस्तृत लिखने का साहस करता तो नहीं लिख सकता। यह भी सम्भव है कि मैं जिस रूप से प्रत्येक विषयों को देख रहा हूं, लिखने में उन का रूप जैसा का तैसा कहां तक वर्णन होसका ।

इस ग्रन्थ को केवल स्व-अनुभव लिखना, विश्वजनों को आश्चर्य्य जनक प्रतीत होगा। प्रायः पिण्डों के वर्णन में तो विशेष आश्चर्य होगा। मैं इस विषय में एक छोटा सा उदाहरण देता हूं। एक काश्तकार अपनी खेती में ज्ञान और परिश्रम से ईख पैदाकर उस से मिश्री बनाना जानता है। एक दूसरा आदमी उस से पूछता है कि इस मिश्री को तुमने किस बाजार से खरीदा। कृषक कहता है, मैंने अपने खेत में ईख पैदा कर अपने आप मिश्री बनाई है। लेकिन पूछने वाले को विश्वास नहीं होता, क्यों कि उस के ज्ञान में तो मिश्री बाजार में होती है। अगर वह समझदार होता तो मिश्री बनाने वाले के प्रति अविश्वास कभी नहीं करता। क्यों कि किसी भी बाजार में जो मिश्री देखने में आती है, वह अवश्य किसी खेत में ईख के रूप में पैदा हुई होगी और उस को किसी न किसी ने बनाया होगा। फिर कृषक के बनाने में आश्चर्य क्यों। इसी तरह समस्त ग्रन्थ किसी न किसी बुद्धि रूप खेत में उत्पन्न हुये हैं और किसी न किसी ने लिख कर उन को बनाया है।

सर्व शास्त्र बुद्धि के आधीन हैं, न कि बुद्धि शास्त्रों के आधीन है। जो सर्वज्ञ हैं, उनके ज्ञान में कोई भ्रम नहीं होसकता। भ्रम केवल अज्ञान और अल्पज्ञता के अन्दर आ सकता है।

प्रायः खगोल के विज्ञान-वेत्ताओं को पिण्डों के वर्णन में और उनकी दूरी के सम्बन्ध में भी सन्देह होगा कि पृथिवी में रहने वाले मनुष्य का कथन इस विषय में कैसे प्रमाणित माना जाय। क्योंकि आज कल यन्त्रों के आधार से विश्वास दिलाने पर तो

विश्वास हो सकता है, लेकिन स्व-अनुभव विश्वास कैसे माना जाय।

इस विषय पर प्रश्न किया जाता है कि प्रथम तो यन्त्रों के आधार पर बृहत् आकाश के पिण्डों का सत्य २ निर्णय करना असम्भव है। दूसरा यदि यन्त्रों के ही आधार पर भी माना जाय तो हम जिस वस्तु को साधारण दृष्टि से देखते हैं, अगर उसी को दूरबीन आदि यन्त्रों से देखें तो उसके रूप में छोटाई बड़ाई का अन्तर मालूम होता है। अगर उसी वस्तु को किसी अन्य बड़े यन्त्र से देखें तो उसके रूप में विशेष अधिक छोटाई बड़ाई का अन्तर मालूम होता है। अब हम उस वस्तु का असली स्वरूप कौन सा मानें। जो साधारण दृष्टि से मालूम पड़ता है उसको, या जो दुरबीन से देखा जाता है उसको, या जो बड़े यन्त्र से देखा जाता है उसको मानें। निर्णय करने पर बड़ी कठिन समस्या हो जाती है।

यदि साधारण दृष्टि से देखने वाले स्वरूप को सत्य मानें, तो यन्त्रों के आधार पर देखना असत्य प्रतीत होता है। यदि यन्त्रों के आधार से देखना सत्य मानें तो साधारण दृष्टि असत्य होती है। और यदि ऐसा मानें कि साधारण दृष्टि ही असत्य है तो सिद्ध होता है कि साधारण दृष्टि जो दूरबीन आदि यन्त्रों से देखती है, वह भी असत्य है। अब सत्य दृष्टि कौन सी मानी जाय।

अगर हम सत्य देखना चाहें तो साधारण दृष्टि से भी नेत्रों द्वारा किसी वस्तु के सत्य स्वरूप को नहीं देख सकते। क्योंकि

उपाधिमय दूरबीन आदि यन्त्रों की तरह मायाकृत आंखें भी एक तरह उपाधिमय हैं। क्योंकि देखने का काम प्रकाश करता है आंखें तो उसी प्रकाश से देखती हैं, इसलिये अन्धी आंखों से (प्रकाश के बिना) रूप का ज्ञान नहीं होता।

अगर हम आंखों के जरिये भी देखना छोड़कर स्वतः प्रकाश से ही देखें तो उससे किसी वस्तु का असली स्वरूप देख सकते हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि अगर आंखों से भी न देखा जाय तो असली प्रकाश कहां है, जो देख सकता है ? मैं आपको याद दिलाता हूं कि नेत्रों की सहायता के बिना आप उस प्रकाश से कभी २ देखते हैं। आपने कभी स्वप्न देखा होगा। स्वप्न की सृष्टि जो आपने देखी है, क्या ? वह नेत्रों के जरिये देखी गई है ? नहीं, नेत्रों से नहीं देखी गयी, क्योंकि निद्रावस्था में नेत्र बन्द रहते हैं। अब जरा सोचो कि स्वप्न की सृष्टि कैसे देखी गई। उसी प्रकाश से देखी गई, जो तुम्हारे नेत्रों में आकर देखता है।

लेकिन स्वप्न की सृष्टि भी शुद्ध प्रकाश से नहीं देखी जाती। निद्रावस्था में अज्ञान का परदा जो जड़त्व से प्राणियों के शरीर को ढकता है, वह शुद्ध प्रकाश में उपाधि रूप से रहता है। यदि उसके स्थान में पूर्ण चैतन्य अवस्था प्राप्त हो सके और उससे देखा जाय तो विश्वविराट् के अन्तर्गत अणु से ब्रह्माण्ड पर्यन्त का स्वरूप यथार्थ देखा जायेगा। उस देखे हुए को ही सत्य मानिये।

यन्त्रों या साधारण दृष्टि से दूर दूर का सत्य--निरीक्षण छोड़कर निकट से निकट की दूरी नाप के विषय में कहता हूं। ४, ५ मनुष्यों में पैमाने से एक इञ्च की दूरी नपवाइये। जब सब अपनी २ बुद्धिमत्ता से एक इञ्च की दूरी नाप चुके हों तब एक अन्य किसी निरीक्षक से सब के नाप की जांच कराइये। देखने से सब में अणु २ मात्र का अवश्य फर्क मालूम होगा। फिर भी निश्चय नहीं होता कि किस का नाप इञ्च की दूरी में सत्य है। सत्य दृष्टि से पैमाने का स्वरूप देखा जाता तो इञ्च की दूरी भी सही निकलती।

सर्व साधारण जानकारी के लिये लेखन--शैली साधारण भाषा में लिखी गई है। अलङ्कार-प्रेमियों को यह विषय शायद अनरस सा मालूम होगा, क्योंकि वैज्ञानिक विषय प्रथम तो स्वत: ही अनरस मालूम होता है, फिर मैं लेखन--शैली में शब्द आडम्बर से घृणा करता हूं। मेरा ध्यान तो केवल लक्ष के चित्र खींचने पर रहा। विषयों के ज्ञान होने पर भी लौकिक जनाने के लिये प्रत्येक विषयों का क्रम (आदि, मध्य, अन्त) निराधार रखना मेरे लिये कितना कठिन काम था, पण्डितजन इसका अनुभव कर सकते हैं।

मैं गृहस्थाश्रम की पवित्रता पर देवियों का ध्यान भी इस ओर आकर्षित करता हूं और सती देवियों का यथेष्ट आदर करता हूं। इस ग्रन्थ के निर्माण में मेरी अर्द्धाङ्गिनी श्री प्रतिमादेवी पूर्ण सहायक रहीं। यद्यपि वे पण्डिता नहीं हैं, तथापि उन्होंने गृह के सारे कार्य भारों को अपने ऊपर उठाकर मेरी शान्ति और

स्वतन्त्रता में सती स्त्रियों की तरह पूर्ण सहायता की, जिस शान्ति और स्वतन्त्रता के बिना ग्रन्थ का निर्माण करना मेरे लिये कठिन था।

मैं पुस्तक पर विद्वान-सम्मतिदाताओं और श्रीमान पं० चन्द्रमणि जी विद्यालङ्कार पालीरत्न (जो प्रथम गुरुकुल कांगड़ी के प्रोफेसर थे) अध्यक्ष भास्कर प्रेस देहरादून को धन्यवाद देता हूं कि आपने पुस्तक का यथेष्ट आदर किया है ।

क्षुधा के होते हुए, उसकी पूर्ति का ध्यान होता है। भोगों की पूर्ति होने पर प्रतिष्ठा की, उसके होने पर संसार के प्रभुत्व की और प्रभुत्व-भोगों की पूर्ति पर ईश्वरीय ज्ञान की इच्छा होती है।

प्राचीन भारत इस सर्वोच्च सभ्यता के शिखर पर पहुंच चुका था। लेकिन जितना उत्थान हुआ था. उसके पश्चात् वर्तमान युग तक क्रमशः उतना ही पतन होगया है। किसी समय जिस भारत के महापुरुष ब्रह्मज्ञान (सत्यज्ञान) के प्रभाव से अपने शरीरों को कल्पों तक बलवान् और सुरक्षित रखते थे, वर्तमान समय में उस भारत के लाल नाशकारी भोगों के मिथ्या आहार व्यवहारों से रोगी और निर्बल होते हुए केवल ४०, ५० वर्ष की ही अवस्था में बूढ़े बनकर काल के ग्रास बन जाते हैं। इस ध्येय पर विश्वदिग्दर्शन बनाया गया है। जिसमें शरीर सम्बन्धी प्रत्येक विषय का वर्णन किया गया है। और यह बात अच्छी तरह समझायी गई है कि पदार्थों के किन २ अंशों से शरीर रक्षित और पोषित होना है और किन २ अंशों से उसका शोषण व विनाश होता है।

इस पुस्तक से मनुष्य मात्र को अपने कल्याण का वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। सर्व साधारण हितार्थ यह पुस्तक सरल हिन्दी गद्य भाषा में लिखी गई है। इस ग्रन्थ में शरीर रचना, तत्वविज्ञान, पिण्डों का पारस्परिक सम्बन्ध और वनस्पति इत्यादि विषयों का वर्णन किया गया है। शुभम्।

श्री पूज्य पिता पं० धर्मदत्त जी,
व श्री पूज्य माता सरस्वती जी
के तनय-स्वानुभवी रामरत्न।

विषय-सूचि ।

ॐ तत्सत् ।

विश्वदिग्दर्शन ।

अध्याय १

पुरुष प्रकृति के योग से विश्व की रचना ।

जो निर्विकार सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है, वही विश्व का चैतन्य स्वरूप है। वह नित्य अटल एक रूप है। उस का परिवर्तन नहीं होता। वह अविनाशी सनातन और सत्य है। सत्य होनेसे उस का सत्व गुण है। उस सत्व गुण से विश्व का सृजन करने वाली महाजागृति उत्पन्न होती है। उस के सञ्चार में तमोगुण उत्पन्न होता है। तमोगुण की उत्पत्ति से जागृति का स्वाभाविक गुण तमोगुण है। तमोगुण वह है जिससे जागृति, लोप, जीवन, मरण, बढ़ना, घटना आदि अनेक भेदों का परिवर्तन होता रहता है।

चैतन्य परिवर्तन रहित परम तत्व है, इसलिये वह सत्य, अटल, नित्य, अविनाशी और सनातन है। जागृति तमागुण से परिवर्तन शील होती है इसलिये उस से उत्पन्न होने वाला विश्व जागृत, लोप, जीवन, मरण, बढ़ना, घटना आदि परिवर्तन में घूमता है।

चैतन्य से जागृति उत्पन्न होती है, इसलिए चैतन्य और जागृति अद्वैत हैं अर्थात् दो नहीं एक हैं। किन्तु चैतन्य में जागृति उत्पन्न होते ही उनके गुणों में भेद हो जाता है, इसलिये चैतन्य और जागृति अद्वैत नहीं द्वैत हैं अर्थात् एक नहीं दो हैं।

जागृति का स्वभाव, जागृत होकर लोप होता है। ये दोनों अवस्थाएं विना आधार के नहीं हो सकतीं। वे आधार ही से जागृत और आधार ही में लुप्त होती हैं, इसलिये जागृत और लोप दोनों अवस्थाओं को धारण करने वाला आधार चैतन्य है। प्रकृति की जागृतावस्था उत्पन्न होने से प्रथम चैतन्य में लुप्तावस्था रहती है। उस अवस्था में चैतन्य अपने अविनाशी स्वभाव सत्वगुण से रक्षा करता हुआ उस को जागृत करता है। चैतन्य जागृति का आधार और रक्षक होने से उस का पति है, इसलिये वह पुरुष है। लेकिन जागृति का चैतन्य से भिन्न गुण है। वह अपने स्वभाव के गुण से रक्षक होने के कारण पुरुष है, इसलिये जागृति रक्षित होने के कारण पुरुष से भिन्न स्त्री है। चैतन्य पुलिङ्ग और जागृति स्त्रीलिङ्ग है। उस स्त्रीलिङ्ग— जागृत, स्थित और लोप-तीनों अवस्थाओं का एक ही नाम प्रकृति है।

जागृति चैतन्य के सत्वगुण से उत्पन्न होती है इसलिये चैतन्य पुरुष अपनी सत्ता से उस को उत्पन्न करता है। जागृति अपने पूर्ण तमोगुण से चैतन्य में लुप्त होती है, इसलिये प्रकृति का स्वभाव—तमोगुण—लोप का कारण है।

चैतन्य और जागृति के योग से अथवा पुरुष और प्रकृति के संयोग से विश्व का उत्पन्न करने वाला स्वरूप उत्पन्न होता है। उस की उत्पत्ति में प्रथम चैतन्यता प्रधान और जागृति के गुण का न्यून सञ्चार होता है। जागृति चैतन्य की सत्ता से पोषित होकर तमोगुण में बढ़ती है, उससे विश्व की रचना होती है। तमोगुण के कारण विश्व परिवर्तन शील होता है, लेकिन चैतन्य नहीं होता। चैतन्य-सत्ता से पोषित-प्रकृति के तमोगुण-परिवर्तन से विश्व की स्थितियों (अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्ड, स्थावर जङ्गम, जड़, चेतन आदि) में भेद होता है। विश्व की रचना और स्थितियों में तमोगुण बढ़ते २ जब इतना अधिक बढ़जाता है कि वह चैतन्य सत्ता से स्थितियों का सम्बन्ध विच्छेद करदेता है, तब उनकी रचना विनाशकारी बन कर उन के आकार पर महाभयङ्कर अन्धकार रूप धारण करती है। उस के पश्चात् पोषित सत्ता से पृथक् होने से पतनावस्था को प्राप्त होकर घटते घटते अनन्त काल पर्यन्त अणु मात्र रहकर चैतन्य आधार में समाकर लुप्त होजाती है।

विश्व को विनाश करने वाली क्रिया चैतन्य में लुप्त होने के पश्चात् उस की सत्ता से रक्षित होकर विश्व को उत्पन्न करने वाली जागृति बनती है। चैतन्य के रक्षा सञ्चार-स्वरूप को

महाविष्णु कहते हैं। अथवा अनन्त चैतन्य के जिस अंश में अणुरूप से प्रकृति रक्षित होती है उस को महाविष्णु कहते हैं। चैतन्य के प्रकाश और प्रकृति के तमोगुण के योग से सूक्ष्म और असीम महाविष्णु का स्वरूप प्रातः काल पूर्वदिशा के गगनमण्डल की तरह मेघवर्ण होता है, वह उस की बाल्यावस्था का स्वरूप है। उस के स्वरूप में जो अन्धकार का योग होता है वह विष्णु का रूप नहीं प्रत्युत प्रकृति का तमोगुण है। लोपावस्था में प्रकृति की रक्षा करने से उसके तमोगुण के कारण प्रकाशमय विष्णु का स्वरूप मेघवर्ण होता है। क्यों कि प्रकाश और अन्धकार के योग से मेघ (नील) वर्ण होता है। प्रकृति के बन्धन से वह अवस्था में प्रवृत होता है।

महाविष्णु बाल्यावस्था में अनन्त काल तक महाप्रकृति के तमोगुण से मेघ वर्ण रहता है। उसके पश्चात् जैसे प्रातःकाल पूर्वदिशावर्ती गगनमण्डल का अन्धकार सूर्योदय तक धीरे धीरे विलुप्त होता जाता है और प्रकाश अधिक बढ़ता रहता है वैसे ही महाविष्णु बाल्यावस्था से तरुणावस्था प्राप्त होने तक प्रकाशमय होकर पूर्वाकाश के अरुणोदय-सदृश शुक्लवर्ण होता है। उस की तरुणावस्था में विश्वविनाशक अन्धकार-तमोगुण घटने की अन्तिम और विश्व को जागृत करने वाला पूर्णप्रकाश पैदा होता है। महाविष्णु की उस अवस्था में सत्वगुण के पूर्ण प्रकाश और अल्प तमोगुण के योग से विश्वविराट् को उत्पन्न करने वाली महाजागृति दिव्य स्वरूप में उत्पन्न होती है। वह महाप्रकृति की प्रथमावस्था है। उस को महालक्ष्मी कहते हैं। उसके स्वरूप में सत्वगुण की पूर्णता और तमोगुण का प्रारम्भ होता है।

महाविष्णु के आधार में महालक्ष्मी तमोगुण से बढ़ते बढ़ते अनन्त काल पर्यन्त तरुणावस्था में प्रविष्ट होती है। महाविष्णु की सत्ता से पोषित तमोगुण का बढ़ना ही महालक्ष्मी की अवस्था का बढ़ना है। वह जैसे २ बढ़ती है, वैसे ही वैसे विश्वविराट् का आकार बनता रहता है। वह विश्व को रचने वाले महारजोगुण (ब्रह्मा) की गर्भावस्था है। महालक्ष्मी की पूर्ण तरुणावस्था में महाविष्णु का सत्वगुण और महालक्ष्मी के तमोगुण के योग से विश्व को रचनेवाला महारजोगुण-ब्रह्मा-उत्पन्न होता है। उस का वर्ण (स्वरूप) महाविष्णु का प्रकाश और महालक्ष्मी के तमोगुण के योग से सूर्योदय काल, पूर्वदिशाके आकाश मण्डल की तरह गौर होता है। वह विश्व को रचने वाले महारजोगुण अथवा ब्रह्मा की प्रथमावस्था का स्वरूप है।

ब्रह्मा के स्वरूप में जो तमोगुण का योग होता है, वह अपने स्वभाव से बढ़ता है। उस के बढ़ने से महाब्रह्मा भी बाल्यावस्था से बढ़ते २ अनन्त काल में तरुणावस्था को प्राप्त होता है। उस की पूर्ण तरुणावस्था में विश्व विराट् को रचने वाली क्रिया उत्पन्न होती है। उसको विश्व-रचयित्री अथवा सरस्वती कहते हैं। वह अनन्त काल तक अपनी क्रियावस्था में बढ़ती रहती है, जिससे विश्वविराट् के अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्डों की स्थिति होती है।

उस की बाल्यावस्था का स्वरूप ब्रह्मा की तरुणावस्था से कुछ अधिक गौर होता है, क्यों कि उस में तमोगुण कुछ अधिक हो जाता है। महासरस्वती तमोगुण के कारण बाल्यावस्था

से बढ़ते २ अनन्त काल में तरुणावस्था को प्राप्त होती है । उस में विश्वविराट् के चौदह लोकों की रचना होती है । महासरस्वती की मध्य तरुणावस्था में भूमण्डल की उत्पत्ति होती है । उस की बाल्यावस्था को सतयुग कहते हैं । उस में भूमण्डल के आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य्य, चन्द्रमा, वनस्पतियों और प्राणियों में सतोगुण अधिक होता है ।

भूमण्डल तमोगुण के कारण बाल्यावस्था से अनन्त काल में तरुणावस्था को प्राप्त होता है, उस को त्रेतायुग कहते हैं । वह भूमण्डल की मध्य रजोगुणी तरुणावस्था है । उस में भूमण्डल के आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा वनस्पतियों और प्राणियों में रजोगुण अधिक होता है । उस काल में भूमण्डल अधिक बलिष्ट होता है क्योंकि उस में सत्वगुण और तमोगुण समान होते हैं ।

भूमण्डल तरुणावस्था से फिर प्रौढ़ावस्था को प्राप्त होता है, उस को द्वापर युग कहते हैं । उस में आकाश, वायु, अग्नि, जल पृथ्वी, सूर्य्य, चन्द्रमा, वनस्पतियों और प्राणियों के रजोगुण में तमोगुण अधिक बढ़ जाता है ।

उस के पश्चात् भूमण्डल वृद्धावस्था को प्राप्त होता है, उस को कलियुग कहते हैं । उस में भूमण्डल के आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य्य, चन्द्रमा, प्राणियों और वनस्पतियों के रजोगुण में तमोगुण विशेष अधिक होता है । वृद्धावस्था अर्थात् कलियुग के अन्त में अत्यन्त तमोगुण के कारण भूमण्डल

विच्छिन्न होकर लय हो जाता है। लेकिन उस काल में विश्व का उत्पादक महारजोगुण (ब्रह्मा) अपनी मध्य तरुणावस्था में रहता है। भूमण्डल का लय उस की निद्रावस्था में होता है, उस काल में महारजोगुण से उत्पन्न होने वाली तरुण सरस्वती अथवा भूमण्डल का रचने वाली क्रिया, ब्रह्मा के चैतन्य में लुप्त होती है। वह महाब्रह्मा की निद्रावस्था है। भूमण्डल की प्रलय में उस की कर्त्री उग्र तमोगुण के कारण महारजोगुण की चैतन्य सत्ता में लुप्त हो जाती है और उस के आकार पर महा-अन्धकार छा जाता है। उस के पश्चात् अन्धकार घटने की अवधि को प्राप्त होकर, घटते घटते सूक्ष्म अणु रूप से चैतन्य में समाई हुई क्रिया में स्थित होता है और फिर भूमण्डल की उत्पत्ति होती है।

महाब्रह्मा की निद्रावस्था में भूमण्डल का नाशकारी महा-तमोगुण से, चैतन्य शिव रूप होकर क्रिया रूप प्रकृति की रक्षा करते हुये धारण करता है। निद्रावस्था के अन्त में उग्र तमोगुण भयङ्कर विस्तार से नष्ट हो कर शेष अणु रूप से रक्षित क्रिया में समा जाता है। अथवा यह घटने के स्वभाव से घटते २ शेष अणु रूप से महारजोगुण की चैतन्य-क्रिया में लुप्त होता है। उस के पश्चात् महाब्रह्मा की जागृतावस्था में फिर सरस्वती उत्पादक तमोगुण क्रिया से भूमण्डल की रचना करती है। इसी तरह महारजोगुण—ब्रह्मा—के जागृत काल में भूमण्डल की रचना, और निद्रा में प्रलय होती है।

इस क्रम से महाब्रह्मा भी अपनी अवधि के अन्त में बृद्धत्व

को प्राप्त होता है। जिस से रजोगुण से उत्पन्न होने वाले अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्डों का विनाश होने लगता है और अन्त में विश्वविराट् को रचने वाली महाप्रकृति उस का विनाश कर उस के आकार पर महाभयङ्कर अन्धकार फैलाती है। वह महारजोगुण की विनाश अवस्था है। उस में विश्वविराट् को उत्पन्न करने वाली महाजागृति उग्र तमोगुण से परिवर्तित हो कर विश्व का विनाश करने वाली महाकाली बनती है। अन्त में विनाश क्रिया का महाअन्धकार भी धीरे धीरे घटकर चैतन्य में लुप्त होजाता है।

प्रकृति के भयङ्कर महाअन्धकार स्वरूप को महाकाली कहते हैं। उस की बाल्यावस्था में विश्वविराट् का विनाश होता है। वह विश्वविराट के आकार पर भयङ्कर महातमोगुण रूप फैलाती है। उस में महारजोगुण-ब्रह्मा-का भी नाश होता है। उस काल में महातमोगुण अन्धकार और महाचैतन्य के सिवाय कुछ नहीं रहता, तमोगुण भी चैतन्य—आधार में रहता है। चैतन्य के सिवाय आकाशादि तमोगुण का धारण करने वाला कोई नहीं रहता। क्यों कि विश्वविराट् का विनाश के साथ आकाशादि सब का नाश होजाता है। इसलिये विश्व नाशकारी-उग्र तमोगुण चैतन्य का आश्रित रहता है।

चैतन्य अविनाशी है। महातमोगुण में भी जो सनातन रहता है, वह तमोगुण से भी सूक्ष्म और उस का धारण करने वाला है। महाप्रलय के तमोगुण का धारण करने वाले चैतन्य के स्वरूप को महेश कहते हैं। वह स्वयं प्रकाशमय है। उस का

स्वरूप प्रकाश और अन्धकार के योग से सूर्य्यास्त-काल पश्चिम दिशा के गगनमण्डल की तरह शुक्ल होता है। वह रूप महेश की बाल्यावस्था का है।

प्रलय में महाकाली पूर्ण तमोगुण को प्राप्त होने के पश्चात् जब तमोगुण सहित धीरे धीरे घटकर महत् रूप से केवल शेष अणु मात्र रहजाती है तब चैतन्य का अविनाशी-महेश उस की रक्षा करता है। वह महाकाली की अन्तिम अवस्था है।

महाकाली की उत्पत्ति से लोपावस्था तक चैतन्य के स्वरूप को महेश कहते हैं, वह महाकाल-उग्र तमोगुण को भी समाने वाला काल है। अन्तिम महाकाली उसी में लुप्त होती है। उस के पश्चात् चैतन्य के सिवाय कुछ नहीं रहता। वह तमोगुण रजोगुण से निर्विकार गुणों से परे,पूर्ण प्रकाश, स्वयम् चैतन्य और दिव्य रूप है। इसलिये वह नित्य, अविनाशी, सत्य, सनातन, गुणातीत, अटल, अव्यक्त, अखण्ड, प्रकाशमय और स्वयं-चैतन्य कहा जाता है।

चैतन्य सत्ता से रक्षित अणु रूप काली अनन्त समय में फिर जागृत होकर विश्व की रचना करती है। महा चैतन्य के रक्षा स्वरूप को महाविष्णु कहते हैं। वह प्रकृति की जागृत अवस्था से रचना पर्यन्त उस का पोषण करता है। रचना और स्थिति के पोषण करने वाले चैतन्य के स्वरूप को महाब्रह्मा कहते हैं और विनाश काल के आरम्भ से महातमोगुण की लुप्तावस्था तक धारण करनेवाले चैतन्य के स्वरूप को महेश कहते हैं।

वैसे ही महाप्रकृति की जागृतावस्था से रचना तक लक्ष्मी, रचना से स्थिति तक सरस्वती, और विनाश से तमोगुण की लुप्तावस्था तक काली कहते हैं ।

चैतन्य नित्य एक होने पर भी विकारमय प्रकृति के संयोग से उस के तीन भेद होते हैं और तीनों, अवस्था में प्रवृत होकर त्रिगुणमय होते हैं । परमात्मा के वे तीन भेद, तीन गुण और तीन अवस्थाओं से युक्त होते हैं । प्रकृति के विकार से एक ही महाचैतन्य के तीन महाभेदों को महाविष्णु, महाब्रह्मा, और महेश कहते हैं । वे तीनों चैतन्य के रूप होने से पुल्लिङ्ग हैं ।

प्रकृति के त्रिगुण भेद सत्, रज, तम तीन महाआत्माओं अर्थात् महाविष्णु, महाब्रह्मा और महेश में आश्रित होने से एक ही क्रिया रूप महा प्रकृति तीन महाभेदावस्थाओं अथवा जागृत रचना और लुप्तावस्था में प्रवृत होती है । महाप्रकृति की उन तीन अवस्थाओं को महालक्ष्मी, महासरस्वती और महाकाली कहते हैं । तीनों महाप्रकृति रूपा होने से स्त्रीलिङ्ग हैं ।

इसी तरह विश्व के अन्तर्गत पुरुष और प्रकृति के तीन २ भेदों से परमात्मा का रूप आत्मा में विश्व के अन्तर्गत अनेक पुरुष स्त्री भेद पैदा होते हैं ।

परमात्मा और आत्मा में चैतन्य की परिपूर्णता होती है । विश्वविराट् की रचयिता महाजागृति परमात्मा के सत्वगुण से और शरीर-रचयिता शरीर-जागृति आत्मा के सत्वगुण से रक्षित तथा पोषित होती है । परमात्मा और आत्मा मे कोई भेद नहीं,

वे एक हैं, महाजागृति और शरीर-जागृति के विकार से उन में भेद् मालूम होता है।

जैसे एक जाति के एक वृक्ष को उगाने वाली आधार-भूमि, जिसमें वह खड़ा है, वह एक भाग पृथ्वी है और अनन्त जाति के अनन्त वृक्षों को उगाने वाले अनन्त भूमि भाग एक महापृथ्वी है। पृथ्वी एक है, उसके एक व अनन्त भागों में भेद् नहीं किन्तु मायामय—वृक्षों के अनन्त भेद् और अनन्त जातियां की पृथक्ता से उनको धारण करने वाली एक महापृथ्वी के अनन्त पृथक् भाग प्रतीत होते हैं। वैसे ही भिन्न भिन्न मायामय शरीरों की पृथक्ता से एक ही परमात्मा के आभ्यन्तर आत्मा के अनेक भेद् मालूम होते हैं।

जिस तरह परमात्मा के सत्वगुण से विश्वविराट की रचयिता महाजागृति का सञ्चार होता है, उसी तरह जीवात्मा के सत्व-गुण से शरीर विराट् रचयिता शरीर-जागृति का सञ्चार उत्पन्न होता है। उस को बुद्धि कहते हैं।

आत्मा चैतन्य है, क्योंकि वह महाचैतन्य-परमात्मा का एक भाग है। वह नित्य, एक और एक अवस्था में रहता है। किन्तु बुद्धि के महाप्रकृति की तरह तीन भेद होते हैं:—लक्ष्मी, सरस्वती और काली–अर्थात् सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी। किन्तु बुद्धि के मुख्य दो ही भेद् होते हैं। सतोगुणी और तमोगुणी। क्यों कि रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण के योग से विश्व विराट् और शरीर-विराट् रचने का कारण बनता है। इसलिये

शरीर रचयिता रजोगुणी बुद्धि में सतोगुण और तमोगुण की न्यूनाधिकता से जीवात्मा में बुद्धि के प्रधान दो ही भेद होते हैं। अर्थात् सतोगुणी शुक्ल बुद्धि और तमोगुणी काली बुद्धि, इन दोनों प्रकार की बुद्धियों में प्रत्येक के सात २ भेद होते हैं। चौदह प्रकार की बुद्धि-भेदों के विस्तार में जीवात्मा, शरीर को उत्पन्न करने का कारण बनता है।

उन चौदह बुद्धियों में से सात तरह की बुद्धियों में चैतन्य के प्रकाश की क्रमशः अधिकता और तमोगुण के अन्धकार की न्यूनता, और सात प्रकार की बुद्धियों में क्रमशः तमोगुण के अन्धकार की अधिकता और चैतन्य-प्रकाश की न्यूनता होती है।

इनका उदाहरण चन्द्रमा की १४ तिथियों में घटता है। जैसे शुक्ल पक्ष की चन्द्रमा में अष्टमी से चतुर्दशी तक प्रत्येक तिथि में चन्द्रविम्ब के प्रकाश और अन्धकार के योग में क्रमशः प्रकाश अधिक और अन्धकार न्यून होता है, वैसे ही सात प्रकार की रजोगुणी बुद्धियों के योग में क्रमशः सतोगुण प्रकाश अधिक और तमोगुण-अन्धकार न्यून होता है। उन प्रकाशमय सात प्रकार की शुक्ल बुद्धियों को दैविक बुद्धियां कहते हैं। फिर जैसे शुक्ल पक्ष की सप्तमी से प्रतिपदा तक चन्द्रविम्ब में प्रकाश की न्यूनता और अन्धकार की अधिकता होती है, वैसे ही सात प्रकार की रजोगुणी बुद्धियों के योग में सतोगुण-प्रकाश की न्यूनता और तमोगुण-अन्धकार की अधिकता होती है। उन सात प्रकार की तमोगुणी-अन्धकारमय काली बुद्धियों को

आसुरिक बुद्धियां कहते हैं। अथवा पूर्णमासी और अमावास्या को छोड़ कर जिस तरह चौदह तिथियों के चन्द्रविम्ब पर प्रकाश और अन्धकार का योग होता है, उसी तरह चौदह बुद्धियों में सतोगुण और तमोगुण का भेद होता है। वे सब सतोगुण और तमोगुण के योग से रजोगुणी होती हैं जैसे चौदह तिथियों में चन्द्रविम्ब प्रकाश और अन्धकार के योग से रजोगुणी होता है।

पूर्णमासी और अमावास्या को चन्द्रविम्ब रजोगुणी नहीं होता। वह पूर्णमासी का सतोगुण युक्त रहता है। उस दिन पृथ्वी की ओर चन्द्रमा के आकार में अन्धकार नहीं रहता और आमावास्या को तमोगुणयुक्त, उस दिन पृथ्वी की ओर चन्द्रमा के आकार में प्रकाश नहीं रहता। किन्तु पूर्णमासी के पूर्ण प्रकाश और आमावास्या के पूर्ण अन्धकार के योग से जैसे अन्य चौदह तिथियां रजोगुणी होती हैं और प्रत्येक तिथियों के रजोगुण में प्रकाश और अन्धकार का सम्बन्ध भिन्न २ होता है वैसे ही पूर्ण चैतन्य के सत्वगुण और महाजागृति के पोषित तमोगुण के योग से विश्वविराट् में रजोगुणी चौदह लोकों की उत्पत्ति होती है। उन के रजोगुण में सतोगुण और तमोगुण का सम्बन्ध चौदह तिथियों की तरह भिन्न भिन्न होता है। विश्वविराट् के अन्तर्गत सब लोक रजोगुणी होते हैं। उनकी रचयिता महाजागृतियों का स्वभाव भिन्न भिन्न चौदह प्रकार का होता है, जिन से लोकों की रचना होती है।

उसी तरह परमात्मा के आभ्यन्तर आत्मा में भिन्न २ चौदह प्रकार की रजोगुणी बुद्धियां अथवा शरीर-जागृतियां उत्पन्न होती हैं।

विश्वविराट् के चौदह लोकों की रचयिता महाजागृतियों में और शरीर-रचयिता शरीर-जागृतियां—चौदह बुद्धिभेदों—में सिर्फ न्यूनाधिकता का अन्तर होता है। किन्तु रजोगुण का सम्बन्ध उन में बराबर होता है।

सात प्रकार की जो दैविक बुद्धियां होती हैं, उनमें सतोगुण-प्रकाश की अधिकता होती है। बुद्धियों के उस प्रकाश को ज्ञान कहते हैं। दैविक बुद्धियों के साथ वे भी भिन्न २ सात प्रकार के होते हैं। सात तरह की जो आसुरिक बुद्धियां होती हैं, उन में तमोगुण-अन्धकार अधिक होता है। बुद्धि के उस अन्धकार को अज्ञान कहते हैं। वे भी आसुरिक बुद्धियों के साथ भिन्न २ सात प्रकार के होते हैं।

बुद्धि के रजोगुण से मन उत्पन्न होता है। आत्मा में बुद्धि के चौदह भेद उत्पन्न होने से मन के भी चौदह भेद होते हैं। वे अपनी बुद्धि के अनुसार रजोगुण धारण करते हैं। मन के उस रजोगुण को स्वभाव कहते हैं। मन रजोगुणी होता है। उस की बुद्धि (प्रकृति) के रजोगुण में, जैसे सतोगुण और तमोगुण की न्यूनाधिकता का सम्बन्ध होता है, वैसे ही मन का स्वभाव बनता है। स्वभाव भी चौदह प्रकार के होते हैं। उन में सात प्रकार के दैविक और सात प्रकार के आसुरिक। मन का स्वभाव बुद्धि के ज्ञान अज्ञान पर निर्भर होता है।

मन के रजोगुण से सूक्ष्म और स्थूल शरीरों की रचना होती है। मन शरीर का ब्रह्मा है। जिस तरह विश्व की रचना का कारण महारजोगुण ब्रह्मा है उसी तरह शरीर रचने का कारण मन होता है। महाब्रह्मा और शरीरब्रह्मा—मन—में सिर्फ न्यूनाधिकता का अन्तर होता है। रजोगुण के सम्बन्ध से उन में कुछ भी अन्तर नहीं होता। महाब्रह्मा के अन्तर्गत चौदह लोकों के रचयिता चौदह लोक ब्रह्मा हैं। अथवा चौदह प्रकार के भिन्न भिन्न रजोगुण-मन हैं। उनको मनु भी कहते हैं। उनकी रचना तक महारजोगुण ब्रह्मा की अवस्था होती है। जिस तरह विश्वविराट् के चौदह लोकों के रचयिता भिन्न भिन्न चौदह प्रकार के मनु हैं, उसी तरह प्राणियों के शरीर रचयिता मन भी चौदह प्रकार के भिन्न भिन्न होते हैं। मन के रजोगुण में जागृति होती है वह अपने बढ़ने के स्वभाव से मन की अवस्था से आगे बढ़ती है। उसके रजोगुण में मन के रजोगुण से कुछ अधिक तमोगुण का सञ्चार होता है। उसको इच्छा कहते हैं।

महाब्रह्मा से उत्पन्न होने वाली विश्वविराट् की कर्त्री को सरस्वती व सावित्री कहते हैं। और मन से उत्पन्न होने वाली शरीर कर्त्री को इच्छा कहते हैं। मन से इच्छा उत्पन्न होती है। उस के रजोगुण में मन के रजोगुण से अधिक तमोगुण होता है। रचना रूप होने से वह प्रकृतिमय होती है। उस को मति भी कहते हैं। इच्छा के तीन भेद होते हैं:— सतोगुणी रजोगुणी और तमोगुणी।

सतोगुणी इच्छा से मन सतोगुणी सप्त लोकों के सुख का भोक्ता बनता है। अथवा भूलोक से सत्यलोक तक मन जैसे जैसे अधिक सतोगुणी-इच्छा उत्पन्न करता है वैसे ही वैसे वह क्रमशः उन के सुख का भोक्ता बनता है । तमोगुणी इच्छो से मन तमोगुणी सप्त लोकों को भोक्ता बनता है । अथवा मन जितनी तमोगुणी इच्छा उत्पन्न करता है, उतना ही अतल लोक से पाताल लोक तक के दुःखों का भोक्तो बनता है । वह इच्छा के तमोगुण से रहित होने पर पूर्ण चैतन्य पद को प्राप्त होता है और रजोगुण अवस्था से रहित हो जाता है ।

इच्छा में प्रबल तमोगुण उत्पन्न होने से मन महा-अन्धकार-दुःख के लोकों में जाता है । इच्छा ही से शरीर में भी मन को सुख दुःख भासता है ।

इच्छा और मन के रजोगुण के योग से शरीर-काल उत्पन्न होता है। उसके रजोगुण में इच्छा के रजोगुण से अधिक तमोगुण होता है । वह पुरुषमय और परिवर्तन शील है । उसके तीन भेद होते हैं । विश्वके अन्तर्गत उसके तीन महाभेदों के नाम जागृतकाल, रचनाकाल और विनाशकाल है ।

१—विनाशकाल, छिपाहुआ अथवा बीता हुआ काल, उसको भूतकाल भी कहते हैं। २—रजोगुण के क्रियाकाल को वर्त्तमान काल कहते हैं। ३—और तीसरा जागृत होने वाले

काल को भविष्य काल कहते हैं।

इसी तरह शरीर के अन्तर्गत भी काल के मुख्य तीन भेद होते हैं:—बाल, तरुण और बृद्ध। सूक्ष्म भूत के साथ भी उसके तीन भेद होते हैं:—उत्पन्न काल, क्रिया काल, लोप काल। विश्वविराट् व शरीरविराट् की प्रत्येक अवस्थाओं का परिवर्त्तन करना, उसका स्वाभाविक गुण है।

जागृति, उत्पत्ति, बाल अवस्था—काल के सतोगुण से; रचना, स्थिति, तरुणावस्था कालके रजोगुण से; और विनाश, लोप, बृद्धावस्था, काल के तमोगुण से उत्पन्न होती हैं।

काल के रजोगुण में जो इच्छा का तमोगुण होता है वह अपने स्वभाव से बढ़ता है। उससे अवधि उत्पन्न होती है। काल के रजोगुण से अवधि के रजोगुण में तमोगुण अधिक होता है।

अवस्थायें अवधि से बनती हैं:—उस के सत्वगुण से विश्वविराट् जागृत अवस्था में और प्राणी बाल-अवस्था में बढ़ते हैं। रजोगुण से विश्वविराट् की रचना होती है और प्राणियों की तरुणावस्था, तमोगुण से विश्व की प्रलय और प्राणियों की बृद्धावस्था होती है। समस्त अण्ड पिण्डों की अवस्थायें प्राकृतिक होती हैं, इसलिये वे चञ्चल होती हैं।

जीवन व उत्पत्ति काल के सतोगुण से, रचना व क्रिया काल के रजोगुण से, और विनाश व मरण काल के तमोगुण

से होता है। विश्वविराट् की जागृत अवस्था व प्राणियों की बाल अवस्था अवधि के सतोगुण से, विश्वविराट् की रचना अवस्था व प्राणियों की तरुणावस्था अवधि के रजोगुण से; और विश्वविराट् की विनाश-अवस्था व प्राणियों की वृद्धावस्था अवधि के तमोगुण से होती हैं।

काल के रजोगुण और अवधि के तमोगुण के योग से कर्म बनता है। उसके स्वभाव से बन्धन व सङ्गठन होता है। विश्व के अन्तर्गत महाकर्म के सतोगुण से सुख का विस्तार अथवा स्वर्ग लोक, रजोगुण से क्रिया का विस्तार अथवा पितृलोक, तमोगुण से जीवन मरण का विस्तार अथवा मृत्युलोक की उत्पत्ति होती है।

कर्म के सतोगुण से शरीर के अन्तर्गत मन को सुख, रजोगुण से उस में क्रियाओं की उत्पत्ति और तमोगुण से दुःख होता है।

विश्वविराट् में महातत्वों और पिण्डों का बन्धन व प्राणियों के शरीर में चैतन्य, जड़ [शरीर, तत्व और इन्द्रियों] का बन्धन कर्म से होता है। उस का स्वरूप पुरुषमय है इसलिये वह पुल्लिङ्ग है।

काल और कर्म के योग से आकार बनता है। विश्वविराट् के उस आकार को महाकाश और शरीर के आकार को शरीर-आकाश कहते हैं। विश्वविराट् के अन्तर्गत महाकाश के सतोगुण से धारण और आकर्षण शक्तियां उत्पन्न होती हैं। रजोगुण से

शब्द और तमोगुण से अन्धकार। शरीर--आकाश के सतोगुण से प्राणियों में बोध व स्मरण शक्तियां उत्पन्न होती हैं। स्मरणशक्ति के विस्तार को हृदय कहते हैं। कानों में शब्दबोध की शक्ति भी आकाश के सतोगुण से बनती है। कर्ण से हृदय-स्थान तक उस का विस्तार है। शरीर आकाश के रजोगुण से नाड़ियां बनती हैं, जो समस्त शरीर में जाल की तरह फैल कर शरीर के अङ्ग प्रतिअङ्गों को हृदय की ओर आकर्षित किये हुये रहती हैं, अर्थात् खींचे हुये रहती हैं। हृदय नाड़ियों का केन्द्रस्थान है, वे हृदय से शरीर के प्रत्येक अवयवों में फैली हुई होती हैं। शरीर में बहुत सी नाड़ियां इतनी सूक्ष्म हैं जिनको देखना और जिन की गति का संचालन-ज्ञान करना बहुत कठिन है। जब कभी कोई मच्छर आदि छोटे २ जन्तु शरीर को काटते हैं तब उन्हीं सूक्ष्म नाड़ियों द्वारा काटने का बोध स्मरणशक्ति में पहुंचता है। स्मरणशक्ति फिर नाड़ियों द्वारा उनसे मन के विचार-स्थान में पहुंचाती है। मन के विचार-स्थान को मस्तिष्क कहते हैं।

आकाश के तमोगुण से शरीर में शोक और मोह उत्पन्न होते हैं। उनके योग से अहङ्कार होता है। प्राणियों के शरीर में शोक, मोह और अहङ्कार (उन्माद) आकाश तत्व के तमोगुण से उत्पन्न होते हैं। इच्छा के तमोगुण विस्तार में उनके भिन्न भिन्न स्थान हैं।

आकाश के अभिमानी-स्वभाव से शब्द उत्पन्न होता है। उसी से प्राणियों के शरीर-आकाश में शब्द बनता है। कण्ठ उसका केन्द्र स्थान है। कण्ठ से वह समस्त शरीर में फैलता है। प्राणियों के शरीर में उस के सात प्रधान भेद होते हैं।

अर्थात्, कण्ठ में बाणी शब्द, पेट में आंतों द्वारा होने का शब्द, गुदा में पाद शब्द, कान में कर्ण शब्द, नासिका में नासिका शब्द, शरीर में शरीर हिलने का शब्द, और शरीर के टकराने से अचानक शब्द । इनके भी मुख्य दो भेद होते हैं:—सार्थक और निरर्थक ।

कण्ठ-शब्द के सिवाय अन्य छः प्रकार के शब्द जो शरीर के भिन्न भिन्न अङ्गों में होते हैं वे सब निरर्थक होते हैं । कण्ठ-शब्द भी सार्थक और निरर्थक दो प्रकार के होते हैं ।

कण्ठ-शब्द के शब्दकाल में बाणी की यथार्थ क्रिया से सार्थक और निष्क्रिय अथवा यथार्थ क्रिया रहित होने से निरर्थक शब्द होते हैं ।

सार्थक शब्द के भी मुख्य सात भेद होते हैं । कण्ठशब्द के शब्द-काल में बाणी जब अपनी सीमा के सात स्थानों में क्रिया करती है तब उनका ज्ञान होता है ।

बाणीशब्द-क्रिया के सात स्थानों को कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त, ओष्ठ, जिह्वामूल और नासिका कहते हैं । इन में भी बाणी शब्द-क्रिया के मुख्य पाञ्च स्थान हैं:—कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त और ओष्ठ । इन स्थानों से शब्द-क्रिया में बाणी के सात सात भेद उत्पन्न होते हैं ।

कण्ठ में उत्पन्न होने वाले बाणी के सात भेद—क, ख, ग, घ, ङ, ह, : (विसर्ग) हैं ।

तालु में उत्पन्न होने वाले वाणी के सात भेद—च, छ, ज, झ, ञ, य, श हैं।

मूर्धा में उत्पन्न होने वाले बाणी के सात भेद—ट, ठ, ड, ढ, ण, र, ष हैं।

दन्त में उत्पन्न होने वाले बाणी के सात भेद त, थ, द, ध, न, ल, स हैं।

ओष्ठ में उत्पन्न होने वाले बाणी के सात भेद—प, फ, ब, भ, म, उपध्मानीय हैं। प़, फ़, के नीचे जो चिन्ह होते हैं उन को उपध्मानीय कहते हैं।

बाणीशब्द के इन क्रिया भेदों को व्यञ्जन कहते हैं। इन में भी प्रत्येक के बारह भेद होते हैं। उनको अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः कहते हैं। इनको स्वर कहते हैं। बारह स्वरों के अतिरिक्त तालु और मूर्धा में चार ऐसे स्वरों का उच्चारण होता है जिनमें शब्द के साथ बाणी क्रिया करती है, उन को ऋ ॠ ॡ ऌ कहते हैं।

किन्तु अन्य बारह स्वरों की तरह व्यञ्जनों के साथ उनका स्थान नहीं होता। स्वर सोलह होते हैं। उनमें से बारह स्वरों का उच्चारण, प्रत्येक व्यञ्जनों के स्थान में होता है और चार अपने स्थानों के सिवाय व्यञ्जनों के साथ उनके स्थानों से उत्पन्न नहीं होते।

बाणी के दो स्थान जो जिह्वामूल और नासिका हैं, उनमें जिह्वा

मूल से वाणी का नुक्ता सम्बन्धी और नासिका से पञ्चम वर्ग व्यञ्जनों का बोध होता हैः—अँ, ङ, ञ, ण, न, म। इनका उच्चारण नासिका स्थान से होता है। सब व्यञ्जनों और स्वरों के योग से सार्थक शब्द की सीमा बनती है। प्राणि मात्र के कण्ठ में शब्द एक तरह का होता है, किन्तु शब्द की सार्थकता में वाणियों की क्रिया से भेद होता है। इसी तरह पृथ्वीतल में समस्त मनुष्यों के कण्ठ में शब्द एक है। किन्तु वाणी क्रिया से उनमें भाषान्तर होता है। मनुष्य मात्र एक जात होने पर भी उनकी सार्थक वाणी में विभिन्नता आने से अनेक भाषायें उत्पन्न हो गईं।

जैसे—रानी, क्वीन, बेगम, तीनों में शब्द एक ही हो रहा है। किन्तु शब्द के साथ भिन्न भिन्न स्थानों में वाणी क्रिया करती है इसलिये तीनों में भिन्नता हो गई।

रानी शब्द में वाणी मूर्धा, दन्त से क्रिया करती है; क्वीन शब्द में कण्ठ, ओष्ट, दन्त से; और बेगम शब्द में ओष्ट, कण्ठ ओष्ट से। कण्ठ से शब्द एक ही होने पर भी वाणी का अपने विभिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न तरह की क्रिया करने से एक ही मनुष्य समुदाय की भाषा में भाषान्तर हो गया। विभिन्न भाषाओं से भिन्न भिन्न भाषा-कोष बनाये गये, उन को सुगमता से निर्माण करने के लिये विभिन्न विद्यायें निकाली गईं।

वाणी निराकार है। निराकार का अर्थ जिस में रूप नहीं होता। वाणी आकाश तत्व से उत्पन्न होती है। इसलिये वाणी और आकाश तत्व में रूप नहीं होता। वाणी निराकार से

साकार बनाई गई। वाणी का साकार रूप विद्या है। साकार का अर्थ जिसमें रूप उत्पन्न होता है। इसलिये विद्या में वाणी का रूप उत्पन्न हो जाता है।

रजोगुणी मनुष्यों को सर्वप्रथम उत्पन्न करने वाले महा-रजोगुण को ब्रह्मा कहते हैं। उस महामनुष्य ब्रह्मा ने सर्वप्रथम जिस विद्या में वाणी को सार्थक बनाया, मनुष्यों के परम कल्याण करने वाले उस विद्याकोष को वेद कहते हैं। संसार में मनुष्यों को सब कुछ उसी से विदित हुआ, अर्थात् ज्ञान हुआ।

वेद और उसको रचने वाली विद्या (वर्तमान किसी जाति-विशेष व व्यक्ति विशेष के नहीं) संसार में वे दोनों मनुष्य मात्र के हैं। क्योंकि मनुष्यों को सर्वकर्मों का ज्ञान वेद से ही विदित हुआ। वेद, मनुष्यों को सर्वप्रथम उत्पन्न करने वाले, महापुरुष की वाणी है। मनुष्यों में जो अनेक मतमतान्तर व जातियां हैं सब उसी पितामह की सन्तान हैं। और सब जातियां अथवा मनुष्य मात्र परस्पर भाई हैं।

जिस तरह एक ही पुरुष की सन्तान के कबीलों में एक या दो पुश्तों में उन के रहन सहन, आचार, विचार में अन्तर आ जाता है। उसी तरह अनन्तकाल से संसार में फैली हुई समस्त मनुष्य जाति, एक ही महापुरुष-ब्रह्मा की सन्तान होने पर भी उनके आचार विचारों में भिन्नता आने से अनेक मत मतान्तर और जातियां उत्पन्न हो गईं।

शब्द-आकाश के रजोगुण से प्राणियों के कण्ठ में उत्पन्न

होता है। वाणी से सार्थक बनता है। और वह उत्पन्न होते ही महाकाश में फैलता है। महाकाश अपने सतोगुण से उस के फैलाव के विस्तार को धारण करता है। वह आकाश में जितना अधिक फैलता है उतना ही शीघ्र उसके तमोगुण से विच्छिन्न होजाता है। जहां शब्द, महाकाश के सतोगुण-विस्तार में रहता है, उसमें प्राणियों के रहने से उनके शरीर आकाश तत्व के सतोगुण से उत्पन्न होने वाले कणों को उसका बोध होता है। और जहां शब्द महाकाश में बहुत फैलने के कारण उसके तमोगुण से विच्छिन्न हो जाता है, वहां कणों को भी तमोगुण के कारण शब्द का बोध नहीं हो सकता।

वह शब्द महाकाश के अत्यन्त तमोगुण के कारण उसके सतोगुण में लुप्त हो जाता है। जो शब्द प्राणियों के कणों में पहुंचता है वह भी उनके हृदय में समाता है।

कणों की दो तरह की गतियां होती हैं। जिन कणों में शरीर-आकाश का सतोगुण होता है वे महाकाश के सतोगुण से शब्द को धारण करने में समर्थ होते हैं। उन्हीं को शब्द का बोध होता है। वे उसको हृदय में पहुंचाते हैं। वहां पहुंच कर वह लोप हो जाता है।

हम पहिले कह चुके हैं कि कर्ण से हृदय तक प्राणियों के शरीर में शरीर-आकाश तत्व का सतोगुण होता है। प्राणियों की उत्पत्ति में आकाश के सतोगुण से पहिले स्मरणशक्ति उत्पन्न होती है। उसके विस्तार को हृदय कहते हैं। उसका विस्तार स्मरणशक्ति से कर्ण तक होता है, इसलिये शब्द का बोध कर्ण से होता है।

वह कर्ण में पहुंचते ही स्मरणशक्ति में पहुंचकर लुप्त होजाता है।

प्राणियों के जो दूसरे प्रकार के कर्ण तमोगुणी होते हैं, उनकी शब्द-धारण शक्ति नष्ट हो जाती है, इसलिये उनसे शब्द बोध नहीं हो सकता। तमोगुण के कारण उनमें पहुंचा हुआ शब्द नष्ट होकर कर्णों से बाहर महाकाश की धारणा शक्ति में समा जाता है। वे कर्ण शब्दों को अपनी स्मरणशक्ति तक नहीं पहुंचा सकते। शब्द कण्ठ से उत्पन्न होता है, वाणी से सार्थक बनता है, महाकाश में फैलता है। और महाकाश की सतोगुणी सीमा में कर्णों को उसका बोध होता है। और वे उस शब्द को हृदय में पहुंचाते हैं। हृदय उसको धारण करता है, जिसको याद करना कहते हैं।

पहिले वर्णन हो चुका है कि सतोगुण आधार में तमोगुण होता है। प्राणियों के शरीर-आकाश के सतोगुण से जहां हृदय बनता है, वहां शरीर-आकाश तत्व का तमोगुण आश्रित रहता है, उससे विस्मृति होती है। स्मरण के फैलाव से उस के स्थान में तमोगुण उत्पन्न होकर मोह पैदा करता है। मोह और वियोग से शोक उत्पन्न होता है। प्राणियों के शरीर में विस्मृति, मोह और शोक, ये आकाश तत्व के तमोगुण से पैदा होते हैं। इनका निवास हृदय की स्मरण शक्ति में रहता है। अवधि के तमोगुण की ओर इनका फैलाव होता है। अवधि के तमोगुण से वे फैलते हैं और स्मरणशक्ति में लोप रहते हैं।

शरीर-आकाश तत्व के सतोगुण से स्मरणशक्ति, हृदय,

कर्ण; रजोगुण से शब्द, वाणी, विद्या; और तमोगुण से विस्मृति मोह, शोक उत्पन्न होते हैं।

शरीर-आकाश अथवा शरीर-आकार उत्पन्न होते ही महावायु तत्व से शरीर-वायु तत्व उत्पन्न होता है। वह शरीर आकार में प्राण से लेकर समस्त क्रिया करता है। प्राणियों के शरीर में उत्पन्न होने वाली समस्त शारीरिक क्रियायें शरीर वायुतत्व से होती हैं। और वे कार्य करने में महावायु तत्व से सम्बन्ध रखती हैं।

महावायुतत्व की तरह शरीर-वायु तत्व के भी त्रिगुण भेद होते हैं। उसके सतोगुण से प्रथम दिल उत्पन्न होता है। उसके तीन भेद होते हैं:—ज्ञानशक्ति, विचारशक्ति, क्रियाशक्ति।

ज्ञानशक्ति दिल से त्वचा तक सम्बन्ध रखती है, विचार शक्ति दिल से मस्तिष्क तक, और क्रियाशक्ति दिल से प्राण की सीमा तक सम्बन्ध रखती है।

शरीर की बनावट में वायुतत्व से प्रथम दिल बनता है। दिल से त्वचा का विस्तार, फिर उससे मस्तिष्क की विचारशक्ति, उसके पश्चात् दिल से प्राणवायु की क्रियाशक्ति उत्पन्न होती है।

दिल की ज्ञानशक्ति दिल से त्वचा के प्रत्येक अवयवों में फैली हुई रहती है। उसमें अनन्त अवयव होते हैं। प्रत्येक अवयव में एक एक सूक्ष्म नाड़ी होती है, जो त्वचा के छूने, काटने और शीतोष्ण का ज्ञान दिल में पहुंचाती हैं। त्वचा के

अवयवों को केवल स्पर्शज्ञान होता है। लेकिन स्पर्श के परिणाम का ज्ञान दिल को होता है। त्वचा शरीर-वायुतत्व के सतोगुण से उत्पन्न होती है। वह महावायु-मण्डल से दिल तक स्पर्श ज्ञान का सम्बन्ध रखती है। स्पर्शज्ञान करने वाले त्वचा के अवयव प्राणियों के शरीर में सर्वत्र फैले हुये रहते हैं। उन्हीं के कारण दिल को शीतोष्ण, छूने, काटने इत्यादि भिन्न भिन्न तरह के स्पर्शों का ज्ञान होता है।

दिल की जो विचारशक्ति है, वह दिल से मस्तिष्क के विचार स्थान तक सम्बन्ध रखती है। उसको दिमाग़ भी कहते हैं। वह शरीर पञ्चभूत और पञ्चमहाभूतों का ज्ञान, विभाग, विचार करता है।

दिल की क्रियाशक्ति प्राणवायु की सीमा तक होती है। वह प्राणियों के शरीर में अपने आप महावायुमण्डल से वायु को प्राण स्थान तक खींचती है। और वहां से उसके भेदः— अपान, व्यान, उदान, समान, बनाकर समस्त शरीर के अवयवों में पहुंचाती है। प्राणादि पाञ्चों वायु दिल की वास्तविक एक ही क्रियाशक्ति से उत्पन्न होते हैं और शरीर में भिन्न भिन्न क्रियायें करते हैं। दिल की उन क्रियाशक्तियों का एक ही नाम प्राण है, अन्य वायु उसी के रूप हैं। वे सब प्राण वायु से ही उत्पन्न होते हैं। शरीर-मरणावस्था में अन्य वायु प्राणवायु में मिलकर विच्छिन्न हो जाते हैं।

पाञ्चों वायु प्राणियों के शरीर में इस प्रकार क्रिया करते हैं। पहिला—प्राणवायु दिल से नासिका के अग्र भाग तक

महावायुमण्डल से सम्बन्ध रखता है। वह अन्य वायुयों को जो शरीर के प्रत्येक अवयवों में क्रिया करने से दूषित होते हैं, (तमोगुणी दूषित वायु) उनको प्राणियों के शरीर से बाहर महावायु-मण्डल में फेंकता है। उसका विस्तार फेफड़े से नासिका के अग्र भाग तक होता है। फेफड़े के अन्तर्गत दिल और नासिका के अग्रभाग से बाहर महावायु-मण्डल होता है अर्थात्, प्राणवायु दिल से महावायुमण्डल तक बाहर का संबन्ध रखता है।

दूसरा—दिल से गुदा तक रहने वाले वायु को अपान वायु कहते हैं। प्राणियों के शरीर में मलमूत्र उतरने की क्रिया उसी से होती है। शरीर में अपान वायु की विकृति से वीर्य का उतरना भी होता है। वीर्य के उस अविधि उतरने को प्रमेह और सुजाक कहते हैं।

तीसरा—दिल से सारे शरीर में विचरने वाला व्यान वायु है। शरीर में रस रुधिर की गति इसी से बहती है। शरीर के अवयवों के काटे जाने पर रुधिर का बहाव भी इसी वायु से होता है।

चौथा—कण्ठ में रहने वाला उदान वायु है। इससे अन्न जल निगला जाता है। वह कण्ठ से शब्द को भी फैलाता है। उदान वायु के तीन भेद होते हैं जिनसे उभालना, जम्भाना और छींक होता है। इन तीनों में शब्द होता है। और शब्द की उत्पत्ति कण्ठ से होती है। इसलिये वे तीनों वायुयें

जिनसे उभालना, जम्भाना, छींकना होता है, उदान वायु से उत्पन्न होते हैं।

पांचवा—समान वायु है जो प्राणियों के पेट में अन्न जल को, अलग रस रुधिर और मल मूत्र में विभाजित करता है। क्रीडा समय में रज, वीर्य का उतराव समान वायु और अपान वायु के योग से होता है।

शरीर में वायु तत्व के रजोगुण से बल पैदा होता है। वह त्वचा के सतोगुणी अवयवों के फैलाव से बनता है। प्राणियों की बाल अवस्था से मध्य तरुणावस्था पर्यन्त त्वचा के उन अवयवों का फैलाव होता रहता है जिससे शरीर बढ़ता है और बलवान बनता है। अन्तिम तरुणावस्था से वृद्धावस्था तक त्वचा में वायुतत्व के सतोगुणी अवयवों के स्थान में तमोगुणी अवयव बढ़ते रहते हैं। वृद्धावस्था में वायु तत्व के प्रबल तमोगुण के कारण त्वचा ढल जाती है।

बाल अथवा तरुणावस्था में त्वचा के सतोगुणी अवयवों के स्थान में यदि किसी कारण तमोगुणी अवयव उत्पन्न हो जायें, तो उन से त्वचा का लूलापन होता है।

त्वचा के रजोगुणी बल से हस्त पाद की क्रियायें उत्पन्न होती हैं। हस्त और पाद की क्रियाओं का विस्तार शरीर के बल पर निर्भर होता है। इसलिये हस्त-क्रिया और पाद क्रिया का केन्द्रस्थान शरीर-बल है। प्राणियों के शरीर में जितना न्यूनाधिक बल प्राप्त होगा, उतना ही हस्त पाद से

क्रियायें न्यूनाधिक होती हैं। बल त्वचा के प्रत्येक अवयवों में फैला हुआ रहता है। वही शरीर रजोगुणी वायुतत्व होता है और उसी से हस्त पाद के क्रिया-भेद उत्पन्न होते हैं।

प्राणियों के शरीर में वायुतत्व के सतोगुण से उत्पन्न होने वाली ज्ञानक्रिया के साधन त्वचा को ज्ञानेन्द्रिय और रजोगुण से उत्पन्न होने वाले क्रिया-साधन हस्त पाद को कर्मेन्द्रिय कहते हैं।

हस्त क्रिया से लेना देना, पांव-क्रिया से चलना फिरना इत्यादि समस्त क्रियायें शरीर--वायुतत्व के रजोगुण और महावायु-मण्डल के योग से होती हैं।

प्रायः प्राणी उत्पन्न काल से तरुणावस्था तक जितनी अधिक अवस्था में होते हैं, उतना ही उनके शरीर का विस्तार बढ़ता है, और त्वचा के अवयव भी उतने ही अधिक पुष्ट बनते रहते हैं। इसका कारण वही शरीर-वायुतत्व का रजोगुण है। उत्पत्ति से तरुणावस्था पर्यन्त त्वचा जैसे २ पल, सखा, घड़ी, दिन, माह, वर्ष व अधिक काल में प्रवेश करती है, वैसे ही वैसे वायु तत्व के सत्वगुण से उसका विस्तार अधिक बनता है। त्वचा के विस्तार के साथ शरीर-वायुतत्व रजोगुण अवस्था में प्रवृत होता रहता है, जिससे प्राणियों का शरीर बलवान बनता है और शरीर के अङ्ग प्रति अङ्गों से होने वाली क्रियायें पुष्ट होती हैं। किन्तु पुष्ट सिर्फ शरीर की रजोगुण क्रियायें होती हैं, सतोगुणी (ज्ञानेन्द्रियों की) क्रियायें नहीं।

शरीर वायु तत्व की मध्यरजोगुणी अवस्था में शरीर की मध्यतरुणावस्था होती है । उस काल में शरीर का सबसे अधिक लम्बा चौड़ा विस्तार बनता है, और शरीर क रजोगुणी अंग प्रतिअङ्ग अधिक बलिष्ठ होते हैं ।

तरुणावस्था के पश्चात् शरीर-वायुतत्व के रजोगुण में तमोगुण, क्रमशः सतोगुण से अधिक बढ़ता जाता है, जिस से प्राणियों में चिन्ता, मोह अधिक बढ़ते रहते हैं। शरीर वायुतत्व के तमोगुण से वृद्धावस्था में प्राणियों की त्वचा ढल जाती है, बल घटने लगता है, हस्त पाद्-क्रिया ढीली होजाती हैं और मोह, चिन्ता अधिक बढ़ने लगते हैं । वृद्धावस्था में शरीर-पञ्चतत्व सब के सब विशेष तमोगुण युक्त होने से चिन्ता, मोह, आलस्य, निद्रा, भय, क्रोध और शोक बढ़ जाते हैं ।

प्राणियों से जितनी भी शारीरिक क्रियायें होती हैं । वे सब शरीर वायुतत्व, और महा वायुतत्व के योग से होती हैं । जैसेः—कान में शब्द-बोध की शक्ति है, किन्तु उस में शब्द को शब्द के स्थान से महावायुमण्डल पहुंचाता है और कान से हृदय के स्मरण स्थान तक उस को शरीर-वायुतत्व पहुंचाता है ।

त्वचा में स्पर्शज्ञान है । किन्तु शीत उष्ण के स्थान से उन को महावायुमण्डल ग्रहण करके त्वचा में पहुंचाता है । त्वचा शरीर-वायुतत्व के सूक्ष्म अवयवों द्वारा उनको दिल में पहुंचाता है, दिल को उन का ज्ञान होता है ।

आंखों में प्रकाश है। लेकिन उसका फैलाव महावायुमण्डल से होता है, जिस से दृष्टि को दृश्यमान सीमा में रूप का बोध होता है।

जिह्वा में रसबोध शक्ति है, लेकिन रस शोषण शक्ति उस को शरीर-वायुतत्व और महावायुतत्व के योग से प्राप्त होती है। रस को जिह्वा से मेदा में भी शरीर-वायुतत्व पहुंचाता है, और वही उस को शरीर के सारे अवयवों में पहुंचाता है। मल-मूत्र को त्यागने की क्रिया भी शरीर-वायुतत्व से होती है।

नासिका में घ्राण शक्ति है, किन्तु सुगन्ध और दुर्गन्ध के भेदों को उन के स्थानों से महावायु-मण्डल उड़ाकर नासिका में पहुंचाता है। नासिका से वे शरीर-वायुतत्व के द्वारा दिल में पहुंच कर उस में समाती हैं।

हाथों का लेना देना आदि समस्त हस्त-क्रियायें शरीर वायुतत्व और महावायु तत्व के योग से होती हैं। पैरों का चलना फिरना आदि समस्त क्रियायें शरीर-वायु तत्व और महावायु तत्व के योग से होती हैं।

वाणी कण्ठ से उत्पन्न होती है। महावायु उसको महाकाश में फैलाता है। महाकाश से शरीर-वायुतत्व उस को शरीर आकाश के हृदय स्थान में पहुचाता है।

लिङ्ग का बढ़ना सिकुड़ना, गुदा से मल मूत्र का उतरना, शरीर का बढ़ना घटना, मस्तिष्क में विचारने की क्रिया और

प्राणवायु का बाहर भीतर विचरना, ये सब क्रियायें शरीर वायुतत्व और महावायुतत्व के योग से होती हैं।

वायुतत्व के सतोगुण से प्राणियों के शरीर में त्वचा, दिल, दिमाग उत्पन्न होते हैं।

वायुतत्व के रजोगुण से प्राणियों के शरीर में प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान-ये पंचवायु तथा बल और हस्त पाद-क्रियायें उत्पन्न होती हैं।

वायुतत्व के तमोगुण से प्राणियों के शरीर में मोह, प्रेम, चिन्ता और प्रमाद उत्पन्न होते हैं।

शरीर वायुतत्व के उत्पन्न होते ही महाअग्नि तत्व से शरीर अग्नितत्व उत्पन्न होता है। उसके सतोगुण से प्रथम प्राणियों के शरीर का रूप बनता है। शरीर में रूप के तीन भेद होते हैं:—

पहिला—शरीर अग्नितत्व रूप के सतोगुण से नेत्रों का प्रकाश उत्पन्न होता है।

दूसरा—शरीर अग्नितत्व के रजोगुण से शरीर में जठराग्नि पैदा होती है।

तीसरा—शरीर अग्नितत्व के तमोगुण से क्रोध उत्पन्न होता है।

प्राणियों में नेत्रों का प्रकाश तीन प्रकार का है। सृष्टि में कुछ प्राणी ऐसे हैं जिनके नेत्रों के प्रकाश को, प्रकाश के विस्तार में

रूप का बोध होता है, जैसे मनुष्य, गाय, भैंस, हाथी, घोड़ा इत्यादि हैं।

कुछ प्राणी ऐसे हैं जिनके नेत्रों को अन्धकार के विस्तार में रूप का बोध होता है, जैसे उलूक पक्षि आदि अनेक निशाचर हैं।

कुछ प्राणि ऐसे हैं जिनके नेत्रों को प्रकाश और अन्धकार दोनों के विस्तारों में रूप का बोध होता है, जैसे बिल्ली, व्याघ्र, शेर आदि।

अग्नि से उत्पन्न होने वाले रूप के प्रधान तीन भेद होते हैं। रूप के सतोगुण से प्रकाशमय दिव्य, शुक्ल और पीले रङ्ग रूप उत्पन्न होते हैं।

तमोगुण से काले और नीले, रजोगुण से गोरे और लाल। अन्य रङ्गरूप जितने भी विश्व के अन्तर्गत हैं इन्हीं के योग भेद से उत्पन्न होते हैं।

रूपों का बोध करने वाला नेत्रों का प्रकाश भी तीन प्रकार का बताया गया है:—शरीर-अग्नितत्व के सतोगुण से उत्पन्न होने वाले सतोगुणी नेत्रों को प्रकाश के विस्तार में रङ्ग-रूप का बोध होता है।

शरीर अग्नितत्व के तमोगुण से उत्पन्न होने वाले तमोगुणी नेत्रों को अन्धकार के विस्तार में रङ्ग-रूप का बोध होता है।

शरीर-अग्नितत्व के रजोगुण से उत्पन्न होने वाले रजोगुणी नेत्रों को प्रकाश और अन्धकार दोनों के विस्तारों में रङ्ग रूप का बोध होता है।

तीनों प्रकार के नेत्रों में रूप-बोध की शक्ति वास्तविक शरीर अग्नितत्व के सतोगुण-भेदों से उत्पन्न होती है। यदि तीनों प्रकार के नेत्रों के सतोगुणी-स्थान में किसी प्रकार तमोगुण बढ़ जाय तो प्रकाश के स्थान में अन्धकार आजाता है। अन्धकार के कारण उन नेत्रों को रूप का बोध नहीं हो सकता। अर्थात् वे नेत्र अन्धे हो जाते हैं, जिससे वे रूप का बोध नहीं कर सकते।

सृष्टि में समस्त रङ्ग रूप, अग्नि तत्व के सतोगुण भेदों से उत्पन्न होते हैं। सुफेद, पीले, काले, नीले, गोरे, रक्त, हरे इत्यादि तमाम रङ्ग-रूप व प्राणियों के रूप और नेत्रों का प्रकाश अग्नितत्व के समान गुण से उत्पन्न होते हैं। इसलिये नेत्रों से रङ्ग रूप का बोध होता है।

प्राणियों के शरीर में जठराग्नि और पृथ्वी के गर्भ की अग्नि, अग्नि के रजोगुण से उत्पन्न होते हैं। जठराग्नि शरीर के प्रत्येक अवयवों में फैली हुई रहती है। शरीर अग्नितत्व प्रथम शरीर वायुतत्व के केन्द्रस्थान, दिल से उत्पन्न होता है। वह दिल से शरीर के प्रत्येक अवयवों में फैलता है। प्राणियों के शरीर में सांस वायु व पीने खाने के पदार्थों में जो जहरीला अँश होता है, जठराग्नि उसको भस्म करती है। भस्म पदार्थों के

सूक्ष्म तमोगुण भाग से प्राणियों के शरीर में क्रोध उत्पन्न होता है । वह प्राणियों के शरीर में पीने खाने और सांस लेने के पदार्थों के जहरीले अँश से पैदा होता है । शरीर की जठराग्नि भोज्य पदार्थों को भस्म तो अवश्य करती है किन्तु उनके सूक्ष्म तमोगुण को क्रोध में परिणत करती है । इसलिये रजोगुण जठराग्नि के तमोगुणी अँश से प्राणियों में क्रोध उत्पन्न होता है ।

खाद्य पदार्थ, पीने के पदार्थ और सांस वायु में जब अधिक तमोगुण का अँश सम्मिलित रहता है, तब प्राणियों की जठराग्नि या तो बुझ जाती है या मन्द हो जाती है ।

शरीर-जठराग्नि के बुझने से प्राणियों की मृत्यु होती है और शरीर-जठराग्नि के मन्द होने से वे बीमार होते हैं । सांसवायु के विशेष तमोगुण से प्राणियों के शरीर में ज्वर और ज्वर से उत्पन्न होने वाली अनेक बीमारियां उत्पन्न होती हैं । पीने के पदार्थों के अधिक तमोगुण अँश से दस्त और उभालना सम्बन्धी अनेक बीमारियां उत्पन्न होती हैं । खाद्य पदार्थों के अधिक तमोगुण अँश से पीड़ा और पेट-पेंठन सम्बन्धी बीमारियां पैदा होती हैं ।

प्राणियों के शरीर में अग्नितत्व से उत्पन्न होने वाले तमोगुण के तीन भेद होते हैं । सांसवायु, पीने और खाने के पदार्थों के सूक्ष्म--तमोगुण से शरीर में क्रोध; मध्य तमोगुण से शरीर की बीमार अवस्था; और विशेष तमोगुण से शरीर जठराग्नि बुझ कर प्राणियों की मृत्यु होती है ।

क्रोध दिल के अग्नि-स्थान में निवास करता है। बढ़ने पर वह आंख, मुंह, हाथ और पांव तक फैलता है। आंख में फैलने से वह आंखें लाल पीली बनाता है।

मुंह में फैलने से भयंकर शब्द अथवा कटु वाणी पैदा करता है और दान्तों को खट-खटाता व पीसता है। हाथ पांव में फैलने से मारपीट और धावना, उछलना कराता है।

अग्नितत्व के सतोगुण से प्राणियों के शरीर में रूप, नेत्रों में प्रकाश, वनस्पतियों व सकल पदार्थों का रङ्ग उत्पन्न होता है। अग्नितत्व के रजोगुण से जठराग्नि, आकाश, वायु, जल, पृथ्वी के गर्भ की अग्नि उत्पन्न होती है। अग्नितत्व के तमोगुण से दाहक शक्ति और प्राणियों के शरीर में क्रोध उत्पन्न होता है।

प्राणियों के शरीर में रूप के तीन भेद होते हैं:—सतोगुणी भेद से शुक्ल और पीले रंग होते हैं। रङ्गों का ज्ञान सतोगुणी नेत्रों से प्रकाश के विस्तार में होता है। तमोगुणी भेद में काले, नीले रङ्ग पैदा होते हैं। रङ्गों का ज्ञान तमोगुणी नेत्रों से अन्धकार के विस्तार में होता है। रजोगुणी भेद से लाल, गौर रङ्ग पैदा होते हैं। रङ्गों का ज्ञान रजोगुणी नेत्रों से प्रकाश और अन्धकार दोनों के विस्तार में होता है। अग्नि तत्व के उत्पन्न होते ही प्राणियों के शरीर में जलतत्व पैदा होता है। वह अग्नितत्व के तेज से द्रव्य बनकर रस बनता है। शरीरवायु उसको नाड़ियों

द्वारा शरीर के प्रत्येक अवयवों में प्रवाहित करता है। उसके तीन भेद होते हैं : सत्व, रज और तम। शरीर-रस के सत्वगुण से प्राणियों की रसना बनती है, शरीर-रस शरीर-जलतत्व के सत्व-गुण से बनता है। शरीर-जलतत्व जलमहातत्व से उत्पन्न होता है।

विश्व के अन्तर्गत खट्टे, मीठे, खारे, कड़वे इत्यादि जितने रस होते हैं सब महाजलतत्व के सत्वगुण अंशों से पैदा होते हैं।

प्राणियों की रसनाओं और समस्त रसों की बनावट में जलतत्व का समान गुण होता है। अथवा समस्त रसों की ज्ञान शक्ति से रसना की उत्पत्ति होती है। इसलिये विश्व के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाले समस्त रसों का ज्ञान प्राणियों को रसना के द्वारा होता है। जितने रस हैं, उनके सत्वगुण ज्ञान शक्ति से रसना बनती है, जिससे रसना को रसों की पृथक्ता का ज्ञान होता है।

शरीर में जलतत्व का जो रजोगुणी भाग होता है वह शरीर अग्नितत्व के रजोगुण से द्रव्य बन कर रक्त रूप धारण करता है। अर्थात् प्राणियों के शरीर में विचरने वाले रस का लाल रङ्ग बनता है जिस को रक्त व रुधिर कहते हैं। शरीर रस के भी तीन पृथक् २ भेद होते हैं: – रुधिर, मूत्र और पसीना।

प्राणियों के शरीर में जलतत्व, उन के पीने खाने व सांस लेने के पदार्थों के जलविभाग से प्राप्त होता है। खाने पीने व

सांस लेने से जिस रस का हम ग्रहण करते हैं वह प्राणियों के प्रथम अन्नकोष में पहुंचता है, वहां से दिल के जलकोष में पहुंचकर तीन पृथक् २ भागों में विभाजित होता है। प्रथम भाग जिस में रस का सत्वगुण होता है वह दिल के जलकोष से फेफड़े में पहुंचता है, वहां से जिह्वा में पहुंच कर उस में रस शक्ति उत्पन्न करता है। जल का सत्वगुण भाग प्रथम दिल के जलकोष में पहुंचता है, दिल से फेफड़े में और फेफड़े से रसना में पहुंचता है।

रस का रजोगुणी भाग दिल के जलकोष से अग्निस्थान में और वहां से दिल के रजोगुणी वायु स्थान में पहुंचता है। दिल के जिस स्थान में प्राण और समान वायु का मेल होता है, वह वायु का रजोगुणी स्थान है। वहां से रस का रजोगुणी भाग प्रवाहित होकर लिङ्ग स्थान में पहुंचता है। लिङ्ग स्थान में रस परिपक्व होकर रुधिर बनता है। उस में शरीर जलतत्व के रजोगुणी परिपक्व विभाग से लिङ्ग की क्रिया उत्पन्न होती है। इसलिये शरीर जलतत्व के रजोगुणी अंश से लिङ्ग उत्पन्न होता है। लिङ्ग स्थान में रुधिर के भिन्न भिन्न दो भेद होते हैं। प्रथम भेद से मूत्र बनता है और दूसरे भेद से जलन्दर रोग की उत्पत्ति होती है।

लिङ्ग स्थान में रस क्रिया के मुख्य दो भाग होते हैं। प्रथम भाग से लिङ्ग की अन्दरूनी क्रियाशक्ति रुधिर बनाती है और नाड़ियों द्वारा शरीर के प्रत्येक अवयवों में पहुंचाती है। लिङ्ग की क्रिया से रुधिर बनाने में जितना रस अनरस

होजाता है, अथवा उस में रजोगुणी अंश का अभाव से केवल तमोगुणी जल रह जाता है, वह लिङ्ग की दूसरी क्रिया से मूत्रकोष में जमा होता है। वहां अधिक बढ़ने पर वही क्रिया उस को लिङ्ग द्वारा बाहर फैंकती है।

प्राणियों के शरीर में रजोगुणी रस लिङ्ग स्थान में पहुंचने पर लिङ्ग की क्रिया शक्ति से रुधिर और मूत्र विभाग उत्पन्न होते हैं। रुधिर लिङ्ग स्थान से शरीर नाड़ियों द्वारा शरीर के प्रत्येक अवयवों में भ्रमण करता है और मूत्र लिङ्ग स्थान से बाहर उतरता है।

जिन प्राणियों के शरीर में लिङ्ग की क्रियाशक्ति के रजोगुण स्थान में, तमोगुण उत्पन्न हो जाता है, उनके लिङ्ग स्थान में रस के पहुंचने से रुधिर की यथार्थ क्रिया नहीं बनती। तमोगुण के कारण रस अनरस होकर लिङ्ग के समीपी स्थान में जमा हो जाता है। उसी से जलन्द्र रोग होता है।

शरीर में दौरा करने वाले रुधिर में किसी कारण तमोगुण उत्पन्न होने से प्राणियों के शरीर में पसीना पैदा होता है। वह त्वचा के छिद्रों द्वारा शरीर वायुतत्व से बाहर को बहता है।

शरीर जलतत्व के तमोगुण से प्राणियों में आलस्य उत्पन्न होता है। उसका निवास दिल में जल के सतोगुणी भाग में होता है और उसका फैलाव दिल से रुधिर की सीमा तक होता है। आलस्य उत्पन्न होने से रुधिर की गति शिथिल होकर प्राणी अपने उद्देश्य से शिथिल हो जाता है।

जल के सतोगुण से प्राणियों के शरीर में रसना, तमोगुण से आलस्य और रजोगुण से लिङ्ग उत्पन्न होता है। लिङ्ग की रजोगुण क्रिया से शरीर में जल तत्व के तीन भेद होते हैं: रुधिर, मूत्र और पसीना।

लिङ्ग के रजोगुणी स्थान में तमोगुण उत्पन्न होने से प्राणियों के शरीर में जल सम्बन्धी जलन्दर आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

शुक्र और रज में भी शरीर जलतत्व का अधिक भाग होता है। किन्तु वे केवल शरीर जलतत्व से ही नहीं बनते। शुक्र जल के साथ शरीर पञ्चभूतों के सतोगुण से और रज जल के साथ शरीर पञ्चभूतों के तमोगुण से युक्त होता है।

प्राणियों के शरीर में शरीर जलतत्व के उत्पन्न होते ही महापृथ्वी तत्व के गन्ध गुण से शरीर-पृथ्वीतत्व उत्पन्न होता है। शरीर में उसकी रचना, महापृथ्वी तत्व के समस्त गुण विभागों से होती है। स्थूल शरीर में पृथ्वी तत्व के त्रिगुण भेद होते हैं।

शरीर-पृथ्वी तत्व के सतोगुण भेद से प्राणियों के शरीर में घ्राण शक्ति उत्पन्न होती है, जो महापृथ्वी तत्व से उत्पन्न होने वाले सुगन्ध दुर्गन्ध आदि समस्त गन्ध विभागों का बोध करती है। वह प्राणियों के शरीर में शरीर-पृथ्वीतत्व के सत्वगुण से उत्पन्न होकर पृथ्वीतत्व की ज्ञानेन्द्रिय है।

घ्राण शक्ति अपने सतोगुणी ज्ञान से गन्ध विभागों का बोध करती है और समस्त गन्ध महापृथ्वी तत्व से उत्पन्न होते हैं ।

शरीर-पृथ्वीतत्व के रजोगुण-गन्ध भेद से गुदा उत्पन्न होता है । गुदा के दो मुख्य भाग होते हैं । उस के प्रथम भाग से आन्तें, मेदा और दान्त पैदा होते हैं और दिल, फेफड़ा, कलेजा का स्थूलपन बनता है । गुदा के दूसरे भाग से मांस, नाड़ियों का स्थूलपन, अस्थि, (हड्डियां) चर्म और बाल उत्पन्न होते हैं ।

शरीर-पृथ्वी तत्व के तमोगुण से निद्रा उत्पन्न होती है । जब महापृथ्वी रात्रि में अन्धकार (तमोगुण) धारण करती है, तब शरीर--पृथ्वी तत्व भी महापृथ्वी तत्व के तमोगुण के कारण निद्रावस्था को प्राप्त होता है । निद्रा पृथ्वी तत्व के तमोगुण से उत्पन्न होती है ।

इस तरह प्रथम महाचैतन्य की चैतन्य सत्ता से और सब तत्वों के सत्वगुण के अधिक प्रभाव से पृथ्वी पर पुरुष, मनुष्य-स्थूल शरीर में उत्पन्न हुआ । उसमें शुक्र की उत्पत्ति हुई ।

शुक्र, पुरुष--प्राणियों के शरीर में महाचैतन्य की चेतनता और सब तत्वों के सतोगुण अंश से उत्पन्न होता है । उसके पश्चात् सत्ता से पोषित प्रकृति और सब तत्वों की उत्पादन शक्ति से स्त्री मनुष्य--स्थूल शरीर में उत्पन्न हुई । उसमें रज की उत्पत्ति हुई ।

प्राणियों के भोज्य पदार्थों के सतोगुण से शुक्र, रजोगुण से रुधिर मांस, और तमोगुण से मल-मूत्र बनते हैं ।

जिन प्राणियों के स्थूल शरीर में शुक्र की उत्पत्ति होती है, वे स्थूल शरीर में पुरुष होते हैं। और जिन प्राणियों के स्थूल शरीर में रज की उत्पत्ति होती है, वे स्थूल शरीर में स्त्रियां होती हैं।

स्त्रियों के रज से उत्पन्न होने वाले शरीर में प्राणियों की महाप्रकृति की तरह मुख्य तीन अवस्थायें होती हैं:—लक्ष्मी, सरस्वती, और काली। वाल्यावस्था लक्ष्मी रूप है, तरुणावस्था सरस्वती, और वृद्धावस्था काली है। पुरुष-प्राणियों की भी बाल, तरुण और वृद्ध, ये तीन अवस्थायें रज के विकार से होती हैं, जिससे गर्भ में स्थूल शरीर बनता है।

जिस तरह महाप्रकृति अपनी लक्ष्मी अवस्था से सरस्वती अवस्था प्राप्त होने तक विश्वविराट् के अन्तर्गत अपने तमोगुण स्वभाव से महाचैतन्य आधार में चौदह लोकों की उत्पत्ति के लिये चौदह प्रकार की विभिन्न तमोगुण क्रियाओं का सञ्चार उत्पन्न करती है, उसी तरह स्त्रियों की बाल अवस्था से तरुणावस्था प्राप्त होने तक उनके शरीर में योनियों के अन्तर्गत रज के तमोगुण से विभिन्न चौदह प्रकार की तमोगुणी क्रियाओं का सञ्चार उत्पन्न होता है। इन क्रियाओं से स्थूल शरीर का आकार बनता है। स्त्रियों की बाल अवस्था में रज के तमोगुण से चौदह प्रकार की क्रियायें उत्पत्ति के लिये समर्थ नहीं हो सकतीं, केवल गर्भ में उनका आकार बनता रहता है। इसलिये स्त्रियों की बाल अवस्था में बच्चों की शरीर-रचना नहीं हो सकती।

स्त्रियां बाल अवस्था से जब तरुणावस्था में प्रवेश करती हैं, तब महाप्रकृति की तरह वे भी सरस्वती रूपा होती हैं। महाप्रकृति सरस्वती अवस्था में विश्वविराट् के चौदह लोकों की उत्पादिका तमोगुण-क्रिया उत्पन्न करती है। तरुणावस्था में स्त्रियों की योनियों में भी रज के चौदह उत्पादक तमोगुण भेद उत्पन्न होते हैं। महाप्रकृति की जिस तरह रचना और विनाश, दो गतियां हैं, उसी तरह स्त्रियों के रज की भी रचना और विनाश, दो गतियां होती हैं।

जिस तरह महाप्रकृति अपनी रचना-गति में महाचैतन्य के सतोगुण आधार में विश्वविराट् के चौदह लोकों की उत्पत्ति करती है और विनाश-गति में महाचैतन्य में लुप्त होती है, उसी तरह स्त्रियों की योनियों में रज की रचना शक्ति शुक्र को ग्रहण कर उस के सत्वगुण चैतन्य सत्ता से गर्भ के चौदह लोक आकार में प्राणियों के स्थूल शरीर की रचना करती है। और विनाश गति में रज की रचना शक्ति गर्भ में लुप्त रहती है, जिस में स्त्रियों की योनियां शुक्र को ग्रहण करने में समर्थ नहीं होतीं। वही रज की विनाश गति है।

जिस तरह महाचैतन्य के सतोगुण आधार में महाप्रकृति अपने उत्पादक तमोगुण स्वभाव से रचना गति में चौदह लोकों की उत्पत्ति करती है और विनाश गति में चौदह लोकों सहित चैतन्य में लुप्त होती है, उस का ठीक उदाहरण चन्द्रबिम्ब पर घटता है:-जैसे पूर्णमासी के पूर्ण प्रकाश और आमावास्या के पूर्ण अन्धकार के योग से शुक्ल और कृष्ण पक्ष की अन्य १४ तिथियां

होती हैं, अथवा जैसे चन्द्रबिम्ब तीस दिन के चक्र में घूम कर पूर्णमासी सहित पन्द्रह दिन का शुक्ल पक्ष और आमावास्या सहित पन्द्रह दिन का कृष्ण पक्ष करता है वैसे ही सरस्वती स्त्रियों की योनियों में रज का भी तीस दिन का भ्रमण होता है। रज की एक पक्ष में रचना और दूसरे में विनाश शक्ति होती है।

रचना पक्ष में स्त्रियों की योनियों में जो रज होतो है, वह अपनी उत्पादक तमोगुण शक्ति से स्वजातीय शुक्र को ग्रहण कर उस को सतोगुण सत्ता से पोषित होकर स्त्रियों के गर्भ में प्राणियों के स्थूल शरीर (बच्चों) को उत्पन्न करने में समर्थ होता है। लेकिन विनाश पक्ष में स्त्रियों की योनियों का रज शुक्र को ग्रहण करने में असमर्थ होता है।

रज की गति के वे दो पक्ष स्त्रियों की योनियों में चन्द्रमा के शुक्ल और कृष्ण पक्ष की तरह, शुक्ल और कृष्ण होते हैं।

स्त्रियों की योनियों के शुक्ल पक्ष में उज्वल, और कृष्ण पक्ष में रक्त रज होता है।

जिस तरह आमावास्या के पूर्ण तमोगुण के उपरान्त चन्द्रमा का शुक्ल पक्ष होता है, वैसे ही स्त्रियों की योनियों में रज के पूर्ण तमोगुण रक्त रज के उपरान्त उस का शुक्ल पक्ष होता है। उस में स्त्रियों की योनियों के रज में उत्पादक शक्ति होती है, जिस से उन दिनों स्त्रियों का रज स्वजातीय शुक्र को ग्रहण कर बच्चों का स्थूल शरीर रचने में समर्थ होता है। जिसतरह

चन्द्रमा के पूर्ण प्रकाश पूर्णमासी के उपरान्त कृष्ण पक्ष होता है वैसे ही स्त्रियों की योनियों के शुक्ल पक्ष के उपरान्त रज विनाश की ओर बढ़ता रहता है। उस पक्ष में रज में न तो शुक्र को ग्रहण करने की ओर न प्राणियों के शरीर उत्पन्न करने की शक्ति होती है । इसलिये रज के विनाश पक्ष में स्त्रियों के गर्भ में बच्चों की उत्पत्ति नहीं हो सकती ।

महाप्रकृति अपनी सरस्वती अवस्था में जिस तरह चौदह लोकों की उत्पत्ति के पश्चात् अल्प लोकों का विनाश कर अल्प प्रलय करती है, उसी तरह स्त्रियों की तरुणावस्था में उनके गर्भ से बच्चों की उत्पत्ति के पश्चात् कुछ काल के लिये रज की उत्पादन क्रिया विनाश होकर उसकी अल्प प्रलय होजाती है।

रज में जो रचना और विनाश गति होती है, उसके योग से उत्पन्न होने वाले प्राणियों का स्थूल शरीर जीवन और मरण के चक्र में घूमता है। गर्भ से बच्चों के पैदा होने के पश्चात् स्त्रियों की योनियों में रज की दोनों प्रकार की गतियां कुछ काल के लिये विनाश होजाती हैं और उनके स्थान में अन्धकार तमोगुण भर जाता है। रज की वही अल्प प्रलय होती है ।

स्त्रियों की तरुणावस्था में रज का तमोगुण, महाप्रकृति की सरस्वती अवस्था की तरह गर्भ में कई बार बच्चों की उत्पत्ति करता है और कई बार गर्भ में विनाश गुण धारण कर अल्प प्रलय करता है। अर्थात् उत्पादन-क्रिया से गर्भ में बच्चों की उत्पत्ति करता है और उनकी उत्पत्ति के पश्चात् गर्भ से रज का विनाश कर अल्प प्रलय करता है।

स्मरण रहे कि स्त्रियों का उत्पादक रज जब स्वजातीय शुक्र को ग्रहण करता है, तब वह गर्भ में स्थूल-शरीर की अवस्था को प्राप्त होता है। स्त्रियों की योनियों में रज की जो शुक्ल और काली दो प्रकार की गतियां होती है, उनमें से प्रथम शुक्ल गति शुक्र की चैतन्य सत्ता से गर्भ की स्थिति करती है। उसके पश्चात् शुक्र की सत्ता से काली गति भी विनाश गुण से परिवर्तित होकर उत्पादन शक्ति में प्रवृत होती है। उन दोनों गतियों से बराबर गर्भ में बच्चों के स्थूल शरीर की रचना होती है।

गर्भ में प्राणियों का पूर्ण शरीर रचने पर फिर वे दोनों गतियां पृथक् होकर काली गति अपने तमोगुण से गर्भ के बच्चों को गर्भ से बाहर फेंकती है और शुक्ल गति शुक्ल वर्ण से दूध बना कर स्त्रियों के स्तनों में पहुंचाती है।

बच्चों की उत्पत्ति में रज के तीन भेद होते:—

प्रथम—रजकी शुक्ल गति के तमोगुण से स्त्रियों के गर्भ में बच्चों के शरीर जागृत होते हैं और काली गति के तमोगुण से शरीर में मृत्यु का संचार होता है।

दूसरा—स्त्रियों का शरीर-रस जो उनकी योनियों में रज बनकर दो प्रकार की शुक्ल और काली गतियों में भ्रमण करता है। और शुक्र के सतोगुण प्रभाव से उसकी काली गति के रजोगुणी रस में जो सतोगुण का योग होता है, वह शुक्ल गति के रजोगुणी रस में सम्मिलित होता है। और

शुक्ल गति के रजोगुणी रस में जो तमोगुण का योग होता है, वह काली गति के रस में मिल जाता है। इसलिये काली गति का रस बच्चों के उत्पन्न काल में रक्त बनता है और शुक्ल गति का रस शुक्ल वर्ण से दूध बनता है।

तीसरा—स्त्रियों की योनियों में जो रज शुक्ल और काली दो प्रकार की गतियों में बराबर भ्रमण करता है वह उनके सारे शरीर में विचरने वाले रस की परिपक्क अवस्था में बनता है। रस का रजोगुणी परिपक्क स्थान योनि और लिङ्ग हैं।

स्त्रियों के शरीर में भ्रमण करने वाला रस परिपक्क अवस्था में योनियों में पहुंचता है और रज में परिणत होता है।

स्त्रियों की वृद्धावस्था काली अवस्था है। उस अवस्था में रज की शुक्ल और काली दोनों प्रकार की गतियां विनाश हो जाती हैं जिससे उन की बच्चा उत्पन्न करने की शक्ति नष्ट हो जाती है।

तरुणावस्था में भी कोई कोई स्त्रियां कालीस्वरुपा होती हैं। उन की योनियों में रज की विनाश क्रिया बनी रहती है। उन के भी तीन भेद होते हैं; उन में से कुछ स्त्रियां नपुंसक होती हैं। उन की योनियों में रज की शुक्ल और काली दोनों प्रकार की गतियां नहीं बनती, एक तीसरी ही प्रकार की विनाश गति उत्पन्न हो जाती है। उन स्त्रियों से सन्तान उत्पन्न नहीं होती।

कुछ स्त्रियां ऐसी हैं जिनकी योनियों में रज की केवल शुक्र गति उत्पन्न होती है। जिस के कारण स्त्रियां रजस्वला नहीं होती और न उन के रज में बच्चा उत्पादन की शक्ति होती है।

तीसरे प्रकार की स्त्रियों की योनियों में केवल विनाश गति का रज होता है। ऐसी स्त्रियां रजस्वला तो होती हैं, किन्तु उन के रज में केवल विनाश शक्ति रहती है, जिस से उन का रज शुक्र को ग्रहण करने में असमर्थ होता है। उन के गर्भ में भी बच्चों की उत्पत्ति नहीं हो सकती। ऐसा रज अधिक तमोगुण के कारण कई एक स्त्रियों की योनियां में अधिक स्रावित होता है, जिस का समय भी नियत नहीं होता।

इन सब प्रकार की स्त्रियों के रज में विनाशकारी तमोगुण के कारण विभिन्न तरह की काली स्वरूपा होती हैं। उन सब के रज में विनाश क्रिया होती है और उन सब से सन्तान की उत्पत्ति नहीं हो सकती। ये काली स्त्रियों के भेद होते हैं। इसी तरह स्थूल-शरीर में स्त्रियों के अनेक भेद होते हैं।

यदि सरस्वती स्त्रियों के रज की रचना शक्ति में कोई लोक क्रिया का अभाव हो अर्थात् उन की योनियों में रज की शुक्र और कृष्ण दोनों गतियों में चौदह चौदह प्रकार की यथार्थ रचना शक्ति न बनती हो, तो उन के रज में शुक्र को ग्रहण करने की शक्ति तो अवश्य होती है, किन्तु गर्भ में प्राणियों का

पूर्ण स्थूल शरीर नहीं बनता, जिससे कई प्रकार के अधूरे शरीरों की उत्पत्ति होती है।

सरस्वती स्त्रियों की योनियों में प्रवेश करने वाला शुक्र यदि किसीप्रकार दो तीन या अधिक विन्दु--भेदों से प्रवेश करे तो उन विन्दुओं की पृथक् पृथक् चैतन्य सत्ता और रज की पूर्ण रचना शक्तियों से गर्भ में दो तीन व अधिक बच्चों की शरीर रचना होती है।

इसीतरह एक ही प्रकृति के विकार भेदों से सृष्टि की उत्पत्ति में भिन्नता होती है। महाचैतन्य के सत्वगुण प्रभाव के कारण पञ्चभूतों के योग से उत्पन्न होने वाले जिन प्राणियों के शरीर में शुक्र की उत्पत्ति होती है, वे स्थूल शरीर में पुरुष होते हैं। और, महाप्रकृति के तमोगुण प्रभाव के कारण पञ्चभूतों के योग से उत्पन्न होने वाले जिन प्राणियों के शरीर में रज की उत्पत्ति होती है, वे स्थूल शरीर में स्त्रियां होती हैं। इसी तरह समस्त प्राणियों के शरीर में पुरुष और स्त्री भेद होते हैं।

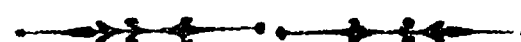
अगले अध्यायों में विश्व को उत्पन्न करने वाले पृथक् २ तत्वों के गुण कर्मों का वर्णन किया गया है।



अध्याय २



परमतत्व महाचैतन्य ।



सूर्य्य, पृथ्वी, नक्षत्र, ग्रह, अनन्त पिण्ड व ब्रह्माण्ड, आकाश, वायु, अग्नि, जल, दिन, रात्रि, तिथि, पक्ष, माह, साल, शताब्दि, युग, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, मन, बुद्धि, अहङ्कार, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, कर्ता, करण, क्रिया, मनुष्यादि समस्त प्राणी और अनन्त विराट् एवं सब चराचर से प्रथम क्या था ?

इन सबसे प्रथम सर्वव्यापक निराकार निर्गुण ब्रह्म था, वह सूक्ष्म से सूक्ष्म है, नित्य है, चैतन्य स्वरूप है। वह न तो नेत्रों के सामर्थ्य से देखने योग्य है, न वाणी की शक्ति से वर्णन करने योग्य और न उसके उदाहरण में कोई वस्तु दिखाने योग्य है।

केवल इतना कहा जा सकता है कि वायु जो उस सूक्ष्म की अपेक्षा स्थूल से स्थूल है वह भी जब दृष्टि-गोचर नहीं हो सकता, न उसका रङ्ग रूप ही वर्णन किया जा सकता है,

न कर्मेन्द्रियों से ग्रहण हो सकता है, केवल ज्ञानेन्द्रियों द्वारा उसका कुछ बोध होता है, तब वह सूक्ष्म तो स्वतः ही सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, वायु का भी प्राण वायु, वायु का संचालक वायु का चैतन्य रूप, अगोचर और अकथनीय है। वह अति सूक्ष्म होने पर भी सर्वज्ञ है, और असीम व्यापक होने से अनन्त है।

अतः, कुछ महाधुरन्धर ज्ञानियों ने ज्ञानेन्द्रियों में प्रधान बुद्धि द्वारा उस अनन्त और अति सूक्ष्म का किसी अंश में इस तरह अनुभव किया, जैसे कोई तरैय्या अगाध समुद्र के किसी अंश में तैरकर विचार द्वारा उस का अनुभव करता है।

वह सूक्ष्म कैसा है? सत्य है, चैतन्य है, प्रकाशमय है, शुद्ध स्वरूप है। नित्य है, अखण्ड है, अनादि है, असङ्ग है, सर्वव्यापक और अनन्त है। समस्त विश्व ब्रह्माण्ड का नाश होने पर भी जिसका नाश नहीं होता ऐसा अविनाशी है। कालातीत है, प्रकृति का आधार है। इसलिये प्रकृति से भी श्रेष्ठ, परे और विश्व का पैदा करने वाला बीज है।

जैसे हरे, पीले, लाल, रङ्ग-बिरङ्गे गोलाकार लाखों पत्ते, लम्बे आकार की हजारों टहनियां, नाना रङ्ग और आकार के लाखों पुष्प और फल, भिन्न भिन्न सूरत की अगणित जड़ें, सारा वटवृक्ष, जिसको हम देख रहे हैं, एक सूक्ष्म बीज के अन्तर्गत है। जिस के अन्तर्गत देखने से वृक्ष कुछ भी नहीं दिखाई देता है अर्थात् वह निराकार रूप में बीज की चैतन्य सत्ता से पोषित और सुरक्षित है। उसी से सारा वटवृक्ष असंख्य

जड़ों, सहस्रों टहनियों, लाखों पत्तों, नाना पुष्पों और फलों सहित हरा भरा बना है, वैसे ही उस सूक्ष्म बीज की चैतन्य सत्ता से पोषित और रक्षित निराकार प्रकृति से यह सारा व्यापक विराट् ब्रह्माण्ड, ऊर्ध्व बटवृक्ष की तरह पैदा होता है। जिसकी जड़ माया, जड़ की सिंचाई सत् रज तम त्रिगुण, अंकुर उत्पत्ति, पत्ते कामनायें, पुष्प इच्छायें व भुः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्य आदि लोक, तना आकाश, फल सूर्य चन्द्रादि, और टहनियां आकर्षण शक्तियां हैं, जो इस बृक्ष के जड़, तना, टहनियां, पत्ते, पुष्प, और फलों को अपनी २ नियत जगहों पर रखने वाली हैं। उस सूक्ष्म चैतन्य बीज से यह सारा विराट् विश्व उत्पन्न और पोषित हो रहा है।

वह वायु में प्राण वायु, अग्नि--सूर्य्य में तेज--प्रकाश, जल चन्द्रमा में रस, पृथ्वी में उर्वरा, पिण्डों में आकर्षण, नक्षत्र बिजली में चमक, लोकों में रचनात्मक, जीवधारियों में आत्मा, पुरुषों में शुक्र और पुरुषार्थ, बलवानों में बल, ज्ञानियों में ज्ञान, तपस्वियों में तप, इन्द्रियों में मन, देवताओं में महादेव, स्वर्ग में आनन्द, संसार में जीवन, औषधियों में सोम रस, पुष्पों में सुगन्ध, फलों में मधुरता, बृक्ष में बीज, बीज में उत्पादक, उत्पत्ति में कामदेव, प्रकृति में चैतन्यता और विश्वविराट् में परमात्मा है।

इस ध्येय पर उस सूक्ष्म ब्रह्म को ही एक महाचैतन्य मानते हैं, जो विश्व ब्रह्माण्ड को चैतन्य करने वाला आत्मा से भी श्रेष्ठ परमात्मा है। अनन्त ब्रह्माण्डों के समस्त सूर्य्यों सहित

भूलोक सहित समस्त लोक, चन्द्रमा सहित अनन्त ग्रह, आकाश सहित पांचों तत्व, उनके भेद सहित पच्चीस उपतत्व, सतोगुण सहित तीनों गुण, मीठा रस सहित षड् रस, मनुष्य गण, देवगण, देवों से भी महादेव गण, पृथ्वी आदि सकल पिण्डों के निवासी, थलचर, जलचर, नभचर, स्थावर, जङ्गम आदि समस्त वर्णन करने योग्य और वर्णन से भी परे अवर्णनीय सब उस एक चैतन्य सूक्ष्म ब्रह्म के भिन्न भिन्न अङ्ग प्रतीत होते हैं। और सब परस्पर एक दूसरे के साथी और सहायक हैं।

सबको मिलाकर एक विराट् पुरुष बनता है। विराट् पुरुष के वे सब अलग अलग अङ्ग हैं। उन सब का आपस में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि परमाणु से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त एक दूसरे की सहायता के बिना सब अपने अपने कार्य्यों से च्युत हो जाते हैं। अथवा अपने श्रेय साधन से गिर जाते हैं। उसको विनाश व मरण कहते हैं। इसलिये यह स्पष्ट हुआ कि परमाणु से लेकर विराट् पुरुष तक जीवन मरण के चक्र में घूमते हैं। केवल एक सूक्ष्म चैतन्य ब्रह्म ही शेष चैतन्य रह जाता है। ब्रह्म के सिवाय सबका नाश होता है और वास्तव में नाश किसी का नहीं होता। चैतन्य से विराट् बना और विराट् के पश्चात् फिर चैतन्य ही शेष रह गया, तो नाश क्या हुआ?

आकाशादि पञ्च महाभूत और उनसे भी परे क्रमशः महाकर्म, महाकाल, महारचना, महारचनात्मक, महाजागृति इन सब से परे जो है उसको चैतन्य कहते हैं। महाजागृति से

लेकर आकाशादि पञ्चमहाभूतों सहित समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाले उस चैतन्य को महाचैतन्य व ब्रह्म-चैतन्य कहते हैं। उससे परे कहने को न कोई शब्द है, और न कोई सीमा है। वह चैतन्य सत्य, अनन्त और अखण्ड है।



अध्याय ३

महाप्रकृति का जाग्रत स्वरूप ।

महाप्रकृति की मुख्य दो तरह की गतियां होती हैं:—रचना और विनाश। दोनों में चौदह प्रकार के भेद होते हैं। उन को चौदह लोक कहते हैं।

ब्रह्म-चैतन्य की पोषित सत्ता से महाप्रकृति रचना गति में चौदह लोक-सृष्टि उत्पन्न करती है और विनाश गति में अपने स्वभाव उग्र तमोगुण से उन का नाश करती है।

इसी तरह स्त्रियों की योनियों में भी रज की उत्पादन और विनाश दो गतियां होती हैं, और प्रत्येक में चौदह २ तरह की क्रियायें होती हैं।

रज की उत्पादन गति में शुक्र की चैतन्य सत्ता से स्त्रियों के गर्भ में (रजस्वला के पश्चात्) चौदह दिन तक बच्चों के शरीर की स्थिति होती है। उस के पश्चात् फिर १४ दिन तक रज विनाश गति धारण करता है, उस में शरीर की स्थिति नहीं होसकती। स्त्रियों की योनियों में भी चौदह लोक होते हैं। रज उत्पादन और विनाश गति से उन्हीं में भ्रमण

करता है। ऐसे ही महाप्रकृति के तमोगुण से विश्व, रचना और विनाश गति में घूमताहै।

महाप्रकृति की आरम्भ रचना को महाजागृति कहते हैं। उस का आधार चैतन्य है। वह चैतन्य के आश्रित होकर उस की चैतन्य सत्ता से जागृत और पोषित होती है। उस का प्रथम स्वरूप चैतन्य के पूर्ण सत्वगुण-आभास से देदीप्यमान प्रकाशमय होता है। महाजागृति चैतन्य की पोषित सत्ता से अपने स्वरूप में बढ़ कर प्रथम सत्यलोक रचती है। सत्यलोक चैतन्य के पूर्ण प्रकाश और महाजागृति के आरम्भ तमोगुण के योग से उत्पन्न होता है। वह महाजागृति का प्रथम सतोगुण और प्रकाशमय लोक है।

चैतन्य आधार में महाजागृति अनन्त काल तक अपनी अवस्था में बढ़ती रहती है। उस से सत्यलोक के अण्ड, पिण्ड और ब्रह्माण्डों की रचना होती है।

महाजागृति सत्यलोक की रचना के पश्चात् उस की सीमा से आगे बढ़कर तपलोक का आकार उत्पन्न करती है। उस की रचना में सत्यलोक की रचना से तमोगुण-अन्धकार कुछ अधिक होजाता है, जिस से सत्य और तपलोक में भिन्नता होती है। सत्यलोक में अधिक सत्वगुण के कारण सुख और आनन्द तपलोक से अधिक होते हैं। तपलोक में सत्यलोक से तमोगुण कुछ अधिक हो जाता है।

जागृत रूप प्रकृति अपने स्वभाव में बढ़ने से तपलोक के

विस्तार से आगे बढ़कर जनलोक का आकार उत्पन्न करती है। और उस में जनलोक के अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्डों की रचना करती है। जनलोक की रचना में महाप्रकृति का तमोगुण तपलोक की रचना से कुछ अधिक होता है। इसलिये जनलोक सुख और आनन्द में तपलोक से कुछ न्यून होता है।

जनलोक की रचना के पश्चात् महाजागृति फिर अपने स्वभाव में बढ़ने से जनलोक की सीमा से बाहर महालोक की रचना करती है। उस में महालोक के अण्ड, पिण्ड और ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती है।

महालोक की अनन्त अवधि के पश्चात् उस की सीमा से बाहर महाजागृति का स्वभाव बढ़ने से स्वःलोक की रचना होती है। उस में स्वःलोक के अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती हैं। स्वःलोक की रचना में महालोक की उत्पत्ति से सुख और आनन्द कुछ न्यून होते हैं।

स्वःलोक की उत्पत्ति के पश्चात् महाजागृति का स्वभाव आगे बढ़ने से भुवलोक बनता है। उस के विस्तार में अनन्त काल तक महाजागृति उसके अण्ड, पिण्ड और ब्रह्माण्डों की रचना करती है। भुवलोक में सुख और आनन्द स्वःलोक से न्यून होते हैं।

भुवलोक की रचना के पश्चात् महाजागृति अपने तमोगुण स्वभाव में बढ़कर भुवलोक की सीमा से बाहर भूलोक का आकार बनाती है। उसी में भूलोक के अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्डों

की उत्पत्ति होती है। भूलोक की रचना में सुख और आनन्द भुवर्लोक से न्यून होते हैं। भूलोक की उत्पत्ति में महाचैतन्य का सत्वगुण और महाप्रकृति का तमोगुण समान होते हैं।

भूलोक से ऊपर क्रमशः उत्पन्न होने वाले भुवः स्वः महः जनः तपः और सत्य लोकों की उत्पत्ति में महाचैतन्य का सत्वगुण महाप्रकृति के तमोगुण से अधिक होता है। सत्यलोक से भूलोक तक प्रत्येक लोक की रचना में महाजागृति अपने स्वभाव तमोगुण में बढ़ती रहती है। लेकिन सत्यलोक से भूलोक के स्वर्ग तक सत्वगुण से तमोगुण न्यून होता है।

भूलोक के अन्तर्गत मृत्युलोक की रचना में महाचैतन्य का सत्यगुण और महाप्रकृति का तमोगुण समान होते हैं, इसलिये मृत्युलोक की रचना में सत्य, असत्य, प्रकाश, अन्धकार, जीवन, मरण, ज्ञान, अज्ञान, सुख और दुःख की समानता होती है। भूमण्डल के पृथ्वीतल में महाचैतन्य के प्रकाश और महाप्रकृति के अन्धकार की समानता से कभी दिन और कभी रात्रि होती है। सूर्य्य का प्रकाश जो दिन में पृथ्वी को प्रकाशित करता है वह महाचैतन्य से सूर्य को प्राप्त होता है। रात्रि में अन्धकार जो पृथ्वी को आच्छादित करता है वह महाप्रकृति का तमोगुण अन्धकार है। वही निद्रा में प्राणियों को घेरता है। निद्रा भी एक तरह की छोटी मृत्यु है।

सूर्यमण्डल से ऊपर भुवः स्वः महः जनः तपः और सत्य लोक हैं। इन सब की बनावट में सत्वगुण प्रकाश अधिक और

तमोगुण न्यून होता है। मृत्युलोक में दोनों समान होते हैं। उसकी सीमा से बाहर तमोगुण सत्वगुण से अधिक होजाता है। उन दोनों के योग से अतललोक की उत्पत्ति होती है। उस के पश्चात् महाप्रकृति अधिक तमोगुण से अतललोक की सीमा से बाहर वितललोक की रचना करती है। उस में तमोगुण अतल लोक से अधिक होता है। वितललोक की रचना के पश्चात् उस की सीमा से बाहर महाप्रकृति अधिक तमोगुण से सुतल लोक की रचना करती है। उस में तमोगुण वितललोक से अधिक होता है। इसी तरह महाप्रकृति क्रमशः तमोगुण में बढ़ने से तलातल, महातल, और पाताल लोकों की रचना करती है। उन की रचना में तमोगुण भिन्न भिन्न भेदों से अधिक बढ़ता रहता है।

सत्यलोक से पाताललोक तक चौदह लोकों की उत्पत्ति में महाचैतन्य का सत्वगुण और महाप्रकृति के तमोगुण का सम्बन्ध चौदह तिथियों में चन्द्रबिम्ब के प्रकाश और अन्धकार का सा होता है।

जैसे पूर्णमासी के पश्चात् प्रतिपदा के चन्द्रबिम्ब में अधिक प्रकाश और तमोगुण का आरम्भ सञ्चार होता है, वैसे ही सत्यलोक की रचना में महाचैतन्य का अधिक सत्वगुण प्रकाश और महाप्रकृति के तमोगुण का आरम्भ सञ्चार होता है। उस के पश्चात् जिसतरह द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी षष्ठी और सप्तमी के चन्द्रबिम्ब पर क्रमशः अन्धकार बढ़ता रहता है उसी तरह तप आदि लोकों की रचना में महाप्रकृति

तमोगुण में बढ़ता रहता है। किन्तु सत्य लोक से भुवलोक तक प्रत्येक की रचना में सत्वगुण-प्रकाश तमोगुण-अन्धकार से अधिक होता है।

जिस तरह अष्टमी के मध्यान्ह में चन्द्रविम्ब पर प्रकाश और अप्रकाश बराबर होते हैं, उसी तरह भूमण्डल की रचना में सत्वगुण-प्रकाश और तमोगुण-अन्धकार बराबर होते हैं। अष्टमी के उपरान्त नवमी से चतुर्दशी तक जिस तरह प्रत्येक तिथि में चन्द्रविम्ब पर तमोगुण अधिक बढ़ता रहता है, वैसे ही अतललोक से पाताललोक तक प्रत्येक की रचना में महाचैतन्य के सत्वगुण से महाप्रकृति का तमोगुण क्रमशः बढ़ता रहता है। तमोगुण की प्रधानता से उन लोकों को तमोगुणी लोक कहते हैं। उन में दुःख और अन्धकार अधिक होता है।

भूलोक से सत्यलोक तक प्रत्येक की रचना में महाचैतन्य का सत्वगुण अधिक और महाप्रकृति का तमोगुण न्यून होता है। सत्वगुण की प्रधानता से उन को सतोगुण लोक कहते हैं। उन में सुख और प्रकाश अधिक होता है।

महाचैतन्य के पूर्ण सत्वगुण से उत्पन्न होने वाली महाजागृति प्रथम सत्यलोक की रचना करती है। उस के पश्चात् तप आदि समस्त लोकों की रचना करते हुये विराट् रूप धारणकर पाताल लोक की अन्तिम सीमा पर मध्य तरुणावस्था में प्रविष्ट होती है।

एक महाजागृतमय प्रकृति चौदह लोकों को उत्पन्न करने से विभिन्न चौदह प्रकार के उत्पादन भेदों में विभाजित होती है, जिनसे पृथक् पृथक् लोकों की रचना होती है। प्रत्येक लोक रचनायें अथवा प्रकृतियां भी अपने २ लोकों के अन्तर्गत अनेक रूप धारण कर उनमें अनन्त अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्डों की रचना करती हैं। इसी तरह एक महाप्रकृति परिवर्तनशील-तमोगुण से विश्व के अन्तर्गत अनन्त रूप और अनन्त भेद उत्पन्न करती है।

पाताल लोक की रचना के पश्चात् भी महाप्रकृति अपने स्वरूप--तमोगुण में बढ़ती रहती है। उससे फिर लोकों की रचना नहीं होती। पाताललोक की अन्तिम सीमा से ऊपर जो महातमोगुण बढ़ता है, उससे रचना-जागृति परिवर्तित होकर विनाशकारी बनती है और वह लोकों का विनाश करना आरम्भ करती है। वह अपने स्वभाव--तमोगुण में महाप्रलय तक बढ़ती रहती है और बढ़ते बढ़ते समस्त लोकों और उनके अण्ड, पिण्ड ब्रह्माण्डों का विनाश कर उनके आकार पर महाअन्धकार पूर्ण तमोगुण से स्थित होती है। उसकी पूर्ण पराकाष्टा में पाताल से लेकर सत्यलोक तक सबका विनाश होती है और उनके आकार पर महान् भयङ्कर तमोगुण रूपा बनती है।

उसके पश्चात् महातमोगुण--स्वभाव वाली नाशनी परिवर्तन युक्त होने से घटने लगती है। अथवा उसका स्वभाव महातमोगुण घटने लगता है, और नाशनी प्रकृति अपने स्वभाव तमोगुण सहित घटते घटते अनन्त काल में अपने आधार महाचैतन्य में लुप्त होती है।

तमोगुण से निर्विकार महाचैतन्य पूर्ण प्रकाश सत्वगुण से लुप्त विनाशी प्रकृति फिर परिवर्तित होकर विश्वविराट् की कर्त्री बनती है।

विश्व का विनाश करने वाला प्रकृति का महातमोगुण और तमोगुण को लय करने वाला महाचैतन्य है। महाचैतन्य के पूर्ण सत्वगुण से विश्व की सृजन करने वाली महाप्रकृति उत्पन्न होती है। इसलिये चैतन्य के सत्वगुण से उत्पत्ति और प्रकृति के तमोगुण से विनाश होता है।

चैतन्य की चैतन्य सत्ता से रचनामय प्रकृति विश्व रचने का कार्य करती है। विश्व की रचना में जब तक सत्वगुण अधिक और तमोगुण न्यून रहता है, तब तक सतोगुणी सुख के लोकों की रचना होती है। जब तमोगुण सतोगुण से अधिक बढ़ जाता है, तब तमोगुणी दुःख के लोकों की उत्पत्ति होती है। जब महाप्रकृति महान् तमोगुण द्वारा स्थितियों का सम्बन्ध चैतन्य से पृथक् कर देती है, तब विश्वविराट् का विनाश होता है। महाप्रकृति की तीन अवस्थायें होती हैं, उनको रचना, स्थिति और विनाश कहते हैं। पूर्ण सत्वगुण से पोषित जागृति को रचना, विश्वविराट् के अन्तर्गत अण्ड पिण्ड ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को स्थिति और प्रलय को विनाश कहते हैं।

विश्वविराट् का फैलाव प्रकृति की जागृतावस्था में, अण्ड पिण्ड ब्रह्माण्डों की गति उसकी स्थिति में, और विश्वविराट् की प्रलय उसकी विनाश अवस्था में होता है।

महाचैतन्य और जागृति के संयोग से विश्वब्रह्माण्ड--कर्म जागृत होता है। महाप्रकृति के जागृत संचार से ही सूर्य्य में पिण्डों को अपनी ओर घुमाने की, पिण्डों में सूर्य्य के गिर्द घूमने की, सूर्य्य में पिण्डों के ऊपर प्रकाश डालने की, अग्नि में जलाने की, वायु में सुखाने की, जल में भिगोने की, आकाश में पिण्डों का धारण करने की, मन में इन्द्रियों की, बिजली में बज्रपात धारण करने की, आत्मा में बुद्धि की, आंख में देखने की, कान में सुनने की, कामदेव में उत्पादन की, सतोगुण में ज्ञान की, ज्ञान में बोध की, रजोगुण में कर्म की, तमोगुण में अन्धकार की, अहङ्कार में क्रोध की, सूर्य्य में तेज व आकर्षण की, पृथ्वी आदि पिण्डों में उर्वरा व दिन रात करने की, भूलोकादि समस्त लोकों में उत्पत्ति की, जल और तेज के योग में भाप बनने की, भाप में मेघ बनने की, मेघ में बरसने की, पृथवी में जल शोषण की, वृक्षों में रस लेने की, और जीवधारियों में कामनाओं की जागृति है।

चैतन्य में जागृति पैदा होने से ही सारा विश्वविराट् कर्म जागृत होता है। किन्तु चैतन्य और प्रकृति में अन्तर क्या है? चैतन्य में जागृति पैदा करने का स्वभाव है। अथवा गुण है, अथवा चेतनता है, अथवा सतोगुण है, अथवा ज्ञान है, अथवा प्रकाश है, और जागृति का चैतन्य में लुप्त होने का स्वभाव है। अथवा तमोगुण है, अथवा अन्धकार है, अथवा अज्ञान है, अथवा असत्य है, अथवा जड़ है। इसलिये प्रकृति कैसी है? लोप होने के गुण से अनित्य है, असत्य है, अज्ञान है, विनाशी है, अन्धकारमय है, जड़ है, तमोगुणी है, रात्रिरूपा है। इसलिये

प्राकृतिक संसार जाग्रत होने से अथवा मायामय होने से असत्य है, अनित्य है, विनाशी है।

महाप्रकृति का आधार महाचैतन्य है। विश्वविराट् की रचना में प्रकृति के अनन्त रूप और भेद उत्पन्न होते हैं। विश्व के अन्तर्गत प्रत्येक रूप और भेदों में उसकी तीन अवस्थायें होती हैं। जाग्रति (लक्ष्मी), स्थिति (सरस्वती) और लोप (काली)।



अध्याय ४

महासत्वगुण।

महाचैतन्य का आरम्भ जाग्रत सञ्चार ही सत्वगुण है। उसके स्वरूप को महाविष्णु कहते हैं। उसके स्वभाव-सत्वगुण से विश्व को रचने वाली आरम्भ जागृति का स्वरूप उत्पन्न होता है। उसके अनन्त विस्तार में सत्य, तप, जन, मह, स्वः भुवः, भू, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल, पाताल, इन चौदह लोकों की उत्पत्ति होती है। चौदह लोकों को उत्पन्न करने वाली महाजागृति महाविष्णु के सतोगुण से रक्षित और पोषित होती है।

महाजागृति का महातमोगुण धारण करने से प्रकाशमय महाविष्णु मेघ वर्ण होजाता है, क्योंकि महान् आत्मा विष्णु जागृति के तमोगुण का आधार है, और आधार आश्रित से आच्छादित होता है। इसलिये वह प्रकाशमय होने पर भी तमोगुण से आच्छादित होकर मेघवर्ण होता है। महाविष्णु दिव्य प्रकाशमय सतोगुण स्वभाव से विश्व की रचयित्री महा-जागृति को उत्पन्न करता है। इसलिये महाजागृति तमोगुण

लुप्तावस्था से जागृत होकर दिव्यावस्था में प्रवृत होती है। उसको महालक्ष्मी कहते हैं। महाविष्णु का प्रधान गुण-सतोगुण और महालक्ष्मी का तमोगुण स्वरूप होने पर भी पूर्ण सतोगुण महाविष्णु-आधार के आश्रित होने से वह प्रकाश युक्त दिव्य स्वरूप में उत्पन्न होती है।

महाविष्णु के पूर्ण प्रकाश स्वरूप--सतोगुण से जागृति रूपा महालक्ष्मी के तमोगुण का संचार उत्पन्न होता है। इसलिये तमोगुण संचार और पूर्ण सतोगुण के योग से सत्य रजोगुण बनकर सत्यलोक की रचना करता है। वह महाविष्णु के पूर्ण प्रकाश-सतोगुण का परम लोक है। महाविष्णु के परम सत्यलोक की रचना विश्वब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के सर्व प्रथम में होती है और विश्वब्रह्माण्ड की अन्तिम प्रलय में विनाश होता है। महाप्रलय में भी केवल सत्यलोक की महाजागृति का तमोगुण लुप्त होता है। परिवर्तन रहित निर्विकार पूर्ण चैतन्य स्वरूप जैसे का तैसे ही रहता है।

महाविष्णु--परमात्मा के आभ्यन्तर सत्यलोक से पाताललोक तक समस्त लोकों को उत्पन्न करने वाली महालक्ष्मी रूपा जागृति के विकार भेदों से लोकों में आत्माओं के अनेक भेद प्रतीत होते हैं। वास्तव में आत्मा और परमात्मा अभिन्न हैं।

जैसे एक पीपल के बीज से पीपल का एक जागृतमय वृक्ष उत्पन्न होता है और उस मायामय वृक्ष के विकार भेद से अनन्त वृक्षों को उत्पन्न करने वाले अनन्त बीज उत्पन्न हो जाते हैं, उसी तरह महाविष्णु परमात्मा के साकाश में महा-

जाग्रतिमय माया के विकार भेद से चौदह लोकों की रचना में अनन्त आत्मा भेद प्रतीत होते हैं । महाविष्णु के अनन्त विस्तार में अनन्त जीवात्मा आश्रित हैं । जीवात्माओं के शरीरों की उत्पत्ति माता के गर्भ में आत्मा के सत्वगुण से होती है । महाविष्णु और जीवात्माओं में परमात्मा और आत्मा का भेद है । महाविष्णु परमात्मा है, उसके स्वभाव सतोगुण से विश्व को रचने वाली महाजाग्रति उत्पन्न होती है । और शरीर विष्णु आत्मा है । उस के स्वभाव सतोगुण से शरीर जाग्रति उत्पन्न होती है । परमात्मा महाविष्णु है और आत्मा शरीर विष्णु है । परमात्मा और आत्मा में चैतन्य के सत्वगुण की परिपूर्णता होती है ।

विश्वविराट् की रचयित्री महाजाग्रति परमात्मा के सत्वगुण से और शरीर रचयित्री शरीर जाग्रति आत्मा के सत्वगुण से रक्षित और पोषित होती है । महाजाग्रति और शरीर--जाग्रति अपने २ स्वभाव-तमोगुण से महाप्रलय और शरीर--प्रलय (मरण) काल में परमात्मा और आत्मा के चैतन्य स्वरूप में लुप्त होती हैं । विश्वविराट् की महाजाग्रति का परमात्मा-चैतन्य में समाने पर महाप्रलय होती है । और शरीर जाग्रति का आत्मा चैतन्य में समाने पर शरीर का मरण होता है । फिर परमात्मा और आत्मा के सत्वगुण से महाजाग्रति और शरीर-जाग्रति लुप्तावस्था से जाग्रत अवस्था को प्राप्त होकर महाजाग्रति से विश्वविराट् की रचना और शरीर--जाग्रति से प्राणी के शरीर विराट् की रचना होती है ।

विश्वविराट् की जाग्रति, प्राणियों की शरीर--जाग्रतियां

और प्राणियों की बाल्यावस्था, ये विष्णु के सतोगुण से उत्पन्न होती हैं। महाविष्णु-आधार में उसके सत्वगुण से विश्वविराट् की जागृति बढ़ती और पोषित होती है। और आत्मा-आधार में उसके सतोगुण से प्राणियों के शरीर बाल्यावस्था से तरुणावस्था तक बढ़ते हैं। वे अवस्थायें जागृतिमय प्रकृति की लक्ष्मी रूपा होती हैं। इसलिये अवस्थायें मायावीस्वरूप होने से स्त्रीलिङ्ग होती हैं। और आत्मा-आधार में उसके सत्वगुण से रक्षित और पोषित होकर बढ़ना उनका स्वभाव है।

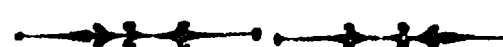
जिस तरह प्राणियों का शरीर, बाल्यावस्था से तरुण अवस्था तक आत्मा के सत्वगुण से रक्षित और पोषित होकर जागृतावस्था में बढ़ता है, उसी तरह परमात्मा के सत्वगुण से रक्षित और पोषित होकर विश्वविराट् की जागृति लक्ष्मी अवस्था में सत्य लोक से भूलोक के विस्तार तक बढ़ती और फैलती है।

विश्व के अन्तर्गत माया के विकार से जीवात्माओं के अनेक रूप होने से आत्मा के अनेक भेद मालूम होते हैं, और वे अनेक जीवात्मा एक महाविष्णु-परमात्मा के अङ्ग होने से सब एक परमात्मा हैं। जैसे अनन्त घटों के अन्तर्गत अनन्त घटाकाश हैं और एक ही आकाश के अङ्ग होने से वे सब एक महाकाश हैं, वैसे ही आत्मा और परमात्मा हैं। महाविष्णु सूक्ष्म विराट् के साथ निराकार है और स्थूल विराट् के साथ साकार बनता है। वह एक होकर भी माया के विकार भेद से अनन्त रूप है। और अनन्त होने पर भी माया के विकार से रहित एक है।

अध्याय ५



महारजोगुण–रचनात्मक ।



महाचैतन्य और महाजागृति के संयोग से महारजोगुण रचनात्मक अवस्था प्राप्त होती है ।

चैतन्य सत्य है, प्रकाशमय है, शुद्धस्वरूप है, अखण्ड है, अनादि है, अवद्ध है, सर्वव्यापक है, अनन्त है, अविनाशी है, कालातीत है, प्रकृतिका आधार है, विश्व का पैदा करने वाला बीज है। और जागृति असत्य है, अनित्य है, अज्ञान है, जड़ है, विनाशी है, अन्धकारमय है, अप्रकाश रूप है, तमोगुण युक्त है, और महारात्रिरूपा है ।

इन दोनों चैतन्य और जागृति के संयोग से, सत्य असत्य के मेल से, प्रकाश अप्रकाश के योग से, नित्य अनित्य के संयोग से, ज्ञान अज्ञान के मिलाप से, अथवा चैतन्य और जड़ के योग से महारजोगुण-रचनात्मक स्वरूप का सञ्चार उत्पन्न होता है। उस स्वरूप-सञ्चार से विश्वविराट् की रचना होती है।

काल, कर्म, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य्य,

नक्षत्र, ग्रह, अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्ड, पिण्डज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, मनुष्यगण, देवगण, महादेवगण, स्थावर, जङ्गम आदि समस्त चराचर की रचना उसी महारजोगुण-रचनात्मक स्वरूप के सञ्चार से उत्पन्न होती है, जो सत्य असत्य के योग से जागृत होता है। इसलिये परमाणु से विश्वविराट् पर्यन्त सत्य और असत्य के योग से उत्पन्न होने पर न सत्य कहा जाता है और न असत्य। क्यों कि सत्य अविनाशी चैतन्य है और असत्य नश्वर प्रकृति है। शेष सारी सृष्टि जो सत्य असत्य के संयोग से उत्पन्न होती है, वह न सत्य है और न असत्य है। रजोगुण युक्त होने से रचनात्मक है। अथवा जो उत्पन्न होकर विनाश और विनाश होकर उत्पन्न होती है, ऐसी है। रचनात्मक-रजोगुण जो विश्वविराट् और शरीरविराट् का कारण है, वह चैतन्य और प्रकृति के योग से बनता है। चैतन्य के पूर्ण सत्वगुण से विश्व की रचना होती है और प्रकृति के पूर्ण तमोगुण से विश्व का विनाश होता है। इसलिये समस्त विश्वविराट् चैतन्य के सतोगुण से उत्पन्न और प्रकृति के पूर्ण तमोगुण से विनाश होता है।

रचनात्मक-महारजोगुण को ब्रह्मा भी कहते हैं। उस के स्वाभाविक गुण से विश्वविराट् रचना और विनाश के चक्र में घूमता रहता है। इसी चक्र में बराबर घूमने वाला ब्रह्मा का स्वभाव ही रजोगुण है। इसलिये समस्त विश्वविराट् रजोगुण युक्त होने से रचनात्मक-अवस्था को प्राप्त होकर पश्चात् विनाश अवस्था को प्राप्त होता है। ब्रह्मा का स्वाभाविक गुण विश्वविराट् को

उत्पन्न करना है। वह अपनी अवधि तक अपने अन्तर्गत के अनन्त ब्रह्माण्ड व जीव जन्तुओं के विनाश अथवा मरण होने पर उनको फिर रचना युक्त व जन्मने की अवस्था को प्राप्त करता है। जो जितने छोटे ब्रह्माण्ड व जीवजन्तु होते हैं, उनकी रचनात्मक जागृतियां उतने ही न्यून काल में शान्त होकर अपने आधार आत्म-चैतन्य में लुप्त हो जाती हैं, अथवा वे मरणावस्था को प्राप्त होते हैं। फिर उतने ही न्यून काल में उनकी जागृतियां चैतन्य के प्रभाव से जागृत होकर रचनात्मक अवस्था वा पुनर्जन्म को प्राप्त होती हैं। सब ब्रह्माण्डों व जीवजन्तुओं का जीवन व विनाश काल एक सा नहीं होता। हर एक की अवधि अलग अलग होती है। विश्व में किसी की अवधि अधिक और किसी की न्यून होती है। सब अपनी २ अवधि के अनुसार महारचनात्मक के जागृत काल तक बराबर जीवन और विनाश के चक्र में घूमते रहते हैं। उनमें से सबसे बड़ा विनाश, व जीवन काल उस महारचनात्मक विश्वविराट् के रजोगुण का है, जिसके विनाश काल में सब अण्ड पिण्डों का विनाश होता है और उसके रचना-काल में सब अण्ड पिण्ड ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती है।

विश्वविराट् की रचयित्री महाजागृति, विश्वविराट् को अनन्त काल तक कर्म जागृत रखने से पूर्ण तमोगुण स्वभाव को प्राप्त होजाती है। और वह विश्राम के लिये अपने आधार चैतन्य में लोप होकर शान्त हो जाती है, जिससे महाप्रलय होती है।

महाजागृति सहित विश्वविराट् के लुप्त होने पर शेष केवल

चैतन्य रह जाता है। चैतन्य नित्य परिपूर्ण रहता है। इस लिये चैतन्य में लोप हुई शान्त जाग्रत चैतन्य सत्ता से फिर विश्वविराट् की रचना करने वाले रचनात्मक अथवा उत्पादक सञ्चार को उत्पन्न करती है। चैतन्य की चैतन्य सत्ता से जागृति पैदा होती है। जागृति का अन्तिम स्वभाव लुप्त होता है और रचनात्मक का स्वभाव उत्पत्ति में जागृत होकर लुप्त और लुप्त होकर जागृत होता है।

इसी तरह रचनात्मक की रचना से सृष्टि बराबर उत्पन्न और विनाश के चक्र में घूमती रहती है।

ब्रह्मचैतन्य और महाजागृति से उत्पन्न होनेवाले महा रचनात्मक सञ्चार स्वरूप को ब्रह्मा कहते हैं। उस का गुण रजोगुण है। उस के रजोगुण में सतोगुण और तमोगुण किसी लोक मे न्यूनाधिक और किसी में समान होते हैं। विश्वविराट् को उत्पन्न करने से ब्रह्मा के अनन्त रूप हैं। और उन अनन्त रूपों का एक महाब्रह्मा के अङ्ग होने से सब एक विराट्-ब्रह्मा हैं। उस को अनन्त विस्तार चौदह लोकों को रचने वाला रजोगुण है। वही महाब्रह्मा का विराट् स्वरूप है। विराट् रूप महारजोगुण ब्रह्मा के अन्तर्गत चौदह लोकों के रचनात्मक भिन्न भिन्न चौदह प्रकार के रजोगुण-लोक ब्रह्मा हैं। प्रत्येक लोकब्रह्मा-रजोगुण के अन्तर्गत रजोगुण अनन्त जीव-ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। महारचनात्मक चौदह लोकब्रह्मा और जीव-ब्रह्मा सूक्ष्म विराट् के साथ निराकार और अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्ड, देहधारी इत्यादि स्थूल विराट् के साथ साकार है। इसलिये वह ब्रह्मा निराकार भी है और साकार भी है। एक होकर भी अनन्त है और अनन्त होकर भी एक है।

अध्याय ६



महारचना--कर्त्री ।



महारचनात्मक अवस्था में तमोगुण का कुछ अधिक योग होने से महारचना पैदा होती है। अथवा महारचनात्मक-अवस्था में महाप्रकृति का तमोगुण बढ़ने से विश्व को रचने वाली महा क्रिया उत्पन्न होती है। वह महाचैतन्य के सत्वगुण प्रभाव से विश्व की उत्पत्ति करने में समर्थ होती है।

महारचनात्मक सञ्चार में जो चैतन्य सत्ता रहती है, उसकी पोषण शक्ति से उत्पन्न होने वाली महाप्रकृति की तमोगुणमय जागृति, सत्वगुण स्वभाव से उत्पादन शक्ति में प्रवृत होकर विश्व का सृजन करने वाली कर्त्री बनती है। महाजागृतिमय रचना जैसे २ विश्व की उत्पत्ति करती है, वैसे २ अपने स्वभाव तमोगुण में बढ़ती रहती है। वह चैतन्य--सत्ता के पोषण से जब तक पूर्ण तमोगुण को प्राप्त नहीं हो सकती, तब तक चैतन्य-आधार में उसकी सामर्थ्य से विश्व की रचना करती रहती है। महा प्रकृति के उस रचना-सञ्चार को सरस्वती भी कहते हैं। उसके स्वभाव से विश्व की उत्पत्ति होती है।

रचना, काल--कर्म की अवस्था से परे है। वह काल और

कर्म से प्रथम उत्पन्न होती है। वह काल और कर्म को उत्पन्न कर सब कुछ रचती है। उसी से काल, कर्म, आकाश, वायु, अग्नि व सूर्य्यादि--पिण्ड, जल, (मेघ, समुद्र) पृथ्वी, सुख, दुःख, जीवधारी, वनस्पतियां, असंख्य पिण्ड, ब्रह्माण्ड, और समस्त विश्वविराट् की उत्पत्ति हुई।

सृष्टि में जो कुछ हो रहा है व किया जा रहा है, सब चैतन्य की सामर्थ्य से रचना कर रही है।

काल से परिवर्तन कराना, कर्म से बंधाना, आकाश में पिण्डों को धारण कराना, वायु से स्पर्श कराना, सुखाना, वहाना, पिण्डों को घुमाना, सूर्य्य से तेज व प्रकाश कराना, उसको उदय व अस्त करना, ऋतुओं का बदलना, अग्नि को जलना बुझना व प्रकाश करना, जलसे भिगाना, उसको वहाना, जमाना (जिससे हिम बनता है) पृथ्वी का घुमाना, मेघों का बरसाना, वनस्पतियों को उगाना व बढ़ाना, बेल वृक्षों से रस शोषण करवाना, वृक्षों का हरा भरा होकर उनमें पत्ते पुष्प फलों को पैदा करना, पत्तों का हिलाना, पुष्पों को सुगन्धित करना, फलों को पका कर उन को खट्टे मीठे इत्यादि रसों से युक्त करना, बीजों में उत्पादन शक्ति पैदा करना, ये सब कार्य्य रचना से हो रहे हैं।

गर्भ में रज शुक्र को संयुक्त कर शरीर--पिण्ड बनाना, उस में ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का सञ्चार करना, प्राणियों को स्थूल--शरीर में जागृत कर जन्माना, बढ़ाना, सब रचना कर रही है।

वैसे ही कान से सुनना, आंख से देखना, नासिका से सूंघना, जिह्वा से रस-बोध करना व रस लेना, त्वचा से शीतोष्ण बोध, बुद्धि से विचार, मन से सङ्कल्प-विकल्प, सत्वगुण से ज्ञान व प्रकाश, रजोगुण से कार्यों की उत्पत्ति, हाथों से कार्यों का करना, पैरों से चलना, और मुंह से बोलना, ये सब कार्य रचना से हो रहे हैं।

वैसे ही प्राणियों का सोना, जागृत रहना, उठना, बैठना, शरीर में रस रुधिर का बहाव, खाना, पीना, सांस लेना, भूख, प्यास का बोध इत्यादि प्राणियों के जीवित शरीर से सकल काय्यों का होना और मरणावस्था में स्थूल शरीर सम्बन्धी सकल काय्यों की गति का विच्छिन्न होना, सब रचना की शक्ति से होता है।

उस महारचना के कर्त्री स्वरूप को सरस्वती अथवा सावित्री कहते हैं। उस का स्वभाव रजोगुणी होता है। उस के रजोगुण में जो सत्वगुण होता है, उस की सत्ता से पोषित तमोगुण के बढ़ने पर विश्व की रचना होती है।

महासरस्वती-रचना के अन्तर्गत पोषित तमोगुण के विकार से चौदह लोकों की पृथक् २ रचने वाली चौदह कर्त्रियां उत्पन्न होती हैं। और प्रत्येक लोकों के अन्तर्गत पिण्डज, अण्डज स्वेदज और उद्भिजों को उत्पन्न करने वाली अनन्त रचना रूप कर्त्रियां उत्पन्न होती हैं। वे प्राणियों में चौदह प्रकार की बुद्धि भेदों से उत्पन्न होती हैं, और सन्तान उत्पन्न करने के

लिये संसार में वे अनन्त स्त्रीमय रूप धारण करती हैं। अर्थात्, स्त्रियों की योनियों में चौदह लोक-रचना जागृत कर संसार की उत्पत्ति के लिये स्थूल शरीर में अनन्त स्त्रीरूपा होती हैं।

विश्वविराट्-रचयित्री महासरस्वती, लोक-रचयित्री सरस्वती और स्थूल शरीर में स्त्रीरूपा सरस्वती इन, में उत्पत्ति के सम्बन्ध से कुछ अन्तर नहीं होता। स्त्रियों के गर्भ में जैसे बच्चों के स्थूल-शरीरों की उत्पत्ति होती है, वैसे ही महासरस्वती के गर्भ में स्थूल पिण्ड, ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती है।

स्त्रियों के गर्भ में रज जैसे अपनी चौदह प्रकार की क्रियाओं से बच्चों के शरीरों की उत्पत्ति करता है, वैसे ही महासरस्वती के आभ्यन्तर (गर्भ में) चौदह लोक-रचयित्री विश्वविराट् के अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्डों को उत्पन्न करती है।

महासरस्वती, लोककर्त्री, बुद्धि, रचना, इन के अनन्त भेदों सहित महासरस्वती निराकार है और देहधारियों को पैदा करने वाली स्त्री-रूपा होने से वह साकार है।

एक महासरस्वती पोषित तमोगुण के विकार से अनन्त रूप (लोक सरस्वती, कर्त्री, रचना, बुद्धि, स्त्रियां) धारण करती है। इसलिये महासरस्वती निराकार है, साकार है, एक रूप वाली है और अनन्त रूप वाली है। उस का गुण रजोगुण है। उस से विश्व की उत्पत्ति होती है।



अध्याय ७

—:o:—

महाकाल से परिवर्तन ।



महाचैतन्य के अविनाशी स्वभाव--सत्वगुण से विश्वविराट् को उत्पन्न करने वाली महाजागृति उत्पन्न होती है। उसके उत्पन्न होते ही विश्वविराट् का विनाशकारी उसका स्वभाव परिवर्तन रूप तमोगुण उत्पन्न होता है । यद्यपि महाचैतन्य के अविनाशी स्वभाव सत्वगुण से विश्वविराट् जागृत अवस्था को प्राप्त होता है, किन्तु वह जागृत होने पर महाजागृति के तमोगुण से परिवर्तित होते हुये अन्तिम विनाश अवस्था को प्राप्त होता है ।

विश्वविराट् की जागृतावस्था से विनाश तक जो परिवर्तन चक्र बराबर घूमता रहता है। अथवा, विश्वविराट् (समस्त अण्ड, पिण्डों, ब्रह्माण्डों) को जागृतावस्था से विनाश तक जो परिवर्तन--चक्र बराबर घुमाता रहता है, उसको काल कहते हैं । अथवा रचनात्मक में जो क्रिया करने का स्वभाव है, उससे जब तक रचना और विनाश होता है, उसके परिवर्तनस्वरूप को काल कहते हैं। अथवा महारचनात्मक से महारचना उत्पन्न होती है, उसके स्वभाव

तमोगुण के भेद से जो परिवर्तन होता है, उसका नाम काल है। परिवर्तन--रूप काल का गुण रजोगुण है। उसके रजोगुण में महारचना के रजोगुण से तमोगुण अधिक होता है। रचना के रजोगुण से विश्व की स्थितियों की उत्पत्ति और काल के रजोगुण से उनका परिवर्तन होता है। काल के रजोगुण में तमोगुण अधिक होने से विश्वविराट् की स्थितियों का विनाश होता है। काल के परिवर्तन--स्वरूप से स्थितियों की अवस्था और उग्र--स्वरूप से उनका विनाश होता है।

महाकाल के मुख्य तीन भेद होते हैं:—जागृत काल, रचना काल और लोप काल। जब महाचैतन्य से विश्वविराट् को पैदा करने वाली महाजागृति पैदा होती है और उसके सिवाय तब तक विश्वविराट् की स्थितियों की कोई रचना नहीं होती, किन्तु महाजागृति अपने सूक्ष्म तमोगुण (काल) स्वभाव से महाचैतन्य--आधार के अविनाशी--सत्ता में आश्रित होकर बढ़ना आरम्भ करती है। प्रकृति की उस आरम्भ अवस्था को जागृत काल कहते हैं। चैतन्य--सत्ता से पोषित प्रकृति अपने स्वभाव परिवर्तनमय--तमोगुण के कारण जागृतावस्था से विश्वविराट् के आकार पर महान् रूप से विस्तारित होकर बढ़ती और फैलती है। जिसमें एक से अनेक रूप बनकर विश्व ब्रह्माण्ड के अनन्त अण्ड, पिण्डों की स्थिति होती है। उस अनन्त क्रिया काल को रचना--काल कहते हैं।

महाजागृति विश्वविराट् की रचना में ज्यों ही एक रूप से परिवर्तित होकर अनन्त रूप धारण करती है, वैसे ही उनकी

रचना में अनन्त काल उत्पन्न होते हैं। जिनसे सत्य, तपः, जन, महः, स्वः, भुवः, भूः, अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, और पाताल, ये चौदह लोक, सूर्य्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, नक्षत्र, ग्रह, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पिण्डज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, सूक्ष्म, और स्थूल भूत इत्यादि समस्त स्थितियों की जागृतियां चैतन्य के सत्वगुण से उत्पन्न होती हैं। जागृतियां उत्पन्न होते ही विकारमय तमोगुण स्थितियों को अवस्था में परिवर्तित करते हुये विनाश की ओर ले जाता है। स्थितियों में जागृतियां पैदा होने से भिन्न भिन्न परिवर्तनरूप काल उनमें व्यापक हो जाते हैं। वे समस्त लोकों और उनके अन्तर्गत के समस्त अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्डों को अवस्थाओं में प्रवृत कर चैतन्य की ओर से परिवर्तित करते हुये विनाश-अन्धकार की ओर ले जाते हैं।

विश्वविराट् के विनाश के पश्चात् उसको उत्पन्न करने वाली महाजागृति अन्तिम अणुरूप से अपने आधार चैतन्य में लुप्त हो जाती है। क्योंकि जागृति चैतन्य के अविनाशी सत्वगुण से उत्पन्न होती है, इसलिये वह लुप्तावस्था में अणुरूप से चैतन्य सत्ता में अविनाशी बनकर रहती है।

महाप्रकृति रूप जो विश्वप्रपञ्च--स्थितियों का स्वरूप बनता है, उसको महाकाल का उग्र स्वरूप विनाश कर अपने स्वरूप महाअन्धकार में लय कर देता है। उसमें विश्वविराट् के आकार पर काल महाअन्धकार भयङ्कर रूप धारण करता है। उसमें विश्वविराट् की जागृति चैतन्य में समाकर स्थित रहती है।

उसके पश्चात् जागृति के बिना महाअन्धकार भी घटते २ अनन्त काल पर्यन्त अणुमात्र रहकर लुप्त जागृति में समा जाता है। वह महाकाल की लोपावस्था है।

अणुरूप--तमोगुण लुप्त जागृति में समाने से फिर अपने परिवर्तन--तमोगुण--स्वभाव से लुप्त जागृति को महाचैतन्य के सत्वगुण से विश्व की रचना में प्रवृत करता है। अथवा लुप्त प्रकृति जागृत होकर अपने स्वभाव के आरम्भ सञ्चार में चैतन्य की सत्ता से विश्वविराट् रचने के लिये पैदा होती है। फिर वह काल के स्वभाव से परिवर्तित होते हुये विश्व ब्रह्माण्ड के अनन्त भेदों की उत्पत्ति करती है। उन अनन्त भेदों के साथ अनन्त काल उत्पन्न होते हैं।

महाकाल प्रत्येक अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्डों का परिवर्तन, सत्वगुण की ओर से तमोगुण की ओर करता रहता है। प्रत्येक अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्डों के साथ उसके तीन २ भेदः—जागृत काल, रचनाकाल और लोपकाल बराबर होते रहते हैं। काल के इन तीन महाभेदों से समस्त प्राणियों की गर्भावस्था, जन्मावस्था और मरणावस्था होती है। प्राणियों की गर्भावस्था जागृत काल में होती है। वह प्राणियों को अपने परिवर्तन स्वभाव से गर्भावस्था से जन्मावस्था में पहुंचाता है। वह उनका क्रिया अथवा रचना काल होता है। फिर काल अपने परिवर्तन स्वभाव से प्राणियों को जीवित अवस्था से मरणावस्था में पहुंचाता है, वह उन की रचयित्री--जागृति का लुप्त काल है।

प्राणियों की गर्भावस्था, जन्मावस्था और मरणावस्था काल

के इन प्रधान भेदों के भी प्रत्येक के तीन २ उपभेद होते हैं। उनको भी जागृत, रचना और लोपकाल कहते हैं।

गर्भ में काल के जागृत-उपभेद से जीवों की आत्मा के सत्वगुण से जागृति उत्पन्न होती है। काल के रचना-उपभेद से गर्भ के सत्यलोक में जीवों के ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, तपलोक में गले की, जनलोक में छाती की, महालोक में स्तनों की, स्वःलोक में कोख की, भुवलोक में पृष्ट की, भूलोक में उदर की, अतल लोक में नाभि की, वितल लोक में गुदा की, सुतललोक में जांघों की, तलातल लोक में घुटनों की, रसातल लोक में पिण्डलियों की, महातल लोक में एड़ियों की, पाताल लोक में पांव की रचना होती है। महाविष्णु से आत्मा, महाजागृति से बुद्धि, महाब्रह्मा से मन, महासरस्वती से इच्छा, महाकाल से परिवर्तन रूप-स्वभाव, महाअवधि से अवस्था (वाल, तरुण, वृद्ध) महाइन्द्र से कर्म, महाकाश से शरीर आकार, शब्द, करण, हृदय, शरीर की धारण शक्तियां अथवा नाड़ियां और शोक; महावायु से प्राण, अपान, व्यान, समान उदान, अथवा शरीर-पञ्चवायु, त्वचा, दिल, दिमाग, हस्त पाद की धावन, शोषण, स्पर्श क्रियायें और मोह; महाअग्नि से नेत्र, मुंह, जठराग्नि और क्रोध; महाजल से रसना, लिङ्ग रस, रुधिर और आलस्य; महापृथ्वी से नासिका, गुदा, अस्थि मांस, चर्म, बाल और निद्रा पैदा होते हैं। गर्भ में शरीर के इन प्रत्येक अवयवों की रचना में काल समा कर गर्भावस्था से जीवों को पैदा करता है और उन में समा कर लुप्त रहता है, इसलिये काल के लोप-उपभेद में जीव गर्भ से पैदा होते हैं।

फिर प्रधान रचना-काल के जागृत उपभेद से जीवों की बाल्यावस्था होती है। उस में सत्वगुण की प्रधानता और काल के परिवर्तन स्वभाव से जीवों के शरीर बढ़ते हैं। शरीर का बढ़ाव सत्वगुण से और अवस्था का परिवर्तन-काल से होता है।

प्रधान काल के रचना-उपभेद से प्राणियों की तरुणावस्था में पुरुषमय-शुक्र और स्त्रीमय-रज के योग से गर्भ में पिण्डों की उत्पत्ति होती है। काळ उस का परिवर्तन करते हुये ज्ञान और कर्मेन्द्रियों सहित प्राणियों का परिपूर्ण शरीर बना देता है। पुरुष और स्त्रियों से बच्चों की उत्पत्ति प्रधान रचना-काल के रचना उपभेद में होती है। शरीर-काल प्राणियों की तरुणावस्था का धीरे २ परिवर्तन कर बृद्धावस्था में ले जाता है। बृद्धावस्था शरीर रचना प्रधान-काल के उपलोप काल में होती है। उस में शरीर काल पूर्णतमोगुण युक्त होने से शरीर की ज्ञानेन्द्रियों के प्रकाश को आच्छादित कर कर्ण बहरे होजाते हैं, त्वचा ढल जाती है, आंखें अन्धी हो जाती हैं, रसना रसहीन होजाती है, नासिका घ्राण शक्ति से गिर जाती है। एवम् प्रकार शरीर के प्रत्येक अङ्ग प्रति अङ्गों में तमोगुण बढ़कर वृद्धत्व के अन्त में नाशकारी बन कर जीवित शरीर का परिवर्तन कर मृतक बना देता है। उस काल में शरीर-इन्द्रियों की जागृति मन की इच्छा में लुप्त हो जाती हैं। और स्थूल शरीर के जागृत स्थान में शरीर काल उग्र तमोगुण-अन्धकार रूप से उपस्थित होजाता है। प्राणियों का मरण शरीर प्रधान-लोप काल के जागृत उपभेद में होता है। उस में शरीर-काल पूर्ण तमोगुण

की जागृति उत्पन्न कर अपने परिवर्तन स्वभाव में बढ़ते २ प्रधान लोप काल के रचना उपभेद में प्रवेश हो कर मृतक शरीर के पञ्च भूतों को विच्छिन्न कर पञ्चमहाभूतों में मिला देता है। तत्पश्चात् प्रधान लोप काल का लोप-उपभेद उत्पन्न होता है। उस अवस्था में उग्रकाल जो महत् रूप में होता है वह महत् से परिवर्तित होकर घटते घटते आत्मा के सत्वगुण में आश्रित जागृति में अणु रूप से लुप्त हो जाता है। आत्मा चैतन्य के जिस सत्वगुण अंश में उग्र तमोगुण महत् रूप से अणु मात्र रहकर लुप्त होता है, वह आत्मा का महेश स्वरूप है।

शरीर विनाश से ठीक एक वर्ष में विनाशी तमोगुण आत्मा के सत्वगुण में वहां लुप्त होता है जहां इच्छा होती है। उस से फिर इच्छा प्रबल होकर जीवात्मा को पुनर्जन्म के लिये प्रेरित करती है। काल के परिवर्तन से इच्छा में जिस शरीर की जागृति उत्पन्न होती है, जीवात्मा पुनर्जन्म में उसी शरीर का खोल चढ़ाकर पैदा होता है।

जिस तरह प्राणियों में जाग्रत, रचना, लोप, प्रधान-त्रिकाल भेद उत्पन्न होते हैं और प्रत्येक प्रधान भेद के तीन २ उपभेद होते हैं, वैसे ही भूमण्डल के भी प्रधान त्रिकाल भेद होते हैं और प्रत्येक प्रधान भेद के तीन २ उपभेद होते हैं।

जीवधारियों की अवस्थाओं की तरह काल के परिवर्तन से भूमण्डल की भी अवस्था उत्पन्न होती हैं। भूमण्डल के प्रधान

जागृत काल में भूमण्डल का सञ्चार उत्पन्न होता है। भुवलोक की रचना के पश्चात् उसके और अतल लोक के मध्यस्थ आकार पर भूलोक को पैदा करने वाली जागृति उत्पन्न होती है। तब तक अतल लोक की उत्पत्ति नहीं होती, वह भूलोक का जागृत काल है। भूमण्डल के उस प्रधान जागृत काल के भी तीन उपभेद पैदा होते हैं। उन को भी जागृत, रचना और लोपकाल कहते हैं।

भूमण्डल के प्रधान जागृत काल के जागृत उपभेद में भूमण्डल के आकार में उसको रचने वाली महाजागृति का दिव्य--प्रकाशमय स्वरूप उत्पन्न होता है। भूमण्डल के उस काल के उपभेद में प्रथम स्वर्गलोक की रचना होकर उसमें सतोगुण की प्रधानता होती है। प्रधान जागृत काल के उप-रचना काल में उसके परिवर्तन स्वभाव से भूमण्डल को रचने वाली महाजागृति अपने तमोगुण परिवर्तन स्वभाव में बढ़ती है। उसके प्रथम सञ्चार से मृत्युलोक का आकार अथवा आकाश उत्पन्न होता है। फिर काल के स्वभाव से आकाश का परिवर्तन होकर उसमें वायु उत्पन्न होता है, वायु का परिवर्तन होकर तेज उत्पन्न होता है, तेज का परिवर्तन होकर जल उत्पन्न होता है, जल का परिवर्तन होकर पृथ्वी उत्पन्न होती है।

इसी तरह भूमण्डल में पञ्च महाभूत उत्पन्न होते हैं। महा-काल के परिवर्तन स्वभाव से उनके भी तीन २ भेद उत्पन्न होते हैं। महा आकाश के परिवर्तन से उसके त्रिभेदः—धारण शब्द, अन्धकार; महावायु के परिवर्तन से उसके त्रिभेदः—स्पर्श,

धावन, शोषण; अग्नि के परिवर्तन से उस के त्रिभेदः—प्रकाश, रूप, तेज; जलके परिवर्तन से उसके त्रिभेदः-रस, भाप, मेघ, और पृथ्वी के परिवर्तन से उस के त्रिभेदः—गन्ध, मिट्टी, धातु बनते हैं।

इन सब का जागृत सञ्चार, भूमण्डल महाकाल के प्रधान जागृति भेद के रचना उपभेद काल में उत्पन्न होता है।

प्रधान जागृत काल के उपभेद लोप-काल में इन सब की जागृति उन में समाकर पितृलोक की उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् भूमण्डल का प्रधान रचना काल उत्पन्न होता है। भूमण्डल के प्रधान रचना काल के उपजागृत भेद में सत्ययुग की उत्पति होती है। वह पृथ्वी मण्डल की बाल्यावस्था है। उस की बाल्यावस्था को ही सत्ययुग कहते हैं। पृथ्वीमण्डल की उस अवस्था का परिवर्तन होकर तरुणावस्था होती है, पृथ्वीमण्डल की तरुणावस्था काल को त्रेतायुग कहते हैं। वह प्रधान रचना काल के रचना उपभेद में उत्पन्न होता है। काल के परिवर्तन स्वभाव से पृथ्वीमण्डल तरुण अवस्था के पश्चात् अधेड़ अवस्था को प्राप्त होता है। पृथ्वीमण्डल के उस काल को द्वापर युग कहते हैं। फिर काल के स्वभाव से पृथ्वीमण्डल की अधेड़ अवस्था का परिवर्तन होकर वृद्धावस्था उत्पन्न होती है। उस को कलियुग कहते हैं।

वह कलियुग प्रधान काल के उप-भेद लोपकाल में उत्पन्न होता है। इसलिये कलियुग के अन्त में अर्थात् पृथ्वीमण्डल के वृद्धावस्था काल में आकाश, वायु,

अग्नि, जल, पृथ्वी के त्रिभेद उन में समाने लगते हैं। अर्थात् पृथ्वी से उत्पन्न होने वाले गन्ध, मिट्टी, धातु पृथ्वी के आकार में, रस समुद्र मेघ जल के आकार में, प्रकाश रूप तेज अग्नि के आकार में, स्पर्श धावन शोषण वायु के आकार में और धारण शब्द आकाश के अन्धकार में समाने लगते हैं।

जैसे मनुष्यों की वृद्धावस्था में कर्ण की धारण और शब्द बोध जागृति कर्ण के आकार में लोप होजाती है, त्वचा की फैलाव शक्ति त्वचा में लोप हो कर त्वचा ढल जाती है, नेत्रों की प्रकाश शक्ति नेत्रों के आकार में, रसना की रस शक्ति रसना के आकार में, और नासिका की घ्राण शक्ति नासिका के आकार में समा जाती है, जिस से वृद्धावस्था में कान बहरे हो जाते हैं, त्वचा ढल जाती है, नेत्र अन्धे हो जाते हैं, रसना नीरस हो जाती है, नासिका घ्राण शक्ति-हीन हो जाती है। वैसे ही पृथ्वीमण्डल की वृद्धावस्था कलियुग के अन्त में पञ्च महाभूतों से उत्पन्न होने वाले त्रिभेद अपने अपने महाभूतों में समाने लगते हैं। उस को भूमण्डल के प्रधान रचना काल का, उपभेद लोप-काल कहते हैं।

उस के पश्चात् भूमण्डल का प्रधान लोप काल उत्पन्न होता है, जिस में भूमण्डल को विनाश करने वाली महाकाल की विनाश जागृति उत्पन्न होती है।

महाकाल के प्रधान लोपकाल के उपभेद विनाश क्रिया काल में पृथ्वी का विनाश हो कर पृथ्वी के परमाणु छिन्न भिन्न होकर आकाश में, समुद्र तालाव नदियों का जल मेघ बनकर

आकाश में, अग्नि का तेज प्रकाश रूप विच्छिन्न हो कर आकाश में, वायु के परमाणु शान्त होकर आकाश में, और महाआकाश की धारण शक्ति और शब्द लोप होकर महाकाल-तमोगुण अन्धकार में समाने लगते हैं। उस लोप विनाश क्रिया काल में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, धारण शक्ति, शब्द, विनाश हो कर सब के आकार पर महाकाल का पूर्ण उग्र स्वभाव-महातमोगुण भयङ्कर अन्धकार उत्पन्न हो जाता है। काल की उस अवस्था को प्रलय कहते हैं। फिर महाकाल के परिवर्तन स्वभाव से प्रधान लोप काल का उपभेद लोपकाल उत्पन्न होता है।

उसमें भूमण्डल के आकार में उत्पन्न होने वाला महा अन्धकार की जागृति चैतन्य आधार में लुप्त होने लगती है। और पश्चात् महाकाल की विनाश जागृति महाचैतन्य के सतोगुण में समाती है। उसके समाने से महाभयङ्कर अन्धकार तमोगुण जो भूमण्डल के प्रलय काल में भूमण्डल के आकार पर बढ़ा हुआ रहता है, वह अपनी विनाश क्रिया के बिना घटने लगता है और अनन्त काल में घटते घटते विनाश लोप जागृति में समा जाता है, जो महाचैतन्य में समाई हुई रहती है। फिर महाकाल अपने परिवर्तन स्वभाव से महाचैतन्य में लुप्त हुई विनाशी जागृति का परिवर्तन कर उसको रचना जागृति बनाता है। महाचैतन्य के सतोगुण से वह जागृति फिर भूमण्डल की रचना का कारण बनती है।

भूलोक से सत्यलोक और अतल लोक से पाताल लोक तक सब लोक महाकाल के परिवर्तन से रचना की ओर से

लोप की ओर, और फिर महाचैतन्य के सतोगुण से लोप की ओर से रचना की ओर परिवर्तित होते रहते हैं। इसी तरह विश्व-ब्रह्माण्ड काल से परिवर्तन चक्र में बराबर घूमता रहता है।

केवल महाचैतन्य, काल से परे है। वह नित्य एक रूप है। महाकाल के परिवर्तन विकार से निरन्तर है। काल को भी समाने वाला महाचैतन्य है। महाचैतन्य के उस स्वरूप को ही महेश कहते हैं।

काल के प्रधान तीन भेद होते हैं और प्रत्येक भेद के भी तीन २ उपभेद होते हैं। काल के प्रधान तीन भेदों को भूत, वर्तमान, भविष्यत् भी कहते हैं। काल विभाग में प्रधान और गौण परिवर्तन चक्र के नव भेद होते हैं। भूमण्डल के काल विभाग में, काल के परिवर्तन नव भेद चक्र ठीक ठीक नव ग्रहों की गति से पाये जाते हैं। जैसे सूर्य्य और पृथ्वी के घुमाव की गति, घड़ी में रक्खी जाती है और उस की सुइयों के घुमाव से सूर्य पृथ्वी के घुमाव का बोध होता है, वैसे ही कालदर्शियों ने सर्व साधारण के हित के लिये भूमण्डल-काल के नव भेद के परिवर्तन चक्र को ज्योतिषशास्त्र में नव ग्रहों की गति से रक्खा है।

काल के रजोगुण का स्वाभाविक गुण परिवर्तन है और उसके रजोगुण में तमोगुण प्रधान होता है, तब उससे विश्व-विराट् का विनाश होता है।

महाकाल के रजोगुण से जैसे दिन का परिवर्तन होकर

रात्रि और रात्रि का परिवर्तन होकर दिन, जीवन का परिवर्तन होकर मरण और मरण का परिवर्तन होकर जीवन, जागृतावस्था का परिवर्तन होकर निद्रा और निद्रा अवस्था का परिवर्तन होकर जागृत, सूक्ष्म भूतों का परिवर्तन होकर स्थूल भूत और स्थूल भूतों का परिवर्तन होकर सूक्ष्म भूत, मनुष्य-अवस्था परिवर्तन होकर देव और देव अवस्था परिवर्तन होकर मनुष्य, कीट पशु अवस्था परिवर्तन होकर मनुष्य और मनुष्य अवस्था परिवर्तन होकर कीट पशु, समुद्र के जल का परिवर्तन होकर मेघ और मेघों का परिवर्तन होकर समुद्र का जल, सूर्य्य का उदय परिवर्तन होकर अस्त और अस्त का परिवर्तन होकर उदय, शिशिर ऋतु का परिवर्तन होकर वसन्त और वसन्त का परिवर्तन होकर ग्रीष्म, बीज परिवर्तन होकर वृक्ष और वृक्ष का परिवर्तन होकर बीज, छोटे का परिवर्तन हो कर बड़ा और बड़े का परिवर्तन होकर छोटा, सुख का परिवर्तन होकर दुःख और दुःखका परिवर्तन होकर सुख, निर्धनी का परिवर्तन होकर धनी और धनी का परिवर्तन होकर निर्धनी, अपुत्रावस्था का परिवर्तन होकर पुत्रावस्था और पुत्रावस्था का परिवर्तन होकर अपुत्रावस्था, मङ्गल का परिवर्तन होकर अमङ्गल और अमङ्गल का परिवर्तन होकर मङ्गल, कल्याण का परिवर्तन होकर अकल्याण और अकल्याण का परिवर्तन होकर कल्याण इत्यादि समस्त विश्व और उस की स्थितियों की परिवर्तन गति महाकाल के रजोगुण से होती है। और महाकाल के रजोगुण में जब उग्र तमोगुण होता है, तब उससे विनाश होता है।

जैसे प्राणियों का मरण, पृथ्वी का लय, समुद्र अथवा मेघ मण्डल का नाश, अग्नि व सूर्य्यादि पिण्डों का बुझना, वायु का लय होना, आकाश से धारण और शब्द को नाश इत्यादि सकल विश्वविराट् का परिवर्तन और नाश महाकाल के अनन्त भेदों से होते रहते हैं। विश्व का परिवर्तन और विनाश करना, काल का स्वाभाविक गुण है। महाकाल अनन्त भेदों से विश्व का परिवर्तन और विनाश करता है। उसके अनन्त भेद हैं। उसके भेदों का अन्त नहीं, पार नहीं। अनन्त भेदों का एक महाकाल के अन्तर्गत होने से सब एक महाकालरूप है।

जैसे वृष्टि द्वारा जल की अलग अलग बूँदें असंख्य होती हैं, और उन असंख्य बूँदों का एक मेघ के अन्तर्गत होने से वे सब एक मेघ हैं; काल सूक्ष्म भूतों के साथ निराकार और स्थूल भूतों के साथ साकार है। वह एक होकर भी अनन्त और अनन्त होकर भी एक है।



अध्याय ८



महा अवधि व अवस्थायें ।



महाकाल के स्वभाव से जो विश्व का परिवर्तन होता है, उसकी नियत अवस्था को महाअवधि कहते हैं। वह महाकाल से उत्पन्न होती है। महाकाल का स्वभाव परिवर्तन शील है। उसके रजोगुण में विशेष तमोगुण का योग होने से स्थितियों के रूप में नियत परिवर्तन से उनकी अवस्था बनती है। परिवर्तन की जिस नियत अवस्था में एक ही रूप से क्रिया होती है, उसी को अवधि कहते हैं।

अणु से विश्व पर्यन्त की अवस्था को नियत रखने वाली शक्ति का नाम महा अवधि है। उसका गुण रजोगुण है। उसके रजोगुण में काल के रजोगुण से अधिक तमोगुण होता है। काल के रजोगुण से विश्व का परिवर्तन होता है और अवधि के रजोगुण से परिवर्तन की नियत अवस्था बनती है।

काल के साथ जो नियत अवस्था होती है, उसी का नाम अवधि है। उसके विकार भेद से महाकाल के त्रिकाल भेद उत्पन्न होते हैं। महाकाल से उत्पन्न होने वाले तीन प्रधान भेदः-

जागृत, रचना और लोप हैं। उनमें अवधि के विकार से प्रत्येक के तीन २ भेद होते हैं।

प्राणियों की जीवित अवस्था में बाल, तरुण और वृद्ध अवस्थाओं का भेद अवधि के विकार से होता है। बाल, तरुण और वृद्धावस्थाओं का परिवर्तन जैसे काल के स्वभाव से होता है, वैसे ही बाल, तरुण और वृद्ध अवस्थायें अवधि के स्वभाव से बनती हैं। विश्व के अन्तर्गत जागृत, रचना और लोप महा-काल की ये तीन अवस्थायें अवधि के रजोगुण से बनती हैं।

महा अवधि के स्वाभाविक गुण से परिवर्तन की अवस्था नियत होती है। विश्व के अन्तर्गत प्रत्येक स्थितियों की नियत अवस्थायें महाअवधि के स्वभाव से बनती हैं।

जैसे मनुष्यों में से किसी की अवस्था १२० वर्ष, किसी की १०० वर्ष, किसी की ८० वर्ष, किसी की ६० वर्ष, किसी की ३५ वर्ष, किसी की १५ वर्ष, किसी की ६ वर्ष, किसी की १ वर्ष, किसी की ६ माह, किसी की ४ माह, किसी की १ माह, किसी की १५ दिन, किसी की ८ दिन, किसी की १ दिन, किसी की २० घड़ी, किसी की १४ घड़ी, किसी की ६ घड़ी किसी की २ घड़ी, किसी की ४५ पल, किसी की २५ पल, किसी की १० पल, किसी की १ पल, किसी की ३५ विपल, किसी की १८ विपल, किसी की १ विपल इत्यादि बड़े से बड़े और छोटे से छोटे काल विभाग में जो प्रत्येक अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्डों की अवस्थायें होती हैं, वे अवधि की नियत सत्ता से बनती हैं। उनके महान् स्वरूप को महा अवधि कहते हैं।

उसको न्यूनाधिक करने के लिये न कोई समर्थ है और न कोई उसकी गती को जान सकता है ।

वैसे ही उठने की, बैठने की, कार्य्य करने की, न करने की, चलने की, न चलने की, पहुंचने की, न पहुंचने की, रहने की, न रहने की, बोलने की, न बोलने की, सुनने की, न सुनने की, देखने की, न देखने की, खाने की, न खाने की, सुख की, दुःख की, ज्ञान की, अज्ञान की, शत्रुता की, मित्रता की, मङ्गल की, अमङ्गल की, कल्याण की, अकल्याण की, जागृत की, निद्रा की, जीवन की, और मरण की अवस्थायें महा अवधि के रजोगुण से बनती हैं ।

वैसे ही मनुष्य, देव, पितृ, कीट, पशु, बेल, वृक्ष, बन्धन और मोक्ष अवस्थायें भी महा अवधि के स्वभाव से बनती हैं ।

वैसे ही बीजों की, पेड़ों की, पुष्पों की, सुगन्ध की, दुर्गन्ध की, ठहरने की, न ठहरने की, हिलने की, न हिलने की, सर्दी की, गर्मी की, पेड़ों मे फलों की, बिना फलों की, फलों में रस की, अनरसों की, प्राणियों की पैदा होने की, न पैदा होने की, मेघों के बनने की, बरसने की, न बरसने की, नदियों का उमड़ कर बहने की, सूखने की, दिन की, रात्रि की, पक्ष की, माह की, ऋतुओं की, साल की, शताब्दियों की, युगों की, सत्ययुग की, त्रेता द्वापर कलियुग की, चौकड़ियों की, कल्पों की, पृथ्वी की,, चन्द्रमा की, ग्रहों की, नक्षत्रों की, सूर्य्य की, वायु मेघमण्डलों की, आकाश की, कर्म की, और समस्त लोकों

की अवस्थायें महा अवधि के अनन्त भेदों से बनती हैं। महा अवधि के अन्तर्गत जो पृथक् २ स्थितियों की विभिन्न अवस्थायें होती हैं, उनका वर्णन करने के लिये कोई समर्थ नहीं। महा-अवधि के विश्व के अन्तर्गत अनन्त रूप हैं। वह सूक्ष्म विराट् के साथ अरूपा है अर्थात् निराकार है और स्थूल विराट् के साथ रूपा है, अर्थात् साकार है। निराकार और साकार असंख्य अवधियां जो विश्व के अन्तर्गत असंख्य स्थितियों की अवस्थायें होती हैं, वे सब मिलकर एक महाअवधि रूपा हैं।



अध्याय ९



महाकर्म।

—:०:—

महारचनात्मक, महारचना और अवधि के संयोग से महाकर्म उत्पन्न हुआ। अथवा ब्रह्मा रचना अवधि और तमोगुण के संयोग से महाकर्म उत्पन्न हुआ। जहां कर्ता नियत अवधि में जिस वस्तु के लिये क्रिया करता है, वहां कर्ता, अवधि, क्रिया और उस वस्तु का संयोग होता है।

संयोग व सङ्गठन में तमोगुण का अंश प्रधान होता है, इसलिये कर्ता, क्रिया, अवधि और तमोगुण के संयोग से कर्म बनता है। उसका स्वाभाविक गुण रजोगुण है। उसके रजोगुण में, सतोगुण से तमोगुण पांच गुना अधिक रहता है। महाकर्म के रजोगुण में जो तमोगुण होता है, वहा महारचनात्मक, महारचना, महाकाल और महाअवधि के तमोगुण से अधिक होता है।

कर्म के रजोगुण में अधिक तमोगुण होने से उसके स्वाभाविक गुण से बन्धन शक्ति पैदा होती है। बन्धन कर्म ही से उत्पन्न होता है। इसलिये उसके स्वभाव से समस्त जगत् बंधन के आधीन है।

कर्म के बन्धन से आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी परस्पर सङ्गठित हैं और सूर्य पिण्डों को आकर्षित किये हुये रहता है। कर्म के बन्धन ही से आकाश पिण्डों को और शब्द को धारण करता है। उसी से पृथ्वी अपने समस्त निवासियों को आकर्षित किये रहती है, और अपनी नियत कक्षा पर घूम रही है। कर्म के बन्धन ही से सूर्य उदय होकर अस्त और अस्त होकर उदय होता है। कर्म के बन्धन ही से दिन के पीछे रात्रि और रात्रि के पीछे दिन घूम रहा है, और वायु स्पर्श करता है। उसी से वायु और जल के बहने का स्वभाव होने पर भी अपनी सीमा से बाहर नहीं हो सकते। तेज अपनी सीमा से ज्यादा नहीं तप सकता। कर्म के बन्धन ही से जल, झील नदी समुद्र और मेघ बनकर घूमता है।

उसी से भूतों को स्वर्ग, मृत्यु, पितृ लोकों की प्राप्ति होती रहती है। कर्म के बन्धन ही से सूक्ष्म भूतों से स्थूल भूत और स्थूल भूतों से सूक्ष्म भूत होते रहते हैं। कर्म के बन्धन ही से विश्वप्रपञ्च अनेक रूप के प्राणियों को उत्पन्न करता है। कर्म के बन्धन ही से कुटुम्ब कबीलों का सम्बन्ध, देशों का सङ्गठन, राज्यों का प्रबन्ध, धार्मिक संस्थाओं का सङ्गठन, नैतिक सामाजिक और आर्थिकादि सकल जगत् का बन्धन होता है।

महाकर्म के अटल बन्धन-प्रबन्ध स्वरूप को इन्द्र कहते हैं। उसके अनन्त विस्तार को भू भुवः स्वः, त्रिलोक कहते हैं। महा कर्म इन्द्र त्रिलोकी का राजा है। त्रिलोक के अन्तर्गत स्वर्ग, पितृ और मृत्यु लोक बसते हैं। इन तीनों लोकों की सीमा को त्रिलोक

कहते हैं। स्वः लोक के अन्तर्गत स्वर्गलोक, भुवलोक के अन्तर्गत पितृलोक और भूलोक के अन्तर्गत मृत्यु लोक है। इस त्रिलोक का बन्धन-प्रबन्ध करने वाला राजा महाकर्म इन्द्र है। तीनों लोक कर्म के आधीन हैं।

इन लोकों में जो जैसा कर्म करता है उसको वैसा ही फल प्राप्त होता है। इसलिये त्रिलोक का राजा महाकर्म इन्द्र माना जाता है। वह तीनों लोकों में अनन्त कर्म रूप होकर शासन करता है। त्रिलोक के सूक्ष्म भूतों के साथ वह सूक्ष्म और स्थूल भूतों के साथ स्थूल होकर रहता है। वही प्राणियों को, त्रिगुण कर्म करने से तीनों लोकों में भेजता है। अर्थात् स्थूल-भूत जीवित अवस्था में सतोगुण कर्म करने से मरणावस्था के पश्चात् सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होकर सुख के स्थान स्वर्ग लोक में और रजोगुणी कर्म करने से पितृलोक में भेजे जाते हैं। देवलोक, पितृ लोक में सूक्ष्म भूतों को स्थूल भागों की इच्छा होने से वे मृत्यु लोक में भेजे जाते हैं।

मृत्यु लोक वह है, जहां सूक्ष्म भूत स्थूल-शरीर को धारण कर जन्मते हैं। वहां गुण कर्मानुसार चार प्रकार के जीव उत्पन्न होते हैं। पिण्डज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज। उनकी अवस्था परिवर्तन शील, अथवा बाल तरुण वृद्ध होती हैं, और उनका जीवन मरण होता है। अर्थात् जहां हम रहते हैं उसी को मृत्यु लोक कहते हैं। मृत्यु लोक के स्थूल भूत अपनी जीवित अवस्था में सत, रज, तम, तीन गुणों द्वारा स्थूल भोगों का भोग करते हैं।

पृथ्वी पिण्ड की उस आकाश सहित सीमा को मृत्युलोक कहते हैं, जहां तक वायु और आकाश में जीवन मरण वाले प्राणी बसते हैं। मृत्यु लोक में प्रधान जीव मनुष्य हैं। वे रजोगुणी कर्मों से मनुष्य देह धारण करते हैं। उनके रजोगुज में सतोगुण और तमोगुण कर्मों की समानता होती है। इसलिये मनुष्य सत, रज, तम त्रिगुण कर्म करने के लिये समर्थ होता है। वह त्रिगुण कर्म करने के लिये तो स्वतन्त्र होता है और उन कर्मों के फल भोग के लिये परतन्त्र। जिस मनुष्य में जिस गुण का अधिक अंश होता है, वह उस गुण सम्बन्धी ज्ञान द्वारा प्रवृत होकर वैसा ही कर्म करता है, और उस गुण के कार्य्य साधन से उसके अन्य गुण न्यून होकर रहते हैं। इसलिये मनुष्य की मरणावस्था में उस गुण की प्रधानता से उसके कर्म की इच्छा उत्पन्न होती है, जिसके कारण सूक्ष्म शरीर वैसे ही अवस्था को प्राप्त होकर कर्मभोग के लिये कर्म बन्धन के स्वभाव से परतन्त्र होता है।

अथवा मनुष्य जब जीवित अवस्था में सतोगुण सम्बन्धी कर्म में अधिक इच्छुक रहता है, तब वह अपनी सतोगुणी इच्छानुसार सतोगुण कर्मों में प्रवृत रहता है और अन्य गुण सम्बधी कार्य्यों में उसकी इच्छा उत्पन्न न होने से उसके अन्य गुण न्यून होकर रहते हैं। इसलिये जब मनुष्य मरणावस्था में सतोगुणी कर्मों की इच्छा से मरता है, तब उसका सूक्ष्म शरीर सतोगुण सुख की इच्छा होने से सुख के स्थान स्वर्ग में इन्द्र के शासन-प्रबन्ध से भेजा जाता है। वहां

जाकर वह सुख को प्राप्त होता है । अर्थात् स्वर्ग में देवताओं के दिव्य भोगों को भोगता है। सूक्ष्म भूतों के सुख-भोग-स्थान को ही स्वर्ग कहते हैं ।

स्वर्ग, सूक्ष्म भूतों को धारण करने वाला सुख का स्थान, भी सूक्ष्म है । वह मृत्यु लोक के स्थूल भूतों को धारण करने वाली पृथ्वी की तरह स्थूल नहीं, किन्तु सूक्ष्म भूतों को धारण करने वाला स्वर्ग सूक्ष्म है । वह पृथ्वी से सूर्य्य मण्डल की ओर उत्तर तरफ है । वहां के निवास करने वाले सूक्ष्मभूतों की मरणावस्था नहीं होती और न उन की बाल, तरुण, जरा अवस्था होती है । उन की नित्य एक ही अवस्था बनी रहती है । क्यों कि बाल, तरुण, जरा अवस्था स्थूल शरीर का विकार है, सूक्ष्म शरीर का नहीं । इसलिये स्वर्ग में सूक्ष्म भूतों की एक ही अवस्था बनी रहती है । वे अमर हैं, अजर हैं ।

किन्तु उन के सतोगुण में रजोगुण और तमोगुण का अँश होने से वे जन्मावस्था को प्राप्त होकर फिर मृत्यु लोक में आकर जन्म लेते हैं । वे पृथ्वी में स्थूल शरीर धारण कर अपने गुण-कर्मानुसार कर्म भोग करते हैं । मृत्यु लोक में आकर फिर जीवन मरण अवस्था को प्राप्त होते हैं ।

मनुष्य लोक में जो देवताओं के निमित्त सात्विक यज्ञ किये जाते हैं, उन के सात्विक भाग इन्द्र के शासन-प्रबन्ध से स्वर्ग में देवताओं को पहुंचाये जाते हैं । देवता यज्ञों के सात्विक भाग को ग्रहण कर मृत्यु लोक से प्रसन्न होते हैं। और मृत्युलोक की सुख-वृद्धि के लिये अन्न ओषधियों की वृद्धि करते हैं ।

देव अपनी इच्छा से अनेक रूप धारण कर सकते हैं। वे अपनी इच्छा से पृथ्वी पर भी आसकते हैं। और अपनी इच्छा से फिर स्वर्ग लोक को भी जासकते हैं। देवता विशेषतया मृत्यु लोक में अपने सूक्ष्म रूप से उस समय ज्यादा आगमन करते हैं जिस समय मृत्युलोक में देवताओं के निमित्त सात्विक यज्ञ अधिक किये जाते हैं। यज्ञों से देवताओं और मनुष्यों की परस्पर, वृद्धि होती है।

देवअवस्था और स्वर्ग लोक मनुष्यों के नेत्रों से अदृश्य हैं। मनुष्य उन को दिव्य योग द्वारा देख सकते हैं। देवस्थान-स्वर्ग पृथ्वी से उत्तर की ओर पृथ्वी-आकाश-सीमा से सम्मिलित है। उस का विस्तार मृत्युलोक से अधिक है। स्वर्ग लोक सूर्य मण्डल से ऊपर है।

स्वर्ग लोक की सुख से सम्बन्ध रखने वाली अमृतादि सामग्रियां जिस स्वरूप के आधीन हैं, उस देव को कुबेर कहते हैं। उस के असँख्य कोष में स्वर्ग की असँख्य सुख की सामग्रियां भरी हैं।

पहिले वर्णन हो चुका है, कि मनुष्य की मृतावस्था में सत् रज तम-त्रिगुण में से जिस गुण की अधिकता उस सूक्ष्म शरीर में होती है जो कि मनुष्य-स्थूल--शरीर को त्याग कर शेष रह जाता है, उसके अनुसार वह परजन्म में सुख दुःख को भोगता है।

यदि उसके त्रिगुणों में सतोगुण अधिक हो तो वह सुख-भोग के लिये स्वर्ग जाता है ।

यदि रजोगुण अधिक हो तो मरणावस्था के पश्चात् सूक्ष्म भूत स्थूल देह को त्याग कर पितृलोक को जाता है और वहां से फिर शीघ्र मृत्युलोक में आकर मनुष्य--योनियों में जन्म लेता है और मनुष्य-स्थूल शरीर को प्राप्त करता है ।

यदि मनुष्य की मरणावस्था में तमोगुण--कर्म की इच्छा अधिक हो तो वह भी सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होकर पितृलोक को जाता है और पितृलोक से फिर मृत्यु लोक में कीट पशु योनियों में जन्म लेने से कीट पशु आदि स्थूल मूढ़-अवस्था को प्राप्त करता है ।

यदि मृत्यु लोक के मनुष्य, अथवा कीट पशु स्थूल प्राणियों में तमोगुण अधिक अंशों में बढ़ जाता हो तो उनके सूक्ष्म शरीर मरणावस्था में स्थूल देह त्याग कर प्रथम पितृलोक में जाते हैं और वहां से नरकादि नीचे के अन्धकार लोकों में भेजे जाते हैं ।

मृत्युलोक के जीवों में जितना अधिक अंश सतोगुण का होता है उतना ही वे स्वर्गादि सुख के स्थानों को प्राप्त होते हैं ।

पितृलोक में भी मरणावस्था नहीं होती और न वहां अवस्था का परिवर्तन होता है । सूक्ष्म पितृ अवस्था भी अजर अमर है ।

किन्तु पितृलोक के भूतों की जन्मने की अवस्था तुरन्त होती है। पितृभूत गुण कर्म इच्छानुसार मृत्युलोक और नरक को भेजे जाते हैं। मनुष्यों की रजोगुण कर्म इच्छा होने से मरणावस्था के पश्चात् वे पितृलोक को जाते हैं और पितृलोक में उनको स्थूल भोगों की इच्छा होने से मृत्युलोक में आकर स्थूल मनुष्य--अवस्था को प्राप्त होते हैं। पितृलोक से पितृभूतों को मृत्युलोक में आने के लिये कम से कम एक वर्ष लगता है। पितृभूत मृत्युलोक के स्थूल भोगों की इच्छा न कर अधिक काल तक भी पितृलोक में रह सकते हैं।

पितृलोक मृत्युलोक से चन्द्रमण्डल की ओर है। वह पृथ्वी की तरह स्थूल नहीं है, स्वर्ग की तरह सूक्ष्म है। उसमें सूक्ष्म पितृभूत निवास करते हैं। मृत्युलोक में जो राजस--यज्ञ पुत्रप्राप्ति के लिये पितरों के निमित्त किये जाते हैं, उन यज्ञों का राजस भाग इन्द्र के शासन द्वारा पितृलोक को पहुंचाया जाता है। अथवा पितृभूत, मृत्युलोक में आकर उन राजस यज्ञों को ग्रहण करते हैं और मनुष्यों के ऊपर प्रसन्न होकर अपनी इच्छा से मृत्युलोक में जन्म लेते हैं। मृत्युलोक निवासियों की मृत्यु होने पर वे अपने गुण कर्मानुसार स्वर्ग और पितृलोक को जाते हैं।

मृत्युलोक-निवासी भूतों के त्रिगुण कर्म जांच करने वाले इन्द्र के सत्य अटल स्वरूप को धर्मराज कहते हैं। और पितृलोक भूतों के रजोगुण कर्म का निरीक्षण करने वाले इन्द्र के सत्य अटल स्वरूप को यमराज कहते हैं। धर्मराज मृत्युलोक

भूतों के कर्मों का यथार्थ निरीक्षण करने का अधिकारी है। उसके प्रबन्ध से सतोगुणी कर्म करने वाले मनुष्य मृत्यु के पश्चात् स्वर्गलोक को, और रजोगुणी कर्म करने वाले, जिनके कर्मों के योग में तमोगुण अधिक हो, पितृलोक को भेजे जाते हैं। धर्मराज सात्विक भूतों को स्वर्ग में भेजने का अधिकारी है।

यमराज पितृलोक में वास करता है और पितृलोक का अधिकारी है। वह नीच कर्म करने वाले महापापियों को पितृलोक से नरकादि नीचे के अन्धकार लोकों में भेजता है।

भूतों का शरीर त्रिगुण कर्मों की इच्छा से रहित होने पर महा इन्द्र द्वारा त्रिलोक से बाहर मह, जन, तप और सत्य लोकों में भेजे जाते हैं, जो स्वर्ग से भी अधिक सुख के स्थान हैं।

त्रिलोक का सारा कर्म-बन्धन महाइन्द्र के आधीन है। त्रिलोक में वह अनन्त कर्म रूप होकर रहता है। कुवेर, धर्मराज, यमराज उसी के रूप हैं।

मेघों को बनाना, बरसाना, वायु को बहाना, आकाश से शब्द कराना, बिजली को उत्पन्न करना, और सूर्य्य का प्रकाश पृथ्वी पर पहुंचाना इत्यादि त्रिलोक के छोटे बड़े सकल कर्म बन्धन महाकर्म इन्द्र के आधीन हैं। वह स्वर्ग, मृत्यु, और पितृलोक में सूक्ष्म भूतों पर शासन करने से सूक्ष्म इन्द्र है और मृत्युलोक में स्थूल भूतों पर शासन करने से स्थूल इन्द्र है।

स्थूल भूतों का स्थूल कर्म ही स्थूल इन्द्र है। सूक्ष्म और स्थूल महाकर्म के अनन्त विस्तार को त्रिलोक कहते हैं। इसलिये त्रिलोक कर्म के आधीन होता है। अथवा त्रिलोक में जो जैसा कर्म करता है, वह वैसा ही सुख दुःख को प्राप्त होता है।



अध्याय १०



महा आकाश ।



काल और कर्म के योग से आकाश बना है। अथवा, तमोगुण क्रियात्मक और अवधि के सँयोग से आकाश बना है। अथवा, जड़ रचनात्मक क्रिया और अवधि के सँयोग से आकाश बना है। अथवा, अन्धकार, कर्ता, क्रिया, कर्म और अवधि के सँयोग से आकाश बना है। अथवा, जागृति, कर्ता, क्रिया, कर्म, आधार, और अवधि के सँयोग से आकाश बना है। जहाँ जागृति, कर्ता, क्रिया, कर्म, आधार और अवधि का सँयोग होता है, वहाँ शब्द उत्पन्न होता है। इसलिये आकाश का गुण शब्द हुआ।

आकाश और शब्द, अहङ्कार और काल के सँयोग से बने हैं। अहङ्कार में तमोगुण और रजोगुण का सँयोग होता है। तमोगुण अन्धकार से बनता है। रजोगुण में अन्धकार और प्रकाश का मेल होता है। इसलिये अहङ्कार में तमोगुण के अन्धकार का और रजोगुण के अन्धकार का योग प्रकाश से अधिक होता है। काल की उत्पत्ति रजोगुण से है। उस के रजोगुण में तमोगुण अधिक है, इसलिये आकाश और शब्द में विशेष अन्धकार और तनिक प्रकाश हुआ।

आकाश के अभिमानी रजोगुण से शब्द उत्पन्न हुआ। आकाश, वायु से सूक्ष्म है। उस का विस्तार अनन्त है। वायु, तेज, जल, पृथ्वी, सूर्य और चन्द्रमा सब को धारण करने वाला आकाश है। पृथ्वी आकाश में घूम रही है। सूर्य्य आकाश में तप रहा है। वायु आकाश में बह रहा है। मेघ आकाश में बन रहे हैं। तारे आकाश मे चमक रहे हैं। वृक्ष जमीन से उग कर आकाश में फैल रहे हैं। बृक्षों का तना, टहनियाँ, पत्ते, पुष्प, फल सब आकाश में फैलते हैं। चिड़ियां आकाश में उड़ती हैं। मनुष्य, गाय, भैंस घूमते फिरते उठते बैठते आकाश में रहते हैं। हम चलते हुये केवल पैरों को पृथ्वी पर रखते हैं और बाकी सारा शरीर आकाश में रहता है। इसीतरह उठते बैठते हुये भी हमारा तनिक हिस्सा पृथ्वी पर टिका हुआ रहता है और बाकी सारा शरीर आकाश में रहता है। जिसतरह पृथ्वी अपनी समस्त बस्तुओं को अपने भिन्न भिन्न स्थानों में धारण करती है, उसी तरह आकाश भी सब अण्ड-पिण्ड ब्रह्माण्डों को अपने भिन्न भिन्न स्थानों में धारण कर रहा है। हमारा आधार पृथ्वी और पृथ्वी का आधार आकाश है। इसलिये आकाश सब को धारण करने वाला आधार है।

धारण आकाश का सतोगुण स्वभाव है। आकाश स्थूल और सूक्ष्म सब पिण्डों को धारण करने वाला आधार और स्थान है। आकाश और शब्द में रूप नहीं है। इसलिये वे नेत्रों से दिखाई नहीं देते। शब्द आकाश के विना नहीं होसकता। जिस वस्तु से शब्द होगा, उस में अवश्य आकाश तत्व होगा। वायु के बहने का शब्द, अग्नि के जलने बुझने का शब्द, मेघों के

बरसने का शब्द, नदियों के बहने का शब्द, पिण्डों के टकराने का शब्द, पृथ्वी के टूटने फूटने का शब्द, वृक्षों के टूटने हिलने का शब्द, मनुष्यों के बोलने का शब्द, पिण्डजों द्वारा होने वाले शब्द, अण्डजों द्वारा होने वाले शब्द, स्वेदजों द्वारा होने वाले शब्द, उद्भिजों द्वारा होने वाले शब्द, इत्यादि समस्त विश्वब्रह्माण्ड में होने वाले सार्थक और निरर्थक शब्द सब आकाश तत्व के रजोगुण से पैदा होते हैं।

धारण आकाश का सतोगुण है। क्योंकि आकाश में पृथ्वी सूर्यादि--पिण्ड अपने आप धारित हैं और अपने आप होने का स्वभाव चैतन्य का है। चैतन्य का स्वभाव सतोगुण है, इस लिये धारण आकाश का सतोगुण है। धारण का स्वरूप स्मरण और बोध भी है। प्राणियों में स्मरण और बोध आकाश के सतोगुण से उत्पन्न होते हैं।

शब्द आकाश के रजोगुण से होता है क्योंकि धारण में तमोगुण का योग होने से शब्द उत्पन्न होता है। धारण आकाश का सतोगुण है इस लिये सतोगुण में तमोगुण का योग होने पर रजोगुण से शब्द उत्पन्न होता है, अथवा आकाश के रजोगुण से शब्द पैदा होता है।

अन्धकार आकाश का तमोगुण है, क्यों कि अन्धकार ही से तमोगुण बना है। आकाश अहङ्कार और काल के योग से बना है। उनके योग में तमोगुण अधिक है, इसलिये आकाश के योग में तमोगुण अन्धकार अधिक है और अन्धकार ही आकाश का तमोगुण है। प्राणियों के शरीर में शोक भी आकाश

तत्व का तमोगुण स्वरूप है, क्यों कि अज्ञान में प्रधान अन्धकार का अंश शोक है। इसलिये आकाश के तमोगुण से अन्धकार व शोक उत्पन्न होता है।

महा आकाश के अन्तर्गत अनन्त आकाश हैं। जहां शब्द वायु, तेज, जल, पृथ्वी के स्थूल और सूक्ष्म भाग होंगे, वहां अवश्य आकाश होगा, क्यों कि वे आकाश के बिना नहीं हो सकते। जैसे मूल के बिना पत्ते, पुष्प, फल, नहीं होसकते वैसे ही तत्वों और पिण्डों का धारण करने वाला मूल आकाश है और वे आकाश के बिना नहीं होसकते।

घटाकाश, घटके अन्दर भी आकाश है और वह महा आकाश का अङ्ग है। इसलिये उस घटाकाश में वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तत्व के भाग रह सकते हैं। मनुष्य गाय, भैंस, हाथी, चिऊंटी, हंस, कौआ, गरुड़, मशक, दँश और वेल वृक्षों में भिन्न भिन्न तरह के अनन्त शरीर आकाश हैं। उन सब में मुंह से लेकर गुदा तक आकाश तत्व है और प्रत्येक प्राणियों के शरीर में जहां रुधिर और रस दौरा करते हैं, वहां आकाश तत्व है। मांस और अस्थियों के अन्दर भी आकाश तत्व रहता है। वही रुधिर मांस हाड्डियों का आकाश हमारे सब अङ्गों को धारण किये हुये रहता है। और जिस में त्वचा बनती है, उसको शरीर-महाकाश कहते हैं।

महाआकाश में जिस तरह शब्द, वायु, तेज, जल, पृथ्वी स्थित हैं, उसी तरह शरीर महाकाश में शरीर शब्द वायु तेज

जल पृथ्वी व शरीर द्वारा होने वाले सार्थक और निरर्थक शब्द स्थित हैं ।

शरीर द्वारा होने वाले शब्द जो मुंह से गुदा तक शरीर महाकाश में होते हैं, वे दो तरह के होते हैं:—सार्थक और निरर्थक। इन में भी सात प्रकार के शब्द होते हैं। कण्ठ में बाणी शब्द, पेट में आंतों द्वारा होने का शब्द, गुदा में पाद शब्द, कान में कर्णशब्द, नासिका में नासिका शब्द, शरीर में शरीर हिलने का शब्द और शरीर के टकराने से अचानक शब्द ।

सब प्रकार के सार्थक और निरर्थक शब्द आकाश तत्व के रजोगुण से उत्पन्न होते हैं। इसीतरह सारे पिण्डज अण्डज स्वेदज उद्भिजों में अनन्त शरीर आकाश और अनन्त शरीर-शब्द होते हैं। सब प्रकार के शब्द महाआकाश में विद्यमान रहते हैं और उसी से सब को प्राप्त होते हैं।

महाआकाश में एक बड़ा कौतुकमय दृश्य है। उसमें वायु, तेज, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र शनैश्चर आदि विश्वब्रह्माण्ड के तत्व और पिण्डों का अपने अपने नियत चक्र में घुमाने और परस्पर सम्बन्ध में सङ्गठित रखने वाली अनन्त धारण शक्तियां हैं। ये समस्त महाआकाश में शरीर-नाड़ियों के जाल की तरह फैली हुई हैं। उन्हीं धारण शक्तियों द्वारा सूर्य्य में तेज और प्रकाश, पृथ्वी में गन्ध, वायु में स्पर्श सुखाना फैलाना, और जल में रस है।

धारण शक्तियां भी आकाश की तरह अदृश्य हैं। प्राणियों के

शरीर-अवयवों को धारण करने वाली नाड़ियां शरीर आकाश की धारण शक्तियां हैं। वृक्षों के पत्ते, पुष्प, फल धारण करने वाली टहनियों की धारण शक्तियां वृक्ष-आकाश तत्व से उत्पन्न होती हैं।

समस्त शरीर के अवयवों में आवश्यक तत्व नाड़ियों द्वारा पहुंचते हैं। और समस्त शरीर के भिन्न भिन्न अङ्ग अपने अपने स्थान में नाड़ियों द्वारा ही स्थित हैं, जिससे वे परस्पर सम्बन्धित और सङ्गठित रहते हैं।

शरीर-अङ्गों की तरह महाकाश की धारण शक्तियां तत्व और पिण्डोंका परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित और सङ्गठित रखती हैं। धारण शक्तियों द्वारा ही सब अपने अपने नियत स्थानों में हैं।

पञ्चतत्वों में आकाश सब से बड़ा और आवश्यक तत्व है। प्राणियों के शरीर में आकाश तत्व के सतोगुण से धारण और स्मरण शक्तियां उत्पन्न होती हैं, रजोगुण से शब्द। कान में जो शब्द बोध होता है, वह भी आकाश के सतोगुण से होता है। बोध स्मरण के अन्तर्गत होता है। अर्थात् स्मरण ही बोध है। शब्द आकाश के रजोगुण से और शब्द का बोध आकाश के सतोगुण से होता है।

आकाश के तमोगुण से प्राणियों के शरीर में शोक उत्पन्न होता है। आकाश की धारण शक्तियों से शरीर-नाड़ियां और वृक्षोंकी टहनियां पैदा होती हैं। आकाश का अभिमानी गुण शब्द है। आकाश के योग में चैतन्य, जागृति, रचनात्मक, रचना

काल, शक्ति, कर्म, धारण, अन्धकार, शोक, और शब्द सम्मिलित रहते हैं। इन सब का स्वरूप नेत्रों की शक्ति से बाहर है, इसलिये वे नेत्रों से नहीं दिखाई देते।

आकाश, आकाश के तमोगुण से आच्छादित है, क्यों कि उस के रजोगुण के योग में तमोगुण कहीं अंशों में अधिक है। आकाश के सतोगुण से धारण शक्तियां, रजोगुण से शब्द, और तमोगुण से अन्धकार है।

समस्त विश्वब्रह्माण्ड के पिण्ड, आकाश में उस की सत्वगुण शक्तियों से धारित हैं। उन को आकर्षण-शक्तियां भी कहते हैं।

आकाश के रजोगुण से विश्वब्रह्माण्ड के समस्त अण्ड, पिण्ड ब्रह्माण्डों में सार्थक और निरर्थक शब्द व्यापक हैं।

आकाश में जो नील वर्ण सर्वत्र दिखाई देता है, वह आकाश के तमोगुण से उत्पन्न होने वाला अन्धकार है। वह सूर्य के तेज के कारण आकाश में नीलवर्ण दिखाई देता है। वास्तविक वह अन्धकार है, जो रात्रि को पृथ्वी में फैलता है।



अध्याय ११



महावायु ।

—:0:—

आकाश और रजोगुण के संयाग से वायु बना है। अथवा अहङ्कार, काल और रजोगुण से वायु बना है। अथवा प्रकृति, चैतन्य, काल और रजोगुण से वायु बना है। अथवा अन्धकार, चैतन्य, अवधि, कर्ता, क्रिया, कर्म और रजोगुण से वायु बना है। अथवा अन्धकार+रजोगुण, चैतन्य+रजोगुण, अवधि+रजोगुण, कर्ता+रजोगुण, क्रिया+रजोगुण, कर्म+रजोगुण इन के संयोग से वायु बना है। अथवा अन्धकार, चैतन्य अवधि, कर्ता, क्रिया, कर्म, इन सब में रजोगुण का योग होने से वायु में विशेष बल प्राप्त हुआ और वह बल अपने स्वभाव से धावन व शोषण करता है। इसलिये वायु अपने बल के प्रभाव से लेने व शोषण के लिये स्पर्श करने लगा। अथवा वायु अपने स्वभाव से प्रत्येक पदार्थों को स्पर्श कर शोषता व सुखाता है।

वायु में अनन्त बल प्राप्त होने से वह आकाश में बहने और फैलने लगा। वह अपने बल के प्रभाव से आकाश में अनन्त

सीमा तक फैल गया । बहने और फैलने से शब्द, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह, अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्ड आदि सब को स्पर्श करने लगा । और स्पर्श द्वारा सब को शोषणे व सुखाने लगा ।

वायु अरूप है । उसमें शब्द स्पर्श है, रूप नहीं । इसलिये वह नेत्रों से दिखाई नहीं देता । आकाश में उस का अनन्त विस्तार है । वह आकाश में सब पिण्डों को स्पर्श किये हुये है । पिण्डों का घुमाना, उनके प्रकाश व तेज को आकाश में फैला कर पिण्डों में पहुंचाना, उसी से हो रहा है ।

आकाश में जहां तक पिण्डों में घूमने की क्रिया हो रही है, अथवा जहां तक पिण्डों का प्रकाश व तेज फैल रहा है और पिण्डों में स्पर्श, आकर्षण हो रहा है, वहां तक आकाश में वायु फैला हुआ है । क्योंकि स्पर्श, धावन, शोषण ये कार्य वायु तत्व से होते हैं, बिना वायु तत्व के वे नहीं हो सकते । आकाश में वायु सब जगह एक सा नहीं होता । कहीं घना है कहीं सूक्ष्म । जहां जितने वायु की आवश्यकता है वहां उतना ही न्यूनाधिक है ।

वायु के कारण सूर्य अपने स्थान में बड़ी तेजी से घूम रहा है । वायु के कारण सूर्य का प्रकाश व तेज आकाश और पृथ्वी आदि पिण्डों में फैल रहा है । वायु सूर्य के स्पर्श द्वारा उसके प्रकाश और तेज को शोष कर आकाश में फैला कर पिण्डों में पहुंचाता है ।

जिस तरह गृह में दीपक का प्रकाश एक नित स्थान में

रक्खा जाता है, किन्तु उसका प्रकाश व तेज सारे कमरे में फैलता है, क्योंकि वायु दीपक के प्रकाश को स्पर्श कर शोषता है और सम्पूर्ण गृह में फैलाता है, वैसे ही सूर्य भी अपने नियत स्थान में घूम रहा है, और वायु उसके प्रकाश व तेज को स्पर्श द्वारा शोष कर भूमण्डल तक फैला रहा है। इसी तरह चन्द्रमा, तारे, बिजली, अग्नि इनके तेज व प्रकाश को वायु स्पर्श कर शोषता है और आकाश में फैला कर हमारी पृथ्वी तक पहुंचाता है। वायु के ही कारण आकाश में चन्द्रमा व तारे घूम रहे हैं, बिजली प्रकट होकर धावन करते हुए विच्छिन्न होती है।

वायु में अग्नि के परमाणु होते हैं। वह उनको एकत्रित कर अग्नि में रूप को पैदा करता है, जिसको अग्नि का जलना भी कह सकते हैं। अग्नि के परमाणु विच्छिन्न होकर वायु में मिल जाने से उसका बुझना होता है। वायु के ही कारण सूर्य और पृथ्वी में आकर्षण पैदा होता है। उसी से पृथ्वी अपनी कक्षा पर दिन रात के चक्कर में घूम रही है। पृथ्वी से शीतोष्ण, नमी, और गंध उसकी आवश्यकता से अधिक होने पर वायु उनको शोष कर आकाश में ले जाता है।

जल के परमाणु की जुदाई, नदियों का बहाव, समुद्र में ज्वारभाटे, समुद्र से भाप को उड़ा कर आकाश में फैलाना, मेघों के समूह को बनाना, मेघों को उड़ाना, घुमाना, मेघों से वर्षा को पृथ्वी पर उतारना, जल को सुखाना और मेघों को विच्छिन्न करना ये सब क्रियायें वायु तत्व से होती हैं।

आकाश में मेघों के शब्द, पिण्डों के टूटने फूटने के शब्द, वृक्षों के टूटने हिलने व टकराने के शब्द, जल के बहने बरसने के शब्द, मनुष्यों के बोलने के शब्द, जानवरों द्वारा होने वाले शब्द, पिण्डज अण्डज स्वेदज और उद्भिजों द्वारा होने वाले शब्द, सब प्रकार के सार्थक और निरर्थक शब्द, सब को वायु उनके स्थानों से स्पर्श कर आकाश में फैलाता है और आकाश से हमारे कानों तक पहुंचाता है।

वायु मण्डल में शब्द, प्रकाश और तेज अपनी सीमा से अधिक फैलने पर विच्छिन्न हो जाते हैं, जिससे उनका बोध नहीं हो सकता।

समस्त विश्व में स्पर्श, सुखाना और फैलाने की क्रियायें वायु तत्व से हो रही हैं। आकाश से शब्द को, अग्नि से प्रकाश व तेज को, जल से रस को, पृथ्वी से गन्ध को, वायु स्पर्श कर शोषता है और फिर आकाश में फैलाते हुये पिण्डों व जीव जन्तुओं में पहुंचाता है।

वायु आकाश से शब्द का स्पर्श द्वारा शोष कर हमारे कानों तक पहुंचाता है। अग्नि, सूर्य्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, बिजली से प्रकाश खींच कर हमारे नेत्रों तक पहुंचाता है। अग्नि और सूर्य से तेज खींच कर हमारी त्वचा तक पहुंचाता है। पृथ्वी से गन्ध खींच कर हमारी नासिका तक पहुंचाता है।

पृथ्वी का जल शोषण, वृक्षों का पृथ्वी से रस शोषण और उस रस का वृक्षों के प्रत्येक अवयवों में फैलाना वायु तत्व से

होता है । वृक्षों की जड़ों को पृथ्वी के अन्दर फैलाना, वृक्षों को पृथ्वी से आकाश में फैलाना, उन को बढ़ना हिलना गिरना पुष्पों से गन्ध को उड़ाना, पत्तों को हिलाना उड़ाना, वायु तत्व से होता है ।

मनुष्यों का सांस लेना, अन्न जल निगलना, मलमूत्र उतरना, त्वचा का स्पर्श ज्ञान करना, शरीर में रस रुधिर का बहना, हाथों का लेना और पैरों का धावन ये सब शरीरिक क्रियायें, वायु तत्व से होती हैं ।

प्राणियों के शरीर में वायु तत्व के सत् रज, तम, त्रिगुणों में से प्रत्येक के पांच पांच भेद होते हैं । तीनों गुणों के भेद मिल कर पन्द्रह भेद हैं । इन के अतिरिक्त दो अन्य भेद होते हैं । उन सब भेदों से वायुतत्व प्राणियों के शरीर में क्रिया करता है । वायुतत्व के सतोगुण से शरीर में वायु के जो पांच भेद होते हैं, उन से शरीर की ये पांच क्रियाए' होती हैं:—

(१) शब्द के स्थान से शब्द को कान में पहुंचाना । (२) आंख से दृष्टि का सर्वत्र फैलाना । (३) गन्ध के स्थान से गन्ध को नासिका में पहुंचाना । (४) कण्ठ से बाणी को फैलाना । (५) त्वचा से शीत उष्ण का ज्ञान कराना ।

वायु के रजोगुण से शरीर में जो पांच भेद हैं, उन से शरीर की ये पांच क्रियायें होती हैं:—

(१) ऊपर को चलने वाला सांस प्राणवायु । वह फेफड़े से नासिका के अग्रभाग तक बाहर को होता है । (२) नीचे को

चलने वाला सांस अपान वायु, वह नासिका से गुदा तक रहता है। (३) सारे शरीर में विचरने वाला व्यान वायु। वह समस्त शरीर के अवयवों में रस रुधिर को पहुंचाता है। (४) कण्ठ में रहने वाला उदान वायु, जिससे अन्न जल निगला जाता है। (५) अन्न जल का समीकरण करने वाला समान वायु, जिस से मल मूत्र बाहर उतरता है।

वायु के तमोगुण से प्राणियों के शरीर में जो पांच भेद होते हैं, उन से शरीर की ये पांच क्रियायें होती हैं:—

(१) बुढ़ापे में त्वचा को ढलाना, (२) शरीर को बल हीन करना। (३) शरीर को हिलाना व उठाना। (४) हाथ पैरों से क्रिया कराना। (५) त्वचा से स्पर्श ज्ञान का नाश कराना।

प्राणियों के शरीर को बढ़ाना और शरीर में बल प्राप्त कराना शरीर की ये दो क्रियायें भी वायुतत्व के सतोगुण से होती हैं। समस्त पिण्डज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिजों में भी ये क्रियायें वायु तत्व से होती हैं।

बेल वृक्षों में भी ये १७ प्रकार के वायु बराबर क्रिया करते रहते हैं:—

(१) वायु वृक्षों की जड़ों को पृथ्वी के अन्दर फैलाता है। (२) वायु द्वारा वृक्ष पृथ्वी से रस शोषते हैं। (३) वायु वृक्षों को आकाश में फैलाता है। (४) वायु वृक्षों के अवयवों में रस को पहुंचाता है। (५) वायु वृक्षों को बढ़ाता है। (६) वायु

वृक्षों को स्थिर रखता है। (७) वायु वृक्षों की पत्तियों द्वारा रोशनी, रस, गन्ध को शोषता है। वह वृक्षों का प्राणवायु है। (८) वायु वृक्षों की आवश्यकता से ज्यादा जल गरमी गन्ध को वृक्षों से बाहर फैंकने वाला है। (९) वायु वृक्षों को हिलाने वाला है। (१०) वायु वृक्षों को सुखाने वाला है। (११) वायु वृक्षों को गिराने वाला है। (१२) वायु वृक्षों द्वारा होने वाले शब्द को फैलाने वाला है। (१३) वायु वृक्षों को सर्दी गरमी स्पर्श ज्ञान कराने वाला है। (१४) वायु वृक्षों को दृढ़ बनाने वाला है। (१५) वायु वृक्षों को बल प्राप्त कराने वाला है (१६) वायु वृक्षों को खड़ा रखने वाला है। (१७) वायु वृक्षों की त्वचा को ढलाने वाला है।

वायु के सतोगुण से स्पर्श, रजोगुण से बहना व फैलाना और तमोगुण से शोषण व सुखाना होता है। वायुतत्व के सत्व, रज, तम, त्रिगुणों में से प्रत्येक के पांच २ प्रधान भेद होते हैं।

वायु के सतोगुण से पाञ्च भेद--स्पर्श करना, छूना, छेड़ना, मिलना और मिलाना होते हैं।

वायु के तमोगुण से पाञ्च भेद--सुखाना, शोषण, लेना, खींचना और आकर्षण होते हैं।

वायु के रजोगुण से पांच भेद—बहना, फैलाना, घूमना, चलना और धावन होते हैं। इन तीनों गुणों के भेदों से वायु विश्व प्रपञ्च के साथ कार्य करता है।

अध्याय १२



महा अग्नि ।



वायु में सतोगुण का संयोग होने से अग्नि उत्पन्न हुआ। अथवा आकाश रजोगुण और सतोगुण के संयोग से अग्नि उत्पन्न हुआ। अथवा अहङ्कार काल रचना व सतोगुण के संयोग से अग्नि उत्पन्न हुआ। अथवा जागृति तमोगुण प्रकाश अवधि कर्त्ता क्रिया कर्म रजोगुण व सतोगुण के प्रकाश से अग्नि उत्पन्न हुआ। अथवा जागृति+प्रकाश, तमोगुण+प्रकाश, प्रकाश+प्रकाश, अवधि+प्रकाश, कर्ता+प्रकाश, क्रिया+प्रकाश, कर्म+प्रकाश, रजोगुण+प्रकाश के संयोग से अग्नि उत्पन्न हुआ। अथवा जागृति, तमोगुण, प्रकाश, अवधि, कर्ता, क्रिया, कर्म, रचनात्मक इन सब में सतोगुण-प्रकाश का संयोग होने से अग्नि में प्रकाश उत्पन्न हुआ।

जागृति, तमोगुण, अवधि, कर्ता, क्रिया, कर्म इन सब में प्रकाश रचनात्मक और बल के प्राप्त होने से अग्नि में प्रकाश के साथ तेज उत्पन्न हुआ और तेज के तमोगुण से अग्नि में दाहक शक्ति पैदा हुई।

अग्नि के सतोगुण से प्रकाश, रजोगुण से तेज और तमोगुण से जलाने का स्वभाव उत्पन्न हुआ।

अग्नितत्व की दो तरह की अवस्था होती हैं:—पहिली, अग्नि के परमाणु का विच्छिन्न होकर वायु में मिलना, अग्नि की अरूपा अवस्था है। उसको अग्नि का बुझाना भी कहते हैं। अग्नि की उस अवस्था में रूप नहीं होता। वह वायु में मिलने से वायु की तरह अरूपा होती है।

अग्नि तत्व के उत्पन्न होने से प्रथम वायु में उसी अरूपा अग्नि का सञ्चार उत्पन्न होता है। आकाश में वायु की सीमा तक उसका विस्तार है। वायु अपने बल के प्रभाव से उसको आकाश में सर्वत्र फैलाने और घुमाने लगा। वायु की तरङ्गों का परस्पर मन्थन व संघर्षण होने से अग्नि के परमाणु एकत्रित होकर अग्नि में रूप उत्पन्न हो गया। वह अग्नि की दूसरी अवस्था है।

अग्नि तत्व की जिस अवस्था में रूप उत्पन्न हुआ, उसके अणुओं का परस्पर योग होने से आकाश में अनन्त छोटे २ अग्नि के गोले बने। उनमें बहुत से गोले एकत्रित होकर अग्नि के बड़े २ पिण्ड बन गये। इसी तरह आकाश में अग्नि के असंख्य बड़े बड़े पिण्ड बने। उनमें सब पिण्ड एक से नहीं बने, कोई बड़े से बड़े, कोई छोटे और कोई छोटों से बड़े उत्पन्न हुये।

जो जितने बड़े अग्नि के गोले बने, वे उतने ही बड़े ब्रह्माण्ड

व पिण्डों, और जो जितने छोटे अग्नि के गोले बने, वे उतने ही छोटे ब्रह्माण्ड व पिण्डों के सूर्य बने। इसी तरह छोटे बड़े ब्रह्माण्डों के असंख्य छोटे बड़े अग्नि के गोले बन कर सूर्य हुए। सब सूर्य अपने अपने पिण्ड व ब्रह्माण्डों में अपना तेज और प्रकाश डालने लगे। इसी तरह आकाश में अनन्त सूर्यों की उत्पत्ति हुई।

हमारे ब्रह्माण्ड अथवा भूमण्डल का सूर्य अपने अत्यन्त तेज और बल के प्रभाव से अपने स्थान में बड़ी तेजी से घूमता है। तेज घूमने के कारण वह अपने समस्त ब्रह्माण्ड और हमारे भूमण्डल में सुगमता से तेज और प्रकाश डाल सकता है।

हम पृथ्वी से सूर्य को जितना छोटा देखते हैं, वह उतना छोटा नहीं है। उसका विस्तार हजारों योजन है। वह पृथ्वी से हजारों योजन दूर है, इसलिये वह पृथ्वी से छोटा दिखाई देता है। वह विस्तार में पृथ्वी से कहीं गुना बड़ा है। उसका जितना तेज और प्रकाश हमारी पृथ्वी की दूरी तक पहुंचता है, उतना ही दूर तक उसके चारों ओर के पिण्डों में पहुंचता है।

सूर्य अपने सब ओर के पिण्डों में जहां तक प्रकाश और तेज डालता है, वह हमारा एक ब्रह्माण्ड है। सूर्य प्रतिदिन अपने तेज और प्रकाश को अपने ब्रह्माण्ड के पिण्डों में डालता है और उनसे फिर तेज व प्रकाश के अधिकांश भाग को अपने में खींच लेता है। इसलिये चिरकाल तक सूर्य के मान में अन्तर नहीं आता और न प्रतिदिन उसके तेज प्रकाश में न्यूनाधिकता मालूम

होती है। यदि सूर्य की गति इस तरह न होती तो वह अग्नि की तरह थोड़े ही समय में बुझकर और विच्छिन्न होकर वायु में मिल जाता। सूर्यों के बनने के पश्चात् वायु में जितना शेष अरूप अग्नि रहा, उसका अधिकांश भाग जल और पृथ्वी में सम्मिलित हुआ।

जल में मिला हुआ अग्नि जल की द्रव्यावस्था बनाता है। जल से भाप पैदा करता है, और जल में रस उत्पन्न करता है। जल में अधिक अग्नि के मिलने से जल भाप बन कर मेघ बनते हैं, उससे न्यून अग्नि के मिलने से जल की द्रव्यावस्था बनकर उसमें रस उत्पन्न होता है। और उससे न्यून अग्नि के मिलने से जल जमकर हिम बनता है।

जल में अग्नि तत्व सम्मिलित न होता तो न जल की द्रव्यावस्था बन सकती, न जल में रस उत्पन्न होता, और न जल से भाप बनकर मेघ बन सकते।

पृथ्वी में मिला हुआ अग्नि से पृथ्वी की उर्वरा शक्ति, पृथ्वी के गर्भ की अग्नि, और मिट्टी पत्थर धातु आदि पृथ्वी के प्रत्येक अवयवों में मिला हुआ अग्नि बनता है।

जल और पृथ्वी में अग्नि के सम्मिलित होने से उसका नितान्त अभाव नहीं हो जाता, फिर भी छुपे रूप से वायु में अरूपा अग्नि का सञ्चार रहता है, जिससे वायु की तरङ्गों के संघर्षण से आकाश में अग्नि के छोटे २ गोले उत्पन्न होकर बिजली उत्पन्न होती है।

बिजली के गोले भी एक से नहीं बनते। कोई बड़े और कोई छोटे बनते हैं। कभी कभी अग्नि का रूप ही रूप बनता है, गोले नहीं बनते। बिजली में छोटे बड़े गोले उत्पन्न होने का कारण वायु की तरङ्गों के संघर्षण पर निर्भर होता है।

जब बड़ी तेजी से वायु की तरङ्गों का संघर्षण होता है, तब बिजली के बड़े गोले उत्पन्न होकर पृथ्वी की ओर गिरते हैं। और पृथ्वी में गिरते ही उनकी गति विच्छिन्न होकर वायु में मिल जाते हैं।

वायु की तरङ्गों के मध्यम संघर्षण से बिजली के छोटे छोटे गोले उत्पन्न होते हैं। वे आकाश से पृथ्वी तक नहीं पहुंच सकने। उनकी गति बीच ही में विच्छिन्न होकर वायु में मिलने से अरूपा हो जाते हैं। वायु की तरङ्गों के सामान्य संघर्षण से आकाश में केवल बिजली का रूप ही रूप प्रकट होता है, उससे गोले नहीं बनते। केवल शीघ्र अग्नि का रूप उत्पन्न होता है और शीघ्र वायु में लोप हो जाता है।

इसी तरह जल और पृथ्वी तत्व के अवयवों के संघर्षण से उनमें सम्मिलित अरूपा अग्नि के परमाणु संयुक्त होने से उन में रूप उत्पन्न होता है। जो अरूपा अग्नि वायु, जल, और पृथ्वी में सम्मिलित रहती है, उसका एक अंश समस्त प्राणियों के शरीर-अवयवों में छुपे रूप से होता है। वही अरूप अग्नि शरीर-अग्नि तत्व है।

अग्नितत्व के सतोगुण से प्राणियों के नेत्रों में प्रकाश, रजोगुण से शरीर में जठराग्नि, और तमोगुण से क्रोध उत्पन्न होता है,

रूप अग्नि में उत्पन्न हुआ। इसलिये अग्नि, जल, पृथ्वी और इन तत्वों से बने हुये स्थूल भूतों में रूप अग्नितत्व से उत्पन्न होता है। जहां अग्नि, जल, और पृथ्वी तत्व होते हैं, वहां अवश्य आकाश और वायु तत्व रहते हैं। इसलिये स्थूल भूतों को पाञ्चभौतिक स्थूलभूत कहते हैं। किन्तु आकाश और वायु में रूप नहीं होता, वे अरूप हैं। रूप केवल अग्नि, जल, पृथ्वी में होता है।

अग्नि तत्व के सतोगुण से प्राणियों के नेत्रों में जो प्रकाश उत्पन्न होता है, वह केवल रूप का बोध कर सकता है। अथवा नेत्र-अग्नि, जल, पृथ्वी, और इन तत्वों से बने हुये स्थूलभूत और वस्तुओं को देख सकते हैं, क्यों कि नेत्र अग्नितत्व के सतोगुण से बनते हैं। और रूप अग्नितत्व में उत्पन्न होता है, इसलिये नेत्र रूप के अतिरिक्त अरूप सूक्ष्म शक्तियों को नहीं देख सकते। जैसे, क्रमशः अरूपा सूक्ष्म शक्तियां:—वायु, आकाश, स्वर्गलोक, पितृलोक सूक्ष्म भूत जो स्वर्गलोक पितृलोक में रहते हैं, इन्द्र, शक्ति, शिव, काल, सावित्री, ब्रह्मा, लक्ष्मी, विष्णु, प्रकृति और चैतन्य, इन का बोध नेत्रों के प्रकाश से नहीं होसकता। उन का बोध दिव्य योग द्वारा बुद्धि के दिव्य नेत्रों से हो सकता है। बुद्धि का प्रकाश ही बुद्धि के दिव्य नेत्र हैं।

वायु और आकाश तत्व से बने हुये सूक्ष्म प्राणी भी नेत्रों से नहीं दिखाई देते। इसलिये नेत्रों की शक्ति से परे वायु और

आकाश से भी सूक्ष्म जो दिव्य अवस्थायें हैं, वे नेत्रों से कैसे दिखाई दे सकते हैं। उन का अनुभव केवल प्रकाशमय शुद्ध बुद्धि से हो सकता है।

चैतन्य निर्विकार है। उस का सतोगुण-विष्णु है। प्रकृति की जागृति अवस्था लक्ष्मी है। उस का गुण तमोगुण है। महारचनात्मक ब्रह्मा है। उस का गुण रजोगुण है। उस के रजोगुण में सतोगुण और तमोगुण का योग बराबर होता है। महारचना सावित्री है। उस का गुण रजोगुण है। उस के रजोगुण में तमोगुण ब्रह्मा के तमोगुण से अधिक होता है। महाकाल परिवर्तन है। उस का गुण रजोगुण है। उस के रजोगुण में तमोगुण सावित्री के तमोगुण से अधिक होता है।

महाअवधि अवस्था है। उस का गुण रजोगुण है। उस के रजोगुण में तमोगुण काल के तमोगुण से अधिक होता है। महाकर्म इन्द्र है। उस का गुण रजोगुण है। उस के रजोगुण में तमोगुण अवधि के तमोगुण से अधिक होता है।

इन सूक्ष्म दिव्य तत्वों से बने हुये दिव्य सूक्ष्म भूत होते हैं। उन को धारण करने वाले स्वर्ग और पितृलोक भी सूक्ष्म होते हैं। आकाश और वायु में इन से अधिक तमोगुण होता है। उन में भी रूप नहीं होता, रूप अग्नि में उत्पन्न होता है।

विष्णु में चैतन्य शक्ति, लक्ष्मी में जागृति शक्ति, ब्रह्मा में रचनात्मक शक्ति, सावित्री में रचना शक्ति, काल में परिवर्तन

शक्ति, अवधि में अवस्था नियत शक्ति, इन्द्र में बन्धन-शक्ति, आकाश में धारण शक्ति और शब्द गुण, वायु में स्पर्श शोषण और बहना, अग्नि में रूप, प्रकाश, तेज और जलाना। इन सब में ये अपने अपने गुण हैं। इसलिये वायु से परे क्रमशः महाविष्णु अवस्था तक को न अग्नि का सतोगुण नेत्रों का प्रकाश देख सकता है, न वे अग्नि से तेजित व प्रकाशित हो सकते हैं, और न उन को अग्नि जला सकता है। वे सब अग्नि से परे की दिव्य अवस्थायें हैं। इसलिये उन पर अग्नि का कुछ अधिकार नहीं होसकता।

सूर्य्यों का अग्नि अपने अपने ब्रह्माण्ड के पिण्डों में तेज और प्रकाश डालता है, और पिण्डों को आकाश में उन की सीमा से बाहर नहीं होने देता। पिण्डों की सीमाबद्ध शक्तियों को आकर्षण शक्तियां कहते हैं। यदि सूर्य्य अपने अपने ब्रह्माण्ड के पिण्डों को आकर्षित न किये होते तो आकाश में वे अपनी सीमा से बाहर कहां के कहां चले जाते और परस्पर टकराने से विनाश हो जाते। सूर्य्यों के आकर्षण से आकाश में पिण्डों का कितना अच्छा प्रबन्ध है, न तो वे परस्पर टकरा सकते हैं और न अपनी सीमा से बाहर होसकते हैं।

वायु के अपनी सीमा से ज्यादा बहने पर बिजली की अग्नि उस की तरङ्गों की गति को विच्छिन्न करता है, जिस से वायु की गति अपनी सीमा से ज्यादा बहने से रुक जाती है। यदि बिजली का अग्नि वायु की तरङ्गों को विच्छिन्न कर उस की बहने की गति न रोक लेता तो वह अपनी

सीमा से अधिक बढ़ने पर पृथ्वी के तमाम वृक्ष, जीवजन्तु और पर्वतों को उड़ाकर आकाश में ले जाता ।

जल में मिला हुआ अग्नि जल का रूप उत्पन्न करता है। जल को उस की सीमा से अधिक बढ़ने पर भाप बनाता है, जिससे मेघ बनते हैं। यदि जल में मिला हुआ अग्नि जल से भाप न बनाता तो समुद्र के जल से पृथ्वी जलाकार हो जाती। पृथ्वी के गर्भ की अग्नि समुद्र को अपनी सीमा से ज्यादा नहीं बढ़ने देता। पृथ्वी के अन्दर अनेक पैदा होने वाले जहरीले पदार्थों को भस्म करता है, और पृथ्वी में बीजों को पैदा करने वाली उर्वरा शक्ति को पैदा करता है। पृथ्वी के परमाणु को संघटित रखता है और पृथ्वी का रूप उत्पन्न करता है।

प्राणियों के शरीर में मिला हुआ अग्नि शरीर में अधिक जल, पृथ्वी तत्व के बढ़ने पर उन को भस्म कर रस रुधिर बनाता है। शरीर का रूप उत्पन्न करता है। शरीर में उत्पन्न होने वाले अनेक जहरों को भस्म करता है। नेत्रों में प्रकाश उत्पन्न करता है। शरीर रक्षा के लिये क्रोध उत्पन्न करता है और जठराग्नि पैदा करता है। विश्व के अन्तर्गत अग्नितत्व कितना बड़ा कार्य कर रहा है।



अध्याय १३



महाजल ।



वायु और अग्नि व सूर्य्यादि पिण्डों के संयोग से जल उत्पन्न हुआ। वायु बलवान् है। वह अपने स्वभाव से प्रत्येक पदार्थों का स्पर्श कर शोषता व सुखाता है। अग्नि व सूर्यादि पिण्ड तेजोमय हैं। वे अपने तेज के प्रभाव से आकाश व वायुमण्डल में प्रकाश व तेज डाल रहे हैं।

सुखाने और तेज के संयोग से आकाश में भाप उत्पन्न हुई। भाप के समूह से मेघ बने। मेघ-कणों के परस्पर मिलने से जल बना। बहुत से जल के आपस में मिलने पर मङ्गल आदि जल के अनेक पिण्ड बने।

सूर्य्यों के तेज व प्रकाश से जल के पिण्ड भी आकाश में चमकने लगे। जिस तरह किसी तालाब में सूर्य्य का तेज व प्रकाश पड़ने से उस के जल में सूर्य्य का प्रतिविम्ब चमकता है, उसी तरह आकाश में सूर्य्यों के प्रकाश से जल के पिण्ड तारा रूप में चमकते हैं।

जल से प्रथम भाप उत्पन्न हुई। वह वायु और अग्नि के

संयोग से बनती है। वायु ने भाप को आकाश में सर्वत्र फैला दिया। वह वायु की सीमा तक फैल गई। वायु की तरङ्गों के बहने के कारण भाप के परमाणुओं का सँयोग होने लगा। वे परस्पर मिलने से मेघों के अणु बन गये। फिर वायु की तरंगों के संघर्षण से मेघों के अणु संयुक्त होकर समस्त आकाश व वायुमण्डल में मेघों के झुण्ड बन गये। फिर वे वायु की तरङ्गों के संघर्षण से जल के अणु बन गये और उन में रस उत्पन्न हो गया।

जल के अणु वायु की तरङ्गों के सँघर्षण से आपस में मिल गये। उन से जल के पिण्ड उत्पन्न हुये। इस तरह समस्त आकाश में असंख्य जल के पिण्ड बने। उन में सब पिण्ड एक से नहीं बने। कोई छोटे और कोई बड़े उत्पन्न हुये। वे सब आकाश में सूर्य्यों के आकर्षण से अपने अपने नियत स्थानों में घूमने लगे। सूर्य्यों के तेज और प्रकाश से सब पिण्ड आकाश में सूर्य्यों की तरह चमकने लगे।

जिन को हम पृथ्वी से तारा रूप में देखते हैं, वे सब अग्नि के पिण्ड नहीं है। उन में बहुत से जल के पिण्ड हैं, वे सूर्य्यों के तेज व प्रकाश से आकाश में चमकते हुये दिखाई देते हैं। जिन तारों को हम पृथ्वी से छोटे छोटे देखते हैं, वे उतने छोटे नहीं हैं, वे बड़े बड़े पिण्ड हैं। उन में बहुत से अग्नि के पिण्ड हैं और बहुत से जल के पिण्ड हैं।

जल के पिण्ड बनने के पश्चात् वायु मण्डल में जितनी शेष भाप रही, उससे मेघ बने। वायु की तरङ्गों की टकरों से उन का

जल छोटी छोटी बून्दें बन कर बारिष पैदा हुई। बारिष की बून्दों का स्थूल रूप धारण करने से वे आकाश में न ठहर सकीं और आकाश से स्थूल पृथ्वी में बरसने लगीं।

बारिष का जल पृथ्वी पर पड़ने से उस के कुछ अंश को पृथ्वी शोष कर वनस्पतियों के अवयवों में पहुंचाती है, जिससे उन में रस बनते हैं। पृथ्वी के उस शोषे हुये जल का कुछ अंश पृथ्वी के अन्दर समाता है। पृथ्वी के अन्दर उस जल के परमाणु का सँयोग होने से वह धारारूप में प्रवाहित होकर पृथ्वी के अन्दर से बाहर निकल कर नदियों के रूप में बहता है।

मेघों का शेष जल जो पृथ्वी की ऊपरी सतह में बह जाता है, उस के परमाणु भी सँयुक्त होकर धारा व नदियों के रूप में बहते हैं। मेघों के बरसने के समय पृथ्वी की ऊपरी सतह के जल की बुन्दों का सँयोग होकर उन में बहने की शक्ति उत्पन्न होती है और अधिक जल के योग से जल की धारा बनती हैं, बहुत सी धाराओं के योग से नदियां बन जाती हैं।

मेघों का जो जल पृथिवी के अन्दर समाता है, वह जल भी ठीक उसी तरह संयुक्त होकर उसमें बहने की शक्ति उत्पन्न होती है। बहुत से जल का संयोग होकर, वह धारा और नदियों के रूप में प्रवाहित होता है। अन्तर सिर्फ इतना है कि पृथिवी की ऊपरी सतह के पानी को वायु शीघ्र शोष कर सुखा देता है, और पृथिवी के अन्दर का पानी इतना शीघ्र नहीं सूखता।

पृथ्वी के अन्दर जहां ऐसी मिट्टी है, जिसमें वायु असर

नहीं कर सकता, उन हिस्सों का जल वायु नहीं शोष सकता या बहुत कम शोषता है । इस लिये पृथ्वी के अन्दर के उन हिस्सों का पानी नहीं सूख सकता । वहां बराबर जल की धारा प्रवाहित बनी रहती हैं ।

पृथिवी के जिन हिस्सों में वायु घुस कर अन्दर का पानी शोष लेता है, उन हिस्सों का पानी सूख जाता है, इसलिये पृथिवी के उन हिस्सों में जल की धारा बराबर प्रवाहित नहीं रह सकती । पृथिवी के अन्दर से जल की धारा व नदियों के जल को प्रवाहित करने वाले वायु और पृथिवी का आकर्षण होते हैं । धारा और नदियों के जल की प्रवाहित गति केवल वायु और पृथिवी के आकर्षण से होती है । जल में मिले हुए वायु के कारण जल की प्रवाहित गति बनती है, और जल में मिले हुए वायु के अतिरिक्त बाहरी वायु-मण्डल जल को शोषकर भाप बनाता है ।

धारा, नदियों और मेघों का जल बहकर कहां जाता है? वह अपने बड़े तत्व में जाकर मिल जाता है । हर एक तत्व अपने २ बड़े तत्व में जाकर ठहरते हैं । जैसे मिट्टी का ढेला आकाश में फैंकने से वह आकाश में नहीं ठहरता, जल में फैंकने से जल में नहीं ठहरता, अग्नि में फैंकने से अग्नि में नहीं ठहरता केवल अपने बड़े तत्व पृथ्वी में आकर ठहरता है । जिस तरह अग्नि बुझकर अग्नि महातत्व में जाकर ठहरती है, वायु, वायु महातत्व में ठहरता है, उसी तरह धारा और नदियों का जल

वहकर अपने बड़े तत्व समुद्र में जाकर ठहरता है। वहां जल की वहने की गति रुक जाती है।

जिस तरह धारा और नदियों का जल प्रवाहित होकर पृथ्वी में घूमता है, यदि उसी तरह समुद्र का जल प्रवाहित होकर पृथिवी में घूमता तो पृथिवी समुद्र के जल से जलाकार हो जाती और पृथिवी में जलचर जीवों के सिवाय स्थलचर कोई जीव न रह सकते। जब जल का कमती हिस्सा धारा और नदियों के रूप में होता है, तब वह अपने मार्ग में वहकर पृथिवी में घूमता है। और जब जल का बहुत बड़ा हिस्सा समुद्र के रूप में संयुक्त होता है, तब स्थिर होकर उसको बहने की गति रुक जाती है। एवं प्रकृति का क्या ही अच्छा प्रबन्ध है।

इसका कारण यह है कि धारा और नदियों का जल कमती होने से उनमें पृथिवी का कम आकर्षण पड़ता है, इसलिये धारा और नदियों के जल में मिला हुआ वायु जल को पृथिवी की ढलान की ओर को प्रवाहित करता रहता है अथवा धकेलता है।

जल की प्रवाहित गति दो कारणों से होती है:- एक तो जलमें मिले हुए वायु से जल की प्रवाहित गति होती है, और दूसरा जल को पृथिवी का आकर्षण अपनी नीचे की ओर खींचता है। यही कारण है कि जहां पृथिवी का बहुत ढलुवां हिस्सा होता है, वहां जल तीव्र गति से बहता है, क्यों कि वहां पृथिवी का आकर्षण उस जल को नीचे की ओर शीघ्रता से खींचता है।

और पृथिवी जहां कम ढलुवां होती है अथवा समभूमि होती है, वहां के जल को पृथिवी का आकर्षण रोकता है। किन्तु जल

का कमती हिस्सा होने से उसमें पृथिवी का कम आकर्षण पड़ता है, जिस से जल में मिला हुआ वायु उसको प्रवाहित करता रहता है। पृथिवी के आकर्षण से ही जल पृथिवी की ढलुवां ओर बहता है। वह पृथिवी में ऊपर की ओर नहीं बह सकता, क्योंकि पृथिवी का आकर्षण प्रत्येक वस्तु को अपनी नीचे की ओर खींचता है।

तालाब और झीलों के जल पर धारा और नदियों के जल से पृथिवी का अधिक आकर्षण पड़ता है, इसलिये उनकी बहने की गति रुक जाती है। किन्तु उनका जल समुद्र के जल की तरह स्थिर नहीं होता। उनका जल धारा और नदियों के रूप में बहता रहता है। इसलिये तालाब और झीलों का जल ठहरा हुआ भी रहता है, और प्रवाहित भी होता रहता है।

समुद्र का जल इतना अधिक है कि पृथिवी की ऊपरी सतह के तीन हिस्सों में फैला हुआ है। इसलिये समुद्र के जल पर पृथिवी का तीन चौथाई आकर्षण पड़ता है। पृथिवी के उस भारी आकर्षण से समुद्र के जल की प्रवाहित गति बिलकुल रुक जाती है। इसलिये समुद्र का जल स्थिर हो जाता है।

समुद्र के जल की प्रवाहित गति का रुकना पृथिवी के आकर्षण पर निर्भर है। लेकिन फिर भी समुद्र के जल में मिला हुआ वायु उसके जल को प्रवाहित कर धकेलता रहता है, जिससे समुद्र में तुफान उठते हैं और समुद्र के जल की तरङ्गें उठती रहती हैं।

वायु और पृथिवी के आकर्षण के कारण समुद्र में ज्वारभाटे होते हैं। अमावास्या को चन्द्रमा कान्ति-हीन होने से पृथिवी का आकर्षण अधिक बढ़ जाता है। वह अधिक बढ़ने से समुद्र के जल को पृथ्वी की सतह की ओर खींचता है। इसलिये अमावास्या को समुद्र का जल पृथिवी के नीची सतह की ओर सिकुड़ जाता है।

पूर्णमासी को चन्द्रमा पूर्णकला युक्त होता है। उस दिन चन्द्रमा की कान्ति को पृथिवी का आकर्षण अपने वायुमण्डल की ओर खींचता है। इसलिये चन्द्रमा की आभा और पृथिवी के आकर्षण के संयोग से उस दिन पृथिवी के ऊपर चन्द्रमा का पूर्ण प्रकाश उत्पन्न होता है।

पूर्णमासी को चन्द्रमा का आकर्षण महावायु-मण्डल की सहायता से पृथिवी पर अधिक पड़ता है, जिससे समुद्र के जल में मिले हुए वायु को अधिक बल प्राप्त होता है और वह उसको वायु मण्डल की ओर बढ़ाता है। इसलिये पूर्णमासी को समुद्र का जल अधिक बढ़ता है।

समुद्र का जल तिलभर न घटता और न बढ़ता है, केवल अमावास्या को समुद्र के जल में मिला हुआ वायु पृथिवी के आकर्षण से दब जाता है। इसलिये समुद्र का जल नीचे पृथिवी की सतह की ओर पड़ जाता है। और पूर्णमासी को समुद्र के जल में मिले हुए वायु को बल प्राप्त होने से समुद्र का जल ऊपर वायु मण्डल की ओर बढ़ता है। इस कारण समुद्र में ज्वारभाटे होते हैं।

समुद्र का जल खुश्की के अन्दर भी फैला हुआ रहता है। कुओं का पानी वही समुद्र का फैला हुआ जल है। यदि पृथिवी की ऊपरी सतह के जल को वायु शोषकर वायुमण्डल में न लेजाता तो समुद्र के जल से पृथिवी की ऊपरी सतह भी कुंओं की सतह की तरह बिलकुल गीली बनी होती।

समुद्र के नीचे पृथिवी का अधिक अग्नि तत्व रहता है, उसी से समुद्र के जल की द्रव्यावस्था बनी रहती है, नहीं तो समुद्र का जल पृथिवी के उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों और हिमालय पहाड़ के जल की तरह जमकर हिम बना रहता।

समुद्र के नीचे पृथिवी के गर्भ में जो बडवानल अग्नि होती है, वह समुद्र के जल की द्रव्य अवस्था बनाने के अतिरिक्त समुद्र के जल से भाप बनाकर मेघों को पैदा करता है। जब वायु जल को सूक्ष्मरूप से भाप द्वारा शोष कर आकाश में लेजाता है, तब वहां उस पर पृथिवी का आकर्षण पड़ता है। इसलिये आकाश से मेघों का जल अन्य पिण्डों में नहीं पहुंच सकता और पृथिवी का आकर्षण उसको पृथिवी के ऊपर खींच लेता है, जिससे मेघों का जल बारिष रूप में पृथिवी के ऊपर बरसता है।

नदियों, धाराओं और मेघों के जल पर पृथिवी का आकर्षण क्रमशः कम पड़ता है। मेघों के कण बहुत छोटे होने के कारण उन पर पृथिवी का बहुत कम आकर्षण पड़ता है। इसलिये मेघों के कणों को वायु पृथिवी से आकाश तक पहुंचाता है। और ज्यों ही उन के योग से आकाश में पानी की बूंदें बनती

हैं त्यों ही आकर्षण उनको आकाश से पृथिवी में खींच लेता है। आकाश में मेघों के समूह को पृथिवी का आकर्षण नीचे की ओर खींचे रहता है, इसलिये वे आकाश से अन्य पिण्डों में नहीं पहुंच सकते।

धारा और नदियों के जल को भी पृथिवी का आकर्षण पृथिवी की ओर खींचे हुए रहता है। किन्तु पृथिवी के सम न होने के कारण उनका जल पृथिवी की ढलुवां ओर रुड़कता रहता है। उनकी प्रवाहित गति रोकने के लिये उनके जल पर पृथिवी का अधिक आकर्षण नहीं पड़ता, क्योंकि वे जल के बहुत न्यून हिस्से हैं। समुद्र के जल का विस्तार बहुत बड़ा है, इसलिये उस पर पृथिवी का बहुत बड़ा आकर्षण पड़ता है, जिससे समुद्र की प्रवाहित गति बिलकुल रुक कर स्थिर हो जाती है।

पृथिवी के उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों और हिमालय पहाड़ का जल जम कर हिम बन जाता है, क्योंकि पृथिवी के उत्तरी दक्षिणी नोकों तक पृथिवी के गर्भ की गर्मी कम पहुंचती है और हिमालय पहाड़ पृथिवी की सतह से बहुत ऊंचा होने के कारण उसमें भी पृथिवी के गर्भ की गर्मी कम पहुंचती है, इस लिये उन स्थानों का जल जम कर हिम बन जाता है। वहां का वायुमण्डल भी ठण्डे स्थानों को स्पर्श कर ठण्डा बना रहता है, जिससे वहां के मेघों का जल जमकर वायुमण्डल ही से हिम बनकर बरसता है। जल में गर्मी की न्यूनता से उसके कण जमकर हिम बन जाता है। पाला भी इसी तरह बनता है।

जाड़ों में रात्रि को पृथिवी की ऊपरी सतह में गर्मी की न्यूनता होने से अधिक ठण्ढक हो जाती है। उस मौसिम में रात्रि को पृथिवी का वायुमण्डल पृथिवी को स्पर्श कर ठण्डा हो जाता है, इसलिये वायु में मिली हुई भाप जम कर पृथिवी में पड़ने से पाला बन जाता है। और पृथिवी में उस पाले को कुछ गर्मी मिलने से वह पिघल कर ओस बनता है।

दिन को सूर्य की गर्मी के कारण पाला और ओस सूख कर भाप द्वारा वायुमण्डल में मिल जाते हैं। लेकिन पृथिवी के उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों और हिमालय पहाड़ पर गर्मियों में भी ठण्ढक बनी रहती है, इसलिये वहां जल जम कर हमेशा हिम बना रहता है।

गर्मियों में सूर्य की गर्मी के कारण उन स्थानों का कुछ हिम पिघल कर धारा और नदियों के रूप में बहता है। उसी समय उन स्थानों में जल पृथिवी के अन्दर भी समाता है, जिससे उनमें नित्य जल की बहने वाली धारा और नदियों की प्रवाहित गति बनी रहती है। प्रायः हिम के स्थान बहुत बड़े पहाड़ों से बने रहते हैं।

उस प्रबन्धकर्त्ता परमात्मा ने जलचर जीवों के लिये समुद्र बनाये, और उनके सुख आनन्द के लिये समुद्र को स्थिर बनाया है। स्थलचर जीवधारियों के जल सम्बन्धी कार्यों के लिये जल की धारायें नदियां कुऐं, और बनस्पतियों के लिये मेघ बनाये हैं।

जलचर जीवों के सुख शान्ति के लिये समुद्र नित्य अपनी

एक मर्यादा पर स्थिर है। यदि समुद्र का जल कभी अधिक बढ़ जाता और कभी बिलकुल घट जाता तो जलचर जीवधारी नष्ट हो जाते और उनकी सुख शान्ति भी जाती रहती। जलचर जीवधारी अनन्त ऐसे हैं, जो एक पल भी विना जल के नहीं रह सकते, इसलिये समुद्र अगाध बनाये गये हैं, नदियों की तरह वे कभी नहीं घटते बढ़ते।

धारा और नदियों का पानी जिस तरह घटता और बढ़ता है, उस तरह बिलकुल सूख जाता तो स्थलचर जीवधारी जो समुद्र से बहुत दूर है, जल के विना मर जाते। इसलिये धारा और नदियों का पानी बराबर प्रवाहित कार्य में प्रवृत्त रहता है।

स्थलचर जीवधारियों को हर समय पानी की उतनी आवश्यकता नहीं होती जितनी जलचर जीवधारियों को होती है। उनको दिन भर में पांच या चार मर्तबे पानी पीने की आवश्यकता पड़ती है। वे धारा, नदियों और कुंओं में जाकर अपनी जल सम्बन्धी आवश्यकता पूरी कर लेते हैं। जब स्थलचर जीवधारियों को जल की अत्यन्त आवश्यकता होती है, तब वे धारा नदियों व कुंओं में जाकर अपना जल सम्बन्धी कार्य कर लेते हैं। इसलिये संसार-हित के लिये धारा, नदियों और कुंओं के जल की नित्य प्रवाहित गति बनी रहती है।

बनस्पतियों को भी हमारी तरह पानी की आवश्यकता होती है। लेकिन वे अचर हैं। वे मनुष्य, गाय, भैंस, चिड़ियों की तरह धारा, नदियों व कुंओं में जाकर जल नहीं ले सकते। इसलिये जल उनके हित के लिये मेघ बनता है। मेघ वर्षा द्वारा

वनस्पतियों को उनके स्थान में जल पहुंचाता है। अथवा वनस्पतियों के हित के लिये जल मेघ बनकर बरसता है।

हमारी तरह वनस्पतियों को हर समय जल की आवश्यकता नहीं होती। वे एक समय की बारिष से एक या दो माह तक अपना निर्वाह कर सकती हैं। बड़े २ वृक्ष अपनी जड़ों से पृथ्वी के अन्दर का पानी भी लेते हैं। इसलिये मेघों को वनस्पतियों के लिये नित्य बरसने की आवश्यकता नहीं होती। वे समय २ पर बरसते हैं। मेघों के बरसने से धारा और नदियों के पानी की कमी भी पूरी हो जाती है। छोटे २ जन्तु भाप से जल को ले सकते हैं। इसलिये जल नित्य संसार-हित के लिये समुद्र, भाप, मेघ, बारिष, धारा, नदियों, और कुंओं के चक्र में घूमता रहता है।

बेल वृक्षों के अवयवों में पृथ्वी से जो रस पहुंचता है, वह जल का अंश है। मनुष्य आदि समस्त प्राणियों के शरीर में जो रस रुधिर पसीना और मूत्र होता है, वे सब जल तत्व के अंश हैं। शरीर में मांस का गीलापन भी जल तत्व के अंश से बनता है। शरीर के अवयवों में सारा गीलापन जलतत्व से बनता है।

जिस तरह विश्व के अन्दर जल भ्रमण कर रहा है, उसी तरह हमारे शरीर-अवयवों में जल, रुधिर रस रूप में नाड़ियों द्वारा बराबर भ्रमण कर रहा है। उसकी गति शरीर में एक पल भी नहीं रुकती। जल के सतोगुण से जिह्वा में रस, रजोगुण से लिङ्ग, और तमोगुण से आलस्य उत्पन्न होता है।

जिस जल को मनुष्य, गाय, भैंस आदि प्राणी पीते हैं, उस के सतोगुण अंश से रस उत्पन्न होता है; रजोगुण से रुधिर; तमोगुण से मूत्र और पसीना उत्पन्न होते हैं। सृष्टि के समस्त रस जल के सतोगुण से उत्पन्न होते हैं। उस के रजोगुण से मेघ और तमोगुण से भाप बनती है।

आद्य सृष्टि में समुद्र के जल के सतोगुण से खारी और कड़ुवे रस, मेघों के जल के सतोगुण से मीठे और खट्टे रस, धारा और नदियों के जलके सतोगुण से तिक्त और चरपरे रस उत्पन्न हुये।

जल के सब अंशों के सतोगुण से उत्पन्न होने वाले छै रस प्रधान माने गये हैं। सृष्टि के शेष रस इन छै रसों के संयोग से उत्पन्न होते हैं। वनस्पतियों में जो अनेक रस उत्पन्न होते हैं, वे सब इन छै रसों के संयोग से उत्पन्न होते हैं, और सब जल के सतोगुण अंश से उत्पन्न होते हैं।



अध्याय १४



पृथ्वी ।

--:0:—

जिस पृथ्वी-पिण्ड पर हम रहते हैं, वह छोटे छोटे परमाणु के समूह से बनी है। वे परमाणु एक ही जाति के नहीं हैं, उन में से कुछ जल के परमाणु हैं, जिन के संयोग से समुद्र, व पृथ्वी के उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों व हिमालय पहाड़ का हिम बना है।

कुछ अग्नि के परमाणु हैं, जिन के संयोग से पृथ्वी के अन्दर की अग्नि उत्पन्न हुई। कुछ वायु के परमाणु हैं, जिन से पृथ्वी का वायुमण्डल बना। कुछ ठोस परमाणु हैं, जिन के संयोग से पृथ्वी का ठोस स्वरूप बना, जैसे मिट्टी पहाड़ आदि।

इन सब तत्वों के परमाणुओं के मेल से यह विस्तृत पृथ्वी बनी है। पृथ्वी बनने में इन सब तत्वों का सम्बन्ध इस तरह है:—पाञ्च हिस्से जल के, तीन हिस्से अग्नि के, उनचास हिस्से वायु के और १२ हिस्से खुशकी के हैं।

जल के तीन हिस्सों से समुद्र बने हैं। एक हिस्सा जल से पृथ्वी के उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों व हिमालय पहाड़ का हिम बना

है। एक हिस्सा जल नित्य पृथ्वी के वायुमण्डल में मिला हुआ रहता है।

अग्नि का एक हिस्सा पृथ्वी के गर्भ में है, जो कभी कभी ज्वालामुखी रूप में उमड़ता है। एक हिस्सा अग्नि छुपे रूप से मिट्टी पहाड़ों में है। और, एक हिस्सा जल के सब हिस्सों में सम्मिलित है।

वायु के पांच हिस्से जल में, तीन हिस्से अग्नि में, बारह हिस्से खुशकी में, और २९ हिस्से पृथ्वी के सब ओर बाहर फैले हुये हैं।

खुशकी का एक हिस्सा पृथ्वी की बाहरी सतह है, जिस में स्थलचर जीवधारी बसते हैं व वनस्पतियां उगती हैं। दस हिस्से खुशकी से जल थमा है। और एक हिस्सा खुशकी में अग्नि टिकी हुई है।

पृथ्वी-पिण्ड की ऊपरी सतह के चार हिस्से जल से आच्छादित हैं, तीन हिस्सों में समुद्र है, और एक हिस्से में पृथ्वी के उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों व हिमालय पहाड़ का हिम टिका है।

समुद्र का जल खुशकी के आधार पर है। पृथ्वी की ऊपरी सतह की तरह समुद्र के अन्दर भी सम भूमि व ऊंचे नीचे पहाड़ होते हैं। उन्हीं के आधार में समुद्र का जल थमा हुआ है। वह ठीक उसी तरह थमा हुआ है, जैसे तालाब का जल तालाब की भूमि से।

समुद्र का जल खुशकी में भी सम्मिलित रहता है। वह हर समय खुशकी को गीला बनाये रखता है। पृथ्वी की ऊपरी सतह का पानी वायुमण्डल शोष कर पृथ्वी से बाहर ले जाता है। इसलिये पृथ्वीकी ऊपरी सतह गीली नहीं होती, बाकी पृथ्वी के अन्दर गीलापन रहता है, अथवा पृथ्वी के अन्दर की खुशकी से जल मिला हुआ रहता है।

कुंओं का जल वही समुद्र का जल है। कुंओं का पानी प्रायः समुद्र के पानी की तरह खारा व कडुवा नहीं होता, इस लिये कि मिट्टी अपने अन्दर के पानी को शोध कर शुद्ध व स्वच्छ बना देती है।

पृथ्वी की ऊपरी सतह का पानी वायु और सूर्य का तेज न शोष लेता तो कुंओं की सतह की तरह पृथ्वी की ऊपरी सतह भी बिलकुल गीली होती।

नदियों का जल पृथिवी के अन्दर का जल है। पृथ्वी की ऊपरी सतह का पानी वायु शोष कर भाप द्वारा वायुमण्डल में ले जाता है, भाप के समूह से बादल बनते हैं, बादलों के परमाणु का परस्पर मिलने से पानी की बूंदें बनती हैं और वे बारिष रूप में पृथिवी पर बरसती हैं।

पृथिवी आरम्भ काल में बहुत गर्म जल का पिण्ड थी, क्यों कि जल तेज से उत्पन्न होता है। पृथिवी के आद्यकाल में जब पृथिवी जलाकार थी तब वायु के प्रवल धक्कों से उसकी तरङ्गें पहाड़ों की तरह ऊंची और नीची उठती थीं। इस क्रम से

अनन्त काल तक पृथिवी उष्ण जलाकार रही। उसके पश्चात् पृथिवी की ऊपरी सतह की गर्मी वायु के प्रवल धक्कों से धीरे धीरे खारिज होकर शिथिल होने लगी, जिससे ऊपरी सतह का जल, गर्म जल की अपेक्षा कुछ गाढ़ा बन गया। इस क्रम से असंख्य काल में चन्द्रमा के शीत के कारण जल की तरङ्गों की ऊंची, नीची और सम सतहें जम कर हिम बन गया, जैसे शीतलता पाकर दूध जम कर दही बन जाता है।

उन तरङ्गों में सब से ऊंची चोटी जो जमकर हिमका पहाड़ बना, वह हिमालय पहाड़ है। इसी तरह पृथिवी की ऊपरी सतह के कई भागों में जल जमकर हिम बन गया और वह जलका ठोस रूप उत्पन्न हो गया। हिम के ठोस परमाणु का बहुत काल पश्चात् रूपान्तर होकर पहाड़ और मिट्टी के अणु उत्पन्न हो गये। इस क्रम से पृथ्वी का ठोस स्वरूप पैदा हुआ।

हिमालय पहाड़ जो वर्तमान समुद्र की सतह से बहुत ऊंचा है, वहां सृष्टि के आरम्भ में समुद्र था। उसके जल को वायु और सूर्य के तेज ने शोषकर वर्तमान समुद्र की सतह तक पहुंचा दिया।

सूर्य की गर्मी के अतिरिक्त पृथिवी के गर्भ में भी अग्नि है। ज्वालामुखी पहाड़ उसी अग्नि से उभड़ते हैं। उस अग्नि से पृथ्वी को बड़ा भारी लाभ होता है। यदि पृथ्वी के अन्दर अग्नि न होती तो समुद्र का जल और नदियों का जल हिमालय पहाड़ के जल की तरह जम कर हिम बन जाता और तमाम जीवजन्तु व बनस्पतियों का जल सम्बन्धी कार्य बन्द हो जाता।

समुद्र की द्रव्यावस्था, मेघों का बनना और नदियों का बहाव, जल के ये सब कार्य पृथिवी के अन्दर की अग्नि के कारण होते रहते हैं। पृथिवी के उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों और हिमालय पहाड़ में इस कारण पानी जम कर हिम बन जाता है कि पृथ्वी के गर्भ की गर्मी उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों तक कम पहुंचती है। इसलिये वहां का पानी जमकर हिम बन जाता है।

हिमालय पहाड़ पृथिवी की सतह से बहुत ऊंचा है। उसके अन्दर की गर्मी वहां तक अधिक नहीं पहुंच सकती, जिससे वहां सूर्य की पूर्ण गर्मी होने पर भी जल जमकर हिम बन जाता है। पृथिवी के हिमाच्छादित स्थानों का हिम बनने में उतना सूर्य की गर्मी पर निर्भर नहीं, जितना कि पृथिवी की गर्मी की न्यूनता पर निर्भर है।

समुद्र से मेघों के बनने में पृथिवी के अन्दर की गर्मी बड़ा कार्य करती है। जाड़ों में सूर्य की गर्मी कम पड़ने पर भी मेघ बन कर बरसते हैं। इसका यही कारण है कि पृथिवी के अन्दर की गर्मी समुद्र से मेघ बनाने का कार्य करती रहती है।

नदियों का बहाव भी पृथ्वी के अन्दर की गर्मी के कारण होता है। अगर पृथ्वी के अन्दर की गर्मी पानी को पिघला कर द्रव्य न बनाती तो गङ्गा आदि नदियां हिमालय से निकल कर समुद्र तक न पहुंच सकतीं। अथवा हिमालय पहाड़ के हिम की तरह एक ही स्थान में जम कर रह जातीं और अन्य स्थानों में जाने से नदियों का बहाव बन्द होजाता।

नदियों का बहाव, समुद्र की द्रव्यवास्था, मेघों का बनना, जल के ये कार्य पृथिवी के अन्दर की अग्नि से होते रहते हैं।

अग्नि का एक भाग मिट्टी, पहाड़, सोना, चांदी तांबा, लोहा आदि ठोस पदार्थों के परमाणु से मिला हुआ रहता है। मिट्टी में मिला हुआ अग्नि वनस्पतियों को पैदा करने वाली उर्वरा शक्ति पैदा करता है, पेड़ पौदों को पुष्ट करता है, उन में पत्ते, पुष्प फल आदियों का पुष्ट होना उसी से होता है।

यदि मिट्टी के परमाणुओं से अग्नि का संयोग न होता तो पृथिवी में कुछ भी पैदा न होता, न पृथिवी मेघों के जल को अपनी ओर खींच सकती, और न वनस्पतियां जीवित रह सकतीं।

पृथिवी के उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों व हिमालय पहाड़ में इस कारण कुछ पैदा नहीं होता कि वहां की मिट्टी के परमाणु में अग्नि की न्यूनता होती है। मिट्टी में मिले हुए अग्नि के कारण पहाड़, सोना, चांदी, तांवा, लोहा आदि धातु बनते हैं।

अधिक गर्मी के कारण मिट्टी के परमाणुओं के विशेष परस्पर मिलने से पहाड़ बनते हैं। जैसे गीली मिट्टी को अग्नि के अन्दर रखने से ईंटें बनती हैं, उसी तरह पृथिवी के गीले भाग को दबाव और विशेष गर्मी के मिलने से कड़े पहाड़ बनते हैं।

पृथिवी के विशेष चिकने पीले रङ्ग के गीले हिस्से को विशेष गर्मी और दबाव मिलने से सोना बनता है। पृथ्वी के सुफेद रङ्ग

वाले चिकने गीले हिस्से को विशेष गर्मी और दबाव मिलने से चाँदी बनती है। पृथिवी के लाल रङ्ग वाले चिकने गीले हिस्से को विशेष गर्मी व दबाव मिलने से तांबा बनता है। पृथिवी के काले रङ्ग वाले चिकने गीले हिस्से को विशेष गर्मी और दबाव मिलने से लोहा बनता है। इसी तरह सब धातुओं के बनने में पृथिवी का चिकनापन, गीलापन, गर्मी, दबाव आदि विषयों में अलग २ अन्तर होता है।

पहाड़ों व धातुओं की गर्मी उनके परमाणु को सङ्गठित करती रहती है, और उनके परमाणु को अलग २ नहीं बिखरने देती। जब धातु और पहाड़ अग्नि में रख कर इतने तपाये जाते हैं कि उनके अन्दर की गर्मी बाहर हो जाती है, तब उनके परमाणु अलग २ होते हैं। वे पिघल कर अथवा राख द्वारा अलग २ हो जाते हैं।

पहाड़ों की तरह सोना, चांदी, लोहा, तांबा जल्दी जलकर चूना व राख नहीं बन जाते। इसको कारण यह है कि पहाड़ों की अपेक्षा सोना, चांदी, तांबा, लोहा आदि धातुओं में विशेष चिकनापन होता है और पहाड़ों में कम होता है।

अग्नि पहाड़ों को धातुओं की अपेक्षा जल्दी जलाकर राख द्वारा उनके परमाणु को अलग २ कर देता है। धातुओं को उनके चिकनेपन के कारण जल्दी जलाकर राख नहीं बना सकता। हां, अलबत्ता उन के चिकनेपन को अनरस करने वाली वस्तुओं के डालने से वे सहज में भस्म होसकते हैं।

प्रत्येक वस्तु के परमाणु अलग २ तभी हो सकते हैं, जब कि उनके अन्दर की गर्मी बाहर होती है। प्रत्येक वस्तु के अन्दर की गर्मी बाहर होने के दो कारण होते हैं:—कुछ पदार्थ ऐसे हैं जिनको पानी में डालने से उनके अन्दर की गर्मी बाहर हो जाती है। और कुछ पदार्थ ऐसे हैं जिनकी गर्मी को पानी बाहर नहीं कर सकता, उन की गर्मी को अग्नि बाहर कर सकता है।

पृथ्वी के अन्दर की गर्मी, मिट्टी पहाड़ों में मिला हुआ अग्नि, जलमें सम्मिलित अग्नि, सब सङ्गठित हो कर पृथ्वी के एक बड़े भारी कार्य को किये हुये हैं।

वे पृथ्वी के अलग २ परमाणु को एकत्रित कर उस का ठोस रूप बनाते हैं, और ठीक उस तरह बनाते हैं जैसे घड़े के अलग २ परमाणु एकत्रित हो कर घड़े का ठोस रूप बनाते हैं।

घड़े के अलग २ परमाणु भी अग्नि से ही एकत्रित होते हैं। घड़े के आरम्भ काल में उस के गीलेपन में जो जल तत्व होता है, घड़े की परिपक्व अवस्था में उस का अभाव हो जाता है। इसलिये घड़े के परमाणु का सङ्गठन अग्नितत्व से होता है। सङ्गठन में जल तत्व केवल सहायक होता है।

उसी तरह पृथ्वी के अन्दर की अग्नि पृथ्वी के अलग २ परमाणु को सङ्गठित कर उस का ठोस रूप बनाता है। अग्नि की सहायता से पृथ्वी वायु, मेघ, समुद्र को अपनी ओर आकर्षित किये हुये रहती है, जिस से पृथिवी की समस्त प्राप्य वस्तुयें पृथिवी पर टिकी हुई हैं।

यदि पृथिवी के अन्दर गर्मी न होती तो उस के परमाणु अलग २ हो कर छिन्न भिन्न हो जाती। महाप्रलय में सूर्य्य के अधिक तपने से उस के अन्दर की गर्मी जब बाहर हो जाती है, तब वह भस्म होकर उसके परमाणु अलग २ हो जाते हैं और वे वायुमण्डल में उड़ २ कर पृथिवी छिन्न भिन्न हो जाती है। इसलिये पृथ्वी में मिला हुआ अग्नि उस के लिये कितना लाभकारी है।

पृथ्वी के अन्दर का अग्नि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति पैदा करता है, जिसके कारण पृथ्वी अपनी समस्त प्राप्य वस्तुओं को अपनी ओर खींचे हुये रहती है।

पृथ्वी के संयोग में वायु का जितना अधिक भाग सम्मिलित है, उतना ही उस को अधिक वायु की आवश्यकता है। जल में वायु के जो पांच हिस्से सम्मिलित होते हैं, उन से जलचर जीव सांस लेते हैं, तैरते हैं। और वही जल के परमाणु की जुदाई करते हैं, जिस से उसमें बहने की शक्ति बनी रहती है।

यदि समुद्र के जल में मिला हुआ वायु उस के अणुओं को पिघला कर द्रव्य न बनाये होता तो जल के अणु आपस में इतने घनिष्ट मिल जाते कि समुद्र का जल पहाड़ों से भी कड़ा बना रहता। उस में न बहने की शक्ति रहती, न कोई जीव रह सकते और न कोई जीवजन्तु तैर सकते।

जलचर जीवधारियों का सांस लेना, तैरना, जलमें मिले हुये वायु के कारण होता है। पृथ्वी में समस्त नदियों के जल

की प्रवाहित गति उस में मिले हुये वायुके विशेष कारण से होती है। समुद्र व जल के सब भागों से भाप को पृथक् भी वही करता है, जिससे मेघ बनते हैं।

अग्नि में मिला हुआ वायु उस अग्नि को जाग्रत रखता है, उसको एक स्थान से दूसरे स्थान को बढ़ाकर व फैलाकर प्रवेश कराता है। यदि अग्नि में वायु का संयोग न होता तो अग्नि के जलाने व फैलाने के कार्य बन्द हो जाते। इसलिये अग्नि में मिला हुआ वायु अग्नि को जलाने फैलाने के कार्यों में जाग्रत रखता है।

बारह हिस्से वायु जो पृथिवी में मिले हुए हैं, वे पृथिवी के अणुओं की जुदाई करते हैं, तमाम बनस्पतियों के बीजों को उगाकर उनकी जड़ों को पृथिवी के अन्दर फैलाते हैं, और उन्हीं से तमाम बेल वृक्ष व पौदों की जड़ें पृथिवी से रस शोषकर उनके तमाम अङ्गों में पहुंचाते हैं।

पृथिवी के गर्भ में अग्नि को जाग्रत रखना, व मिट्टी पहाड़ों में जो छिपी हुई अग्नि है उसकी गति को जागृत रखना और पृथिवी की आवश्यकता से अधिक अग्नि व जल को पृथिवी से पृथक् करना, ये सब कार्य पृथिवी में मिले हुए वायु से होते हैं।

उनतीस हिस्से वायु जो पृथिवी के बाहर हैं वे जल और अग्नि के बढ़े हुए हिस्सों को शोषकर ऊपरी वायुमण्डल में ले जाते हैं, समुद्र के जल से भाप को शोष कर मेघों को बनाते हैं, मेघों की अलग २ बूंदें बनाकर बरसाते हैं, सूर्य चन्द्रमा

और तारों के प्रकाश व तेज को पृथिवी में पहुंचाते हैं, पृथिवी की आवश्यकता से अधिक गर्मी को पृथिवी से हटाते हैं, दीपक का प्रकाश गृह में फैलाते हैं, और अग्नि को जलाते व बुझाते हैं।

मनुष्य, हाथी, घोड़े, गाय, भैंस आदि समस्त पृथिवी के पिण्डजों का सांस लेना, स्पर्श करना, चलना, शब्द सुनना, गरुड़ हंस, कौवे आदि अण्डजों का उड़ना और वृक्षों का सांस लेना इत्यादि कार्य उस वायुमण्डल की सहायता से होते हैं।

मिट्टी पहाड़ आदि खुश्की के बारह हिस्से जिससे पृथिवी का ठास रूप बना है, वे पृथिवी के वायुमण्डल, अग्नि व जल के आधार हैं। यदि पृथिवी का ठास स्वरूप न होता तो तमाम समुद्र का वायु शोषकर मेघों की तरह वायुमण्डल में ले जाता। पृथिवी के ठास आधार में समुद्र व नदियों का जल, पृथिवी का वायुमण्डल, पृथिवी के अन्दर की अग्नि, सुरक्षित हैं।

स्थलचर, जलचर और नभचर जीवधारी व तमाम बनस्पत्तियां इसी ठास स्वरूप के आधार पर रहते हैं। पृथिवी में सम्मिलित वायु का आधार भी वही पृथिवी का ठास स्वरूप है। यदि पृथिवी का ठास स्वरूप न होता तो पृथिवी का वायुमण्डल आकाश-विलीन हो जाता और पृथिवी की समस्त प्राप्य वस्तुयें बिना आधार के नाश हो जातीं। पृथिवी का यह ठास स्वरूप (मिट्टी पहाड़ आदि) जल, वायु, अग्नि और पृथिवी के समस्त चराचर का आधार है।

जल, अग्नि, वायु, और ठास स्वरूप मिट्टी पहाड़ आदि के

संयोग से यह विस्तृत पृथिवी बनी है, जिस पर हम हैं और जिसमें सब स्थावर, जंगम व समस्त जड़ चेतन टिके हुए हैं।

पृथिवी बनी कहां है ? वह आकाश में बनी है। पृथिवी का आधार आकाश है। पृथिवी ठीक उसी तरह आकाश में अपनी चालों से घूम रही है, जिस तरह उड़ते हुए पतंग को हम आकाश में भ्रमण करते हुए देखते हैं। पतंग आकाश में पृथिवी की नियत चालों की तरह नहीं घूमता। पृथिवी दैनिक और वार्षिक दो नियत चालों में घूम रही है।

यदि हम पृथिवी से इतने बड़े होते कि जितने बड़े पतंग से हैं और पतंग की तरह इस पृथिवी को छोड़कर दूसरी पृथिवी में खड़े होते तो ठीक पतंग की तरह इस पृथिवी को भी आकाश में उसकी चालों से घूमते हुए देखते। लेकिन हम पृथिवी पर हैं और पृथिवी से बहुत छोटे हैं, इस लिए पृथिवी को आकाश में घूमते हुए नहीं देख सकते। पृथिवी के जिस हिस्से पर हम बसे हैं, उसके चारों ओर पृथिवी के अलावा हम क्या देखते हैं ? चारों ओर आकाश ही आकाश देखते हैं। इसी तरह पृथिवी के सब ओर आकाश के सिवाय कुछ नहीं है।

पृथिवी की ऊपरी सतह के तीन हिस्सों में समुद्र, एक हिस्से में हिम और एक हिस्सा खुश्की स्वतन्त्र है। आकाश में पृथिवी के घुमाव से उस पृथिवी का गोल आकार बन गया, किन्तु वायु और जल की तरंगों के संघर्षण से पहाड़ों की ऊंचाई, नदियों की गहराई, उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों की चपटाई, होने के कारण पृथिवी की वास्तविक शक्ल गोल कद्दू के आकार की है।

पृथिवी की उत्पत्ति के आरम्भ में प्रथम पृथिवी जलाकार थी। वायु और सूर्य के कारण उसके बाहरी आकार का जल सूख कर खुश्की का प्रथम भाग सुमेरु (हिमालय) पहाड़ उत्पन्न हुआ। फिर वायु के शोषण और सूर्य के तेज के योग से धीरे २ जल सूख कर हिमालय पहाड़ के पश्चात् समस्त खुश्की का भाग उत्पन्न हुआ।

वर्तमान समय में खुश्की का जितना हिस्सा पृथिवी में दिखाई देता है, वह यकायक उत्पन्न नहीं हुआ। जल क्रमशः सूखता गया और खुश्की का भाग उत्पन्न होता गया। पृथिवी की ऊपरी सतह में जितना शेष जल रहा उससे समुद्र बने हैं। महाप्रलय तक जल का वह समुद्री भाग भी सूखते २ विनाश हो जाता है। इस तरह पृथिवी बनी है।



अध्याय १५



सूर्य और पृथ्वी ।

—:o:—

सूर्य पृथिवी से पहिले उत्पन्न हुआ। वह आकाश में एक बहुत बड़ा अग्नि का गोला है। उसके समीप हजारों योजन तक अत्यन्त तेज के प्रभाव से कोई पिण्ड नहीं है। सूर्य पृथिवी से बहुत बड़ा है। आकाश में उसका विस्तार बहुत विस्तृत है।

सूर्य का तेज और प्रकाश जितनी दूरी तक हमारी पृथिवी में पहुंच रहा है, उतना ही दूर तक उसका तेज और प्रकाश सब ओर के पिण्डों में पहुंच रहा है। सूर्य से तपने वाले सब पिण्ड उस से समान दूरी पर नहीं हैं।

सूर्य अपने स्थान में बड़ी तेजी से घूम रहा है। उसकी शक्ल गेंद की तरह गोल है। तेज घूमने के कारण वह पृथिवी आदि अपने समीपी पिण्डों में तेज और प्रकाश बड़ी सुगमता से पहुंचा रहा है। सूर्य से प्रकाश और तेज पहुंचाने का कार्य पिण्डों में सूर्य और पिण्डों के मध्यस्थ वायुमण्डल से होता है।

सूर्य से ९८०००००० मील की दूरी पर पृथिवी उत्पन्न हुई। सूर्य की ओर से पृथिवी को सूर्य का प्रवल आकर्षण खींचता है और वायु की ओर से उसको वायु का प्रवल आकर्षण खींचता है। इन दोनों प्रबल शक्तियों के खिचाव के कारण पृथिवी अपने स्थान में सूर्य और वायु की ओर घूमने लगी। पृथिवी का जो भाग सूर्य के सन्मुख हुआ उसमें सूर्य का तेज और प्रकाश पहुंचने से दिन होने लगा, और पृथिवी का जो हिस्सा सूर्य के विमुख रहा उसमें अतेज और अप्रकाश होने से अन्धकार व रात्रि होने लगी।

इसी तरह पृथिवी बराबर दिन रात के चक्कर में घूमने लगी और उसमें दिन रात होने लगे। पृथिवी दिन रात के चक्कर में सूर्य की ओर से वायु की ओर घूम रही है। यद्यपि पृथिवी से सूर्य की ओर भी वायु है, किन्तु वहां सूर्य के प्रभाव से वायु का बल न्यून होता है और सूर्य का बल अधिक होता है। जैसे दिन में सूर्य के प्रभाव से चन्द्रमा का प्रकाश मलीन हो जाता है और सूर्य के विमुख रात्रि को उसका प्रकाश बलवान् होता है, इसी तरह सूर्य के विमुख पृथिवी की दूसरी ओर वायु का अधिक बल होता है और सूर्य की ओर सूर्य का अधिक बल होता। इन दोनों बलों के खिचाव से पृथिवी दिन रात के चक्कर में घूम रही है।

इसी तरह पृथिवी के घूमने से सूर्य नित्य सबेरे पूर्व से उदय और शाम को पश्चिम में छिपते दिखाई देता है। सूर्य पूर्व से उदय और पश्चिम में डूबते दिखाई देने का कारण पृथिवी का

दैनिक चक्कर में घूमने का है । जो सूर्य का घुमाव मालूम होता है, वह पृथिवी का घुमाव है। पृथिवी के घुमाव के कारण सूर्य का घुमाव मालूम होता है । वास्तविक उस चाल से पृथिवी घूम रही है, सूर्य नहीं । सिर्फ वह अपने नियत स्थान में बड़ी तेजी से घूम रहा है ।

वायु के प्रबल धक्कों से पृथिवी दिन रात के चक्कर में घूमने के अतिरिक्त सूर्य्य के आकर्षण से वृत्ताकार उस के गिर्द घूमती है। सूर्य्य से ९८०००,००० मील की दूरी पर पृथिवी उस के गिर्द समानान्तर वृत्त में घूम रही है ।

सूर्य्य का व्यास ३४२२२२२ मील है और सूर्य्य के विम्ब का घेरा १०७५५५५५ मील है। सूर्य्य के गिर्द घूमने से पृथिवी ३६० अंश का वृत्त बनाती है। उस को पृथिवी का क्रान्ति-वृत्त कहते हैं ।

९८०००००० मील जो सूर्य्य और पृथ्वी के मध्यस्थ की दूरी है वह पृथ्वी के क्रान्तिवृत्त का पूर्ण अर्द्धव्यास नहीं, सूर्य्य के मध्य विन्दु से अर्द्ध व्यास की दूरी ९९७११११९ मील है। क्रान्तिवृत्त का पूर्ण व्यास १९९४२२२२२ मील है ।

जिस वृत्ताकार आकाश मार्ग में सूर्य्य के गिर्द पृथिवी भ्रमण कर रही है, उस क्रान्तिवृत्त की परिधी ६२६७५५५५५ मील है।

पृथिवी एक दिन रात में क्रान्तिवृत्त का एक अंश चल कर समाप्त करती है। क्रान्तिवृत्त के एक अंश की दूरी १७४०९८९ मील है।

पृथिवी एक पूरे दिन रात व ६० घड़ी में क्रान्तिवृत्त पर १७१७१३९ मील चलती है। वह एक घड़ी व ६० पल में क्रान्ति वृत्त पर एक कला से कुछ कम चलती है। ६० कला का एक अंश होता है।

क्रान्तिवृत्त के एक कला की दूरी २९०१६ मील है। और एक पल में एक बिकला चलती है। उस के एक विकला की दूरी ४८४ मील है। एक विपल में एक न्यून-विकला चलती है। क्रान्तिवृत्त के एक न्यून-विकला की दूरी ८ मील है।

पृथ्वी जितने समय में क्रान्तिवृत्त के एक न्यून-विकला की यात्रा करती है, उसको एक विपल कहते हैं। एक विपल में पृथिवी क्रान्तिवृत्त में ८ मील चलती है। अर्थात्, क्रान्तिवृत्त के एक न्यून-विकला की दूरी ८ मील है। ६० न्यून-विकला की एक विकला होती है।

पृथिवी जितने समय में क्रान्तिवृत्त पर एक विकला की यात्रा करती है, उस को एक पल कहते हैं। एक पल में पृथिवी ४७७ मील चलती है। क्रान्तिवृत्त के एक विकला की दूरी ४८४ मील है। ६० विकला की एक कला होती है।

पृथ्वी जितने समय में क्रान्तिवृत्त के एक कला की यात्रा करती है, उसको एक घड़ी कहते हैं। एक घड़ी में पृथिवी क्रान्तिवृत्त में २८६१९ मील चलती है। क्रान्तिवृत्त के एक कला की दूरी २९०१६ मील है। ६० कला का एक अंश होता है।

पृथ्वी जितने समय में क्रान्तिवृत्त के एक अंश की यात्रा करती है, उसको एक दिन कहते हैं। एक दिन में पृथ्वी क्रान्ति-वृत्त के १७१७१३९ मील यात्रा तै करती है। अर्थात् १ अंश के लगभग चलती है।

उतने ही समय में पृथिवी की परिधि सूर्य्य के सन्मुख से सूर्य्य के विमुख अर्थात् पश्चिम से पूर्व को एक चक्कर घूमती है। पृथ्वी वार्षिक चक्र में क्रान्तिवृत्त के एक अंश की यात्रा तै करने पर दैनिक गति से दिन रात के चक्कर में अपनी परिधि का एक पूर्ण चक्कर घूमती है। उस चक्कर से पृथिवी में एक दिन और एक रात होती है।

क्रान्तिवृत्त का घेरा ३६० अंश का है। पृथ्वी ३६५$\frac{१}{४}$ दिन में वार्षिक गति से क्रान्तिवृत्त में घूम कर सूर्य्य की पूरी प्रदक्षिणा करती है। उसको एक वर्ष कहते हैं।

पृथ्वी वार्षिक गति में घूमने वाली चाल से सूर्य्य की एक पूरी प्रदक्षिणा करने पर पश्चिम से पूर्व दैनिक गति घूमने वाली चाल से ३६५$\frac{१}{४}$ चक्कर घूमती है, जिस में ३६५ दिन और ३६५ रात होती हैं। पृथ्वी की वार्षिक और दैनिक चालों से उस का काल विभाग बना है

पृथिवी आकाश में सूर्य्य के गिर्द वार्षिक गति में दक्षिण से उत्तर को एक परिमित मार्ग में घूम रही है। पृथिवी को उस मार्ग में बारह राशियों के सन्मुख होकर घूमना पड़ता है। क्रान्तिवृत्त

के ३०,३० अंश यात्रा करने पर पृथिवी प्रत्येक राशि से विशेष सम्बन्ध रखती है।

सूर्य्य की एक पूरी प्रदक्षिणा करने पर पृथिवी को बारह राशियों के क्रान्तिवृत्तों का भोग करना पड़ता है। वही बारह माह माने जाते हैं।

पृथ्वी के घुमाव से जैसे २ राशियों का परिवर्त्तन होता है वही ऋतुओं का परिवर्तन है। १२ राशियों की ६ ऋतु होती हैं।

पृथ्वी क्रान्तिवृत्त में नित्य छः अन्य ग्रहों के साथ सूर्य्य के गिर्द घूम रही है। वह पश्चिम से पूर्व घूमने वाली चाल से प्रतिदिन ग्रहों के सन्मुख हो कर घूमती है। पृथ्वी जिस दिन जिस ग्रह से विशेष सम्बन्ध रखती है, उस ग्रह के नाम से पृथ्वी में दिन माना जाता है। ७ वें दिन पृथ्वी अन्य ग्रहों की अपेक्षा सूर्य से विशेष सम्बन्ध रखती है इसलिये वह दिन सूर्य के नाम से होता है।

जैसे चन्द्रमा से पृथ्वी का विशेष सम्बन्ध होने से वह दिन पृथ्वी में चन्द्रमा का माना जाता है, इसी तरह मंगल, बुध वृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर ग्रहों से विशेष सम्बन्ध होने पर पृथ्वी में मंगल, बुध वृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर दिन होते हैं। सातवें दिन पृथिवी अन्य ग्रहों की अपेक्षा सूर्य्य से विशेष सम्बन्ध रखती है, इसलिये वह दिन पृथिवी में सूर्य्य के नाम से माना जाता है। इसीतरह दैनिक गति में घूमने से पृथिवी सूर्य्य

और अन्य ६ पिण्डों से विशेष सम्बन्ध रखने पर उस में लगातार सात दिन होते रहते हैं।

दिन रात के चक्कर में घूमने के कारण वायु के प्रबल धक्कों से पृथिवी के उत्तरी दक्षिणी भाग चपटे हो गये। उन को उत्तरी दक्षिणी ध्रुव कहते हैं। दैनिक और वार्षिक गति में घूमने के कारण पृथिवी की वास्तविक शक्ल गोल कद्दू की तरह है। सूर्य्य की तरह वह बिलकुल गोल नहीं है इसलिये पृथिवी के सब भाग प्रत्येक मौसिम में सूर्य्य के सन्मुख बराबर नहीं तपते। कद्दू आकार होने से किसी मौसिम में उसका कोई अधिक हिस्सा सूर्य्य के सन्मुख तपता है, किसी मौसिम में समान भाग और किसी में न्यून भाग सूर्य के सन्मुख तपते हैं।

पृथिवी अपनी गोलाई के हिसाब से क्रान्तिवृत्त में घूमते हुए सूर्य के सन्मुख दो तरह से तपती है। इस तरह उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों के मध्यस्थ पृथिवी के दो बराबर अर्द्ध भाग होते हैं। अर्थात् उत्तरी ध्रुव की ओर उत्तरी ध्रुव भाग और दक्षिणी ध्रुव की ओर दक्षिणी ध्रुव भाग।

अर्द्ध पौष के चार दिन पहिले से पृथिवी का उत्तरी ध्रुव भाग सूर्य के सन्मुख तपना आरम्भ होता है और दक्षिणी ध्रुव भाग में सूर्य का अस्त सा होता है। और अर्द्ध पौष के चार दिन पहिले से अर्द्ध आषाढ़ के ५ दिन पहिले तक पृथिवी का उत्तरी ध्रुव भाग क्रमशः अधिक सूर्य के सन्मुख झुकता रहता है। इसलिये माह पौष मध्य के चार दिन पहिले से और आषाढ़ मध्य के ५ दिन पहिले तक पृथिवी के उत्तरी ध्रुव भाग में

क्रमशः दिन और गर्मी अधिक बढ़ती रहती है। इन छै महीनों में उत्तरी ध्रुव भाग जो चपटा है, उसमें दिन बना रहता है।

जिस तरह पृथिवी के दैनिक चक्कर में घूमने से उसके अर्द्ध भाग में यकायक दिन और यकायक रात्रि नहीं होती क्रमशः दिन होता है और क्रमशः रात्रि होती है। अर्थात् पृथिवी के जिस हिस्से में हम हैं, माना कि उस में सबेरे ६ बजे सूर्य निकला, तिस पर भी ७ बजे तक अधिक ठंड रहती है। ८ बजे अधिक से कुछ कम, ९ बजे ठंड और गर्मी की समानता होती है, १० बजे गर्मी कुछ अधिक, ११ बजे विशेष और १२ बजे गर्मी की हद हो जाती है।

किन्तु रात्रि को पृथिवी में अधिक ठंड समाने से १२ बजे भी पृथिवी में उतनी गर्मी मालूम नहीं होती जितनी कि १२ बजे से २ बजे तक होती है, यद्यपि १२ बजे के उपरान्त सूर्य की गर्मी पृथिवी में कम पहुंचती है। लेकिन सबेरे ६ बजे से १२ बजे दिन तक सूर्य की गर्मी पृथिवी में समाती रहती है। १२ बजे के उपरान्त २ बजे तक पृथिवी में समाई हुई गर्मी और सूर्य की गर्मी का योग होने से १२ बजे के उपरान्त २ बजे तक १२ बजे के मुकाबले सूर्य की कम गर्मी पड़ने पर भी पृथिवी पर अधिक गर्मी मालूम होती है। फिर २ बजे से शाम ६ बजे तक क्रमशः गर्मी न्यून और ठण्ड अधिक होती जाती है। १२ बजे के उपरान्त ६ बजे तक भी दिन बना रहता है और ६ बजे शाम से १२ बजे रात तक और ६ बजे सबेरे तक रात्रि बनी रहती है।

इसी तरह पृथिवी के उत्तरी और दक्षिणी भागों में ६ माह का उत्तरायण और ६ माह का दक्षिणायन होता है। माह पौष के मध्य के ४ दिन पहिले से और आषाढ़ के मध्य के ५ दिन पहिले तक पृथिवी का उत्तरी ध्रुव भाग क्रमशः अधिक सूर्य के सन्मुख तपता रहता है। ६ बजे सबेरे की तरह पौष का महीना है।

यद्यपि ६ बजे सबेरे सूर्य उदय होता है लेकिन पृथिवी में ठण्ड बनी रहती है। वैसे ही अर्द्ध पौष के ४ दिन पहिले से पृथिवी का उत्तरी ध्रुव भाग का झुकाव सूर्य के सन्मुख हो जाता है। लेकिन उस महीने में पृथिवी के उत्तरी भाग में ठण्डक बनी रहती है।

गर्मी और सर्दी के सम्बन्ध से माघ का महीना ७ बजे सबेरे की तरह, फागुन का ८ बजे सबेरे की तरह, चैत्र का ९ बजे की तरह, वैशाख का १० बजे की तरह, ज्येष्ठ का ११ बजे की तरह, और आषाढ़ का १२ बजे दिन की तरह है। इन महीनों में पृथिवी का उत्तरी भाग धीरे २ क्रमशः सूर्य की ओर झुकने से अधिक तपता है, और दिन भी क्रमशः बढ़ते रहते हैं। इन ६ महीनों में पृथिवी का उत्तरी ध्रुव जो चपटा है उसमें दिन बना रहता है।

माह श्रावण से पृथिवी के दक्षिणी भाग का झुकाव सूर्य के सन्मुख होना आरम्भ होता है और क्रमशः माह अर्द्ध पौष के ४ दिन पहिले तक अधिक होता रहता है।

१२ बजे से २ बजे दिन की तरह पृथिवी के दक्षिणी भाग का झुकाव सूर्य की ओर होने पर भी पृथिवी के उत्तरी भाग में मास श्रावण और भाद्रपद में गर्मी अधिक होती है, क्योंकि माह माघ से आषाढ़ तक पृथिवी के उत्तरी भाग में गर्मी समाती है। उस समाई हुई और सूर्य की गर्मी के योग से पृथिवी के उत्तरी भाग में माह श्रावण और भाद्रपद में अधिक गर्मी मालूम होती है। माह असूज, कार्तिक, मार्गशीर्ष और पौष ३, ४, ५ और ६ बजे शाम की तरह हैं।

माह पौष में पृथिवी के उत्तरीध्रुव भाग में सूर्य की बहुत कम गर्मी पहुंचती है जिससे वहां ठण्डक की हद हो जाती है, और दिन भी बिलकुल छोटे हो जाते हैं। माह श्रावण से माह पौष तक इन ६ महीनों में पृथिवी का उत्तरीध्रुव जो चपटा है, उसमें रात्रि होती है।

अर्द्ध आषाढ़ के ५ दिन पहिले से और अर्द्ध पौष के ४ दिन पहिले तक पृथिवी के दक्षिणी ध्रुव भाग में क्रमशः दिन और सूर्य की गर्मी बढ़ते जाते हैं। इन ६ महीनों में पृथिवी का दक्षिणी ध्रुव जो चपटा है, उसमें दिन बना रहता है।

माघ के आरम्भ से और आषाढ़ के अन्त तक पृथिवी केउत्तरी ध्रुव भाग का झुकाव सूर्य के सन्मुख होने से उत्तरायण माना जाता है। और श्रावण के आरम्भ से माह पौष तक पृथिवी के दक्षिणी ध्रुव का झुकाव सूर्य के सन्मुख होने से दक्षिणायण माना जाता है।

पृथिवी वार्षिक गति में क्रान्तिवृत्त पर दक्षिण से उत्तर को और दैनिक गति में सूर्य के सन्मुख पश्चिम से पूर्व को घूमती है। इन दोनों चालों से पृथिवी नित्य वार्षिक और दैनिक गति में सूर्य के गिर्द घूम रही है।



अध्याय १६

सोम ।

सँसार की सारी उत्पत्ति में पञ्चतत्व की प्रधानता मानी गई है जोकि आकाश, वायु, अग्नि, जल, और पृथ्वी हैं। इन के अतिरिक्त सँसार की उत्पत्ति का सोम भी एक प्रधान कारण है। सोम एक छटा तत्व माना जा सकता है। वह अग्नि और जल के सतोगुण के योग से उत्पन्न हुआ। उस की बनावट में तीन भाग अग्नि का सतोगुण प्रकाश और दो भाग जल का सतोगुण रस है। सोम प्रकाश और रस के योग से उत्पन्न हुआ।

जिसतरह आकाश का गुण शब्द, वायु का गुण स्पर्श, अग्नि का गुण रूप और जल का गुण रस है, उसी तरह सोम का गुण शीत है।

सोम के सतोगुण से पराग पैदा होता है, जो वनस्पतियों में सोमरस और बीजों में उत्पादन शक्ति बनता है। उसके रजोगुण से चौदह तिथियां और तमोगुण से शीत पैदा होता है। समस्त वनस्पति-सृष्टि के बीजों की उत्पादन शक्ति सोम के पराग से होती है। पराग का विस्तृत वर्णन वनस्पति-अध्याय में किया जायेगा।

जल, वायु, पृथ्वी में जो शीत का अंश है वह उन को सोम से प्राप्त होता है। जल, वायु, पृथ्वी का स्वभाव न शीतल है और न उष्ण। उन का शीत सोम से और तेज सूर्य्य व अग्नि से प्राप्त होते हैं।

शीत की प्रधानता और तेज की न्यूनता से वायु, जल, पृथ्वी में शीत की अधिकता मालूम होती है।

शीत की न्यूनता और तेज की प्रधानता से उन में तेज की अधिकता होती है।

जिस तरह सूर्य्य से पृथ्वी में तेज पहुंचता है, उसी तरह सोम से पृथ्वी में शीत पहुंचता है। सूर्य्य तेज का गोला है, वह पृथ्वी में तेज पहुंचाता है। और सोम शीत का गोला है, वह पृथ्वी में शीत पहुंचाता है। इसी से पृथ्वी में सदैव शीत और उष्ण बने रहते हैं।

जो विद्वान् अग्नि के अभाव से शीत को मानते हैं, वह सिद्धान्त यथार्थ नहीं है। क्यों कि जब तक किसी वस्तु के प्रतिकूल दूसरी वस्तु मुकाबला करने वाली नहीं होती तब तक उसका अभाव कैसे होसकता है। यह प्रकृति का अटल नियम है। इस सिद्धान्त से तेज का अभाव कैसे हो सक्ता है, जब कि सृष्टि के आद्य से सूर्य्य प्रतिदिन तेज डाल रहा है। इस से तो यह होना चाहिये था कि तेज के प्रतिदिन क्रमशः एकत्रित होने से अब तक सृष्टि को अतितप्त होना चाहिये था, लेकिन ऐसा

भी नहीं होता। इस से सिद्ध है कि शीत अग्नि के अभाव से पैदा नहीं होता। सिर्फ तेज की न्यूनता से उस का बल बढ़ता है और शीत की न्यूनता से तेज का बल बढ़ता है। तेज की तरह शीत का भी कोई खास स्थान है, और वह सोम है।

जिस तरह सूर्य्य को महाचैतन्य पुरुष से तेज प्राप्त होकर वह भूमण्डल को तप्त करता है, उसी तरह सोम को महाप्रकृति से शीत प्राप्त होकर वह भूमण्डल को शीतल करता है।

यदि सोम से पृथ्वी में शीत न पहुंचता तो सूर्य्य के तेज से पृथ्वी भस्म हो जाती। उस में न कोई जीवजन्तु पैदा हो सकते और न वनस्पतियां उग सकतीं। सोम शीत द्वारा सूर्य्य के तेज से पृथ्वी व उस के जीव जन्तु और बनस्पतियों की रक्षा करता है। सोम पृथिवी और उस के जीवजन्तु व वनस्पतियों के लिये बड़ा लाभकारी पिण्ड है।

पृथिवी के घुमाव से सूर्य्य का तेज जब पृथिवी में कम पहुंचता है तब उस में सोम से शीत अधिक बढ़जाता है। उस मौसिम में जल में इतना शीत समा जाता है कि पृथिवी के उत्तरी दक्षिणी ध्रुवों और हिमालय पहाड़ में, जहां पृथिवी के गर्भ की अग्नि कम पहुंचती है वहां, जल जम कर हिम बन जाता है। हिम में जो अधिकतर शीत बना रहता है, वह भी उस को सोम से प्राप्त होता है। वायु और पृथिवी में भी जो शीत मालूम होता है, वह उन को सोम से प्राप्त होता है।

जाड़ों में जल, वायु, पृथिवी में सोम से अधिक शीत समाने

पर वे शीतल, और गर्मियों में सूर्य्य का अधिक तेज मिलने से वे उष्ण होजाते हैं।

आकाश में सोम एक ऐसे ढङ्ग का पिण्ड है, जो सूर्य्य से प्रकाश खींचता है, जिस को वह पृथिवी तक पहुंचाता है, किन्तु तेज नहीं खींचता।

यदि विश्व की उत्पत्ति में चन्द्रमा न होता तो पृथिवी में एक भी बनस्पति पैदा न होती और सूर्य के तेज से पृथिवी भस्म हो जाती। चन्द्रमा पृथिवी व पृथिवी के जीवजन्तु और बनस्पतियों के लिये अमृत का पिण्ड है।

पृथिवी में बनस्पतियों को उगाने वाली उर्वरा शक्ति चन्द्रमा से बनती है। वह अग्नि तत्व की सहायता से बीजों को उगाती है। जहां उसकी उर्वरा शक्ति में अग्नि तत्व की न्यूनता होती है वहां बीजों को उगाने में वह समर्थ नहीं हो सकती।

सोम पृथिवी में बनस्पतियों को पैदा करता है और शीत द्वारा उनके रसों की रक्षा करता है। बनस्पतियों में शीत की प्रधानता होती है।

पिण्डज, अण्डज, स्वेदजों के स्थूल शरीरों की बनावट में आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी पांच तत्व होते हैं और सोम शीत द्वारा उनकी रक्षा करता है। किन्तु उद्भिजों में उनकी तरह अग्नितत्व नहीं होता, आकाश, वायु, शीत, जल, पृथिवी तत्व होते हैं और सूर्य के तेज द्वारा उनकी रक्षा होती है।

सोम से प्राप्त हुई पृथिवी की उर्बरा शक्ति और अग्नि तत्व के योग से पृथिवी उद्भिजों को उगाती है।

शुक्लपक्ष में पृथिवी की उर्वरा शक्ति न्यून और कृष्णपक्ष में अधिक बलिष्ठ होती है। इसलिये उस पक्ष में उर्बरा शक्ति (पृथिवी तत्व) के कारण बनस्पतियों का शरीर दृढ़ होता है।

कृष्णपक्ष में चन्द्रबिम्ब पर जैसे २ अन्धकार बढ़ता है, वैसे ही तमोगुणी पराग वाले बीजों में उगने की शक्ति अधिक बढ़ती है। लेकिन कृष्णपक्ष में जैसे २ चन्द्रबिम्ब का प्रकाश घटता है वैसे २ बनस्पतियों में सतोगुणी पराग कम पहुंचता है, जिससे उनमें उस पक्ष में सोम रस की न्यूनता होती है। कृष्णपक्ष में जैसे २ चन्द्रमा का प्रकाश घटता रहता है वैसे वैसे बनस्पतियों में सोमरस घटता रहता है और उनमें तमोगुणी नाशकारी रस बढ़ता है। सोमरस में पोषण शक्ति और मीठापन होता है, लेकिन तमोगुणी रस में शोषण शक्ति और कडुवापन होता है।

शुक्लपक्ष में जैसे २ चन्द्रबिम्ब पर प्रकाश अधिक बढ़ता रहता है, वैसे २ उससे बनस्पतियों को सतोगुणी पराग अधिक मिलता रहता है और सतोगुणी पराग वाले बीजों में उगने की शक्ति अधिक होती है। उस पक्ष में बनस्पतियों के शरीर में सोमरस अधिक बढ़ता है।

प्रायः, फल अधिकतर रात्रि को परिपक्व होते हैं। इसका कारण यह है कि रात्रि को सोम का अधिक बल होने से उनको अधिक पराग मिलता है और फलों में सोमरस बनता है। जिस

तरह दिन में सूर्य का अधिक बल होता है, उसी तरह रात्रि में सोम का अधिक बल होता है।

सोम बिलकुल गोल पिण्ड है, जिस को हम चन्द्रमा कहते हैं। वह पृथिवी से तीस गुना बड़ा है। उसमें भी दिन रात होने का क्रम जारी है। वह पृथिवी के मुकाबिले सूर्य से दूर है। वह अपने क्रान्ति मार्ग में पृथिवी से बारह गुना अधिक चलता है और तीस दिन में सूर्य के गिर्द घूम कर सूर्य की एक पूरी प्रदक्षिणा करता है।

चन्द्रमा का व्यास २४०००० मील और उसकी परिधि ७५४२८६ मील है। सूर्य से चन्द्रमा १६२०००००० मील की दूरी पर है। चन्द्रमा के सूर्य के गिर्द घूमने वाले क्रान्तिवृत्त का घेरा १०२८०४१२६९ मील है।

चन्द्रमा के क्रान्तिवृत्त के एक अंश की दूरी २८५८४४८ मील है। चन्द्रमा एक दिन में अपने क्रान्तिवृत्त के बारह अंश चल कर तै करता है। पृथिवी से चन्द्रमा में जो प्रकाश दिखाई देता है, वह उस में उसके और सूर्य के प्रकाश के योग से उत्पन्न होता है।

पूर्णमासी को चन्द्रमा के दिन का पूर्ण हिस्सा पृथिवी की ओर होता है। उस दिन वह पृथिवी से बिलकुल समीप होता है। पूर्णमासी को चन्द्रमा का आकर्षण पृथिवी पर अधिक पड़ता है, जिससे वह बनस्पतियों के जल तत्व को खींचता है और अपने आकर्षण से समुद्र का जल खींचकर वायुमण्डल की ओर बढ़ाता है, जिसको ज्वार कहते हैं।

किन्तु शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से पूर्णमासी तक चन्द्रमा पृथिवी को क्रमशः अधिक पराग देता रहता है। पूर्णमासी को चन्द्रमा पृथिवी से ६४०००००० मील की दूरी पर रहता है और आमावास्या को २६०००००००० मील की दूरी पर। आमावास्या को चन्द्रमा सूर्य के विम्ब से आच्छादित रहता है।

सूर्य का व्यास ३४२२२२२ मील और सूर्य की परिधि (विम्ब का घेरा) १०७५५५५५ मील है।

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से पूर्णमासी तक प्रतिदिन चन्द्रमा के दिन का पन्द्रहवां भाग पृथिवी की ओर होता है, और होते होते पूर्णमासी को चन्द्रमा का पूर्ण दिन पृथिवी की रात्रि की ओर हो जाता है।

पूर्णमासी को पृथिवी की रात्रि में चन्द्रमा सब दिन से अधिक प्रकाश पहुंचाता है, क्योंकि उसका प्रकाश वाला पूर्ण हिस्सा उस दिन पृथिवी की ओर हो जाता है। फिर, पृथिवी और चन्द्रमा के घुमाव से पूर्णमासी से आमावास्या तक चन्द्रमा की रात्रि का पद्रहवां भाग पृथिवी की ओर होता रहता है, यहां तक कि आमावास्या को वह सूर्य के बिम्ब से ढक जाता है। वह कभी द्वितीय के अर्द्ध दिन तक और कभी प्रतिपदा के अर्द्ध दिन तक ही सूर्य के बिम्ब से आच्छादित रहता है।

सूर्य के बिम्ब का घेरा १ करोड़ सात लाख पचपन हजार पांच सौ पचपन मील है। पृथिवी से सूर्य बिम्ब के कारण चन्द्रमा का क्रान्तिवृत्त ३४३०१३७६ मील आच्छादित मालूम

होता है। इसलिये चन्द्रमा आमावास्या से द्वितीया या प्रतिपदा के अर्द्ध दिन तक अपने मार्ग के ३४३०१३७६ मील में सूर्य के बिम्ब से आच्छादित रहता है।

पृथिवी और चन्द्रमा के घुमाव के कारण किसी पक्ष में चन्द्रमा प्रतिपदा को और किसी पक्ष में द्वितीया को दिखाई देता है। प्रतिपदा और द्वितीया को चन्द्रमा के बिम्ब के देखने में अन्तर इसलिये पड़ता है कि चन्द्रमा के क्रान्तिवृत्त के बारह अंश सूर्य के प्रकाश से आच्छादित होते हैं।

इस तरह चन्द्रमा सूर्य के गिर्द घूमता रहता है। उसके सूर्य के गिर्द घूमने से पृथिवी में शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष बराबर होते रहते हैं। जिन दिनों में चन्द्रमा का दिन वाला हिस्सा पृथिवी की ओर धीरे धीरे पन्द्रह दिन तक प्रकाशित होता रहता है उसको शुक्लपक्ष कहते हैं। और जब पृथिवी की ओर चन्द्रमा का रात्रि वाला बिम्ब धीरे धीरे पन्द्रह दिन तक होता रहता है, उसको कृष्णपक्ष कहते हैं।

चन्द्रमा ठीक २७ दिन में सूर्य के गिर्द एक पूरा चक्कर घूमता है। लेकिन आमावास्या और पूर्णमासी के कारण चन्द्रमा का ३० दिन का घुमाव होता है, जिससे १५ तिथियां कृष्ण की और १५ तिथियां शुक्लपक्ष की होती हैं।

सृष्टि के आरम्भ में पिण्डों की जितनी तीव्र गतियां होती हैं, उसी गति से सदैव उनकी चाल नहीं रहती। उत्पत्ति से

जितना अधिक अधिक समय होता रहता है, उतना ही पिण्डों की गतियां भी कुछ शिथिल होती हैं।

पृथिवी एक वर्ष में सूर्य की एक परिक्रमा करती है, और चन्द्रमा एक वर्ष में सूर्य की बारह परिक्रमा करता है। चन्द्रमा की उन बारह परिक्रमाओं से पृथिवी में १२ शुक्लपक्ष और बारह कृष्णपक्ष होते हैं। इसी तरह पृथिवी और चन्द्रमा बराबर सूर्य के गिर्द अपने अपने मार्गों में एक दूसरे के विपरीत घूम रहे हैं।



अध्याय १७



राहु, केतु से सूर्य--चन्द्र--ग्रहण।

--:०:—

हमारे सूर्य-मडल में दो ऐसे ग्रह हैं, जिन में अन्धकार बना रहता है। वे अन्य पिण्डों की तरह आकाश में नहीं दिखाई देते। वे दोनों पिण्ड पृथिवी के तमोगुण से उत्पन्न हुए और दोनों पृथिवी से समान दूरी पर पृथिवी के दोनों ओर समान चाल से उसके गिर्द घूमते हैं।

उनमें एक पिण्ड गोलाकार और दूसरा मुद्गराकार व मूली आकार का है। गोल पिण्ड को राहु और मूली आकार पिण्ड को केतु कहते हैं। वे दोनों पिण्ड पृथिवी से १५ गुना छोटे हैं। राहु से केतु लम्बाई के कारण कुछ लम्बा है। राहु की परिधि केतु के सिर की परिधि से कुछ अधिक है। केतु कभी कभी प्रकाशित होकर पृथिवी से दिखाई देता है।

आकाश में पृथिवी और अन्य पिण्ड अपनी अपनी चालों के घुमाव से जब ऐसे सम्बन्ध में होते हैं कि एक पिण्ड दूसरे पिण्ड को अपने अपने आकर्षणों से खींचते हैं, उस समय केतु

ग्रह अपनी घुमाव की चाल से पृथिवी और दूसरे पिण्डों के आकर्षणों के मध्यस्थ होने से उसमें एक तरह का नवीन आकर्षण पैदा होता है, और वह अपने और उस आकर्षण के योग से उस समय सूर्य का प्रकाश खींचने को समर्थ होता है। उस समय केतु ग्रह पृथिवी से पुच्छल तारा रूप में दिखाई देता है।

पिण्डों के आकर्षण--लड़ाई के समय केतु ग्रह आकाश में प्रकाशित होकर दुर्भिक्षों की सूचना करता है। राहु और केतु से पृथिवी को एक बड़ा लाभ होता है। पृथिवी के साथ अन्य पिण्डों की आकर्षण--लड़ाई के समय वे आकर्षणों के बीच होकर पृथिवी और अन्य पिण्डों के आकर्षण की जुदाई करते हैं, और उनको टकराने से बचाते हैं। लेकिन उस समय पृथिवी में उल्कापात होते हैं, क्योंकि एक पिण्ड दूसरे पिण्ड के कमजोर हिस्सों को अपने आकर्षण से अपने ऊपर खींच लेते हैं।

राहु और केतु दोनो पिण्ड प्रत्येक समय अपनी २ चालों से पृथिवी के दोनों ओर रहकर अन्य पिण्डों से पृथिवी की रक्षा करते हैं और अन्य पिण्डों के आकर्षण से पृथिवी को उनके साथ टकराने से बचाते हैं। इसलिये दोनों पिण्ड पृथिवी के दोनों ओर रहकर एक दूसरे से समान दूरी पर घूम रहे हैं।

अक्सर पूर्णमासी को चन्द्रमा पृथ्वी से बिलकुल समीप हो जाता है, जिस से वह पृथ्वी पर अपना अधिक आकर्षण डालता है। पूर्णमासी को चन्द्रमा के आकर्षण से पृथ्वी में समुद्र का

पानी अपनी सीमा से ऊपर उठ जाता है। लेकिन पूर्णमासी को राहु अथवा केतु दो में से एक ग्रह पृथ्वी और चन्द्रमा के मध्यस्थ हो कर पृथ्वी और चन्द्रमा को उनके आकर्षणों की टकरों से बचाता है।

पूर्णमासी को राहु अथवा केतु में से एक पिण्ड पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच और दूसरा पिण्ड पृथ्वी और सूर्य्य के मध्य रहता है। आमावास्या को चन्द्रमा सूर्य्य की ओर होता है और दोनों के आकर्षण का योग पृथ्वी की ओर पहुंचता है। उस दिन राहु वा केतु दो में से एक ग्रह पृथ्वी और सूर्य के मध्य हो जाता है और दूसरा पिण्ड पृथ्वी के जिस ओर पूर्णमासी को था उस ओर रहता है।

किन्तु आमावास्या को चन्द्रमा का आकर्षण पृथ्वी पर नहीं पहुंता, क्यों कि आमावास्या को पृथ्वी और चन्द्रमा के मध्य राहु अथवा केतु के सिवाय सूर्य्य हो जाता है, जिससे चन्द्रमा का आकर्षण पृथ्वी पर नहीं पहुंचता। इस लिये आमावास्या को समुद्र का जल पृथ्वी के आकर्षण से नीचे घट जाता है।

चन्द्रमा अपने क्रान्तिवृत्त में, और राहु व केतु अपने क्रान्ति-वृत्त में अपनी २ चालों से घूम रहे हैं। अकसर पूर्णमासी को चन्द्रमा, राहु, पृथिवी, केतु, सूर्य्य, पृथिवी के क्रान्तिवृत्त के एक अंश के सीध में होते हैं और फिर आमावास्या को केतु, पृथिवी राहु, सूर्य्य, चन्द्रमा एक अंश की सीध में हो जाते हैं। पृथिवी से ग्रहों की चाल को सिद्ध करने के लिये पृथिवी का क्रान्तिवृत्त

निश्चित किया जाता है और उसी के अंश, कला, विकला से ही सम्बन्ध रखा जाता है ।

प्रत्येक पूर्णमासी और प्रत्येक आमावास्या के पृथ्वी और चन्द्रमा, सूर्य के गिर्द अपनी अपनी चालों के घुमाव से और बड़े बड़े पिण्ड होने के कारण नित्य एक अंश, एक कला एक विकला में हो जाते हैं । किन्तु राहु व केतु प्रत्येक पूर्णमासी व आमावास्या के पृथ्वी चन्द्रमा और पृथ्वी सूर्य के साथ पृथ्वी के गिर्द घूमने से और बहुत छोटे पिण्ड होने के कारण एक अंश, एक कला, एक विकला में नहीं हो सकते ।

जब चन्द्रमा राहु अथवा केतु पूर्णमासी के पृथ्वी के रात्रि वाले हिस्से, एक अंश, एक कला, एक विकला में अपनी अपनी चालों से हो जाते हैं, उस काल में पूर्णमासी के पृथ्वी के रात्रि वाले हिस्से और चन्द्रमा के मध्यस्थ राहु अथवा केतु ग्रह के आने से चन्द्रमा का सारा बिम्ब व चन्द्रमा के बिम्ब का कुछ हिस्सा पृथ्वी से आच्छादित मालूम होता है, उसको चन्द्रग्रहण कहते हैं ।

और, आमावास्या को पृथ्वी का दिन वाला हिस्सा राहु, केतु सूर्य, और चन्द्रमा जब एक अंश, एक कला, एक विकला में हो जाते हैं, तब सूर्य्य का पूर्ण बिम्ब व बिम्ब का कुछ हिस्सा राहु अथवा केतु से कुछ समय के लिये पृथिवी से आच्छादित मालूम होता है, उसी को सूर्य्य-ग्रहण कहते हैं ।

यदि पूर्णमासी के दिन को और आमावास्या की रात्री को चन्द्रमा राहु अथवा केतु और पृथिवी, अथवा पृथ्वी राहु व केतु और सूर्य्य एक अंश एक कला, एक विकला में हो जायें तो भी चन्द्र-ग्रहण, और सूर्य्य-ग्रहण नहीं हो सकते।

अब अपने अपने मार्गों में पिण्डों की चाल सहित सूर्य्यग्रहण और चन्द्रग्रहण का विस्तृत वर्णन किया जाता है:—

सूर्य्य अपने स्थान में घूम रहा है। उसके विम्ब का घेरा १०७५५५५५ मील है। सूर्य्य से पृथिवी ९८०००००० मील की दूरी पर है। वह दैनिक और वार्षिक चालों से सूर्य्य के गिर्द घूम रही है। पृथिवी की परिधि २५००० मील है। पृथिवी के क्रान्तिवृत्त का घेरा ६२६७५५५५५ मील है। पृथ्वी ३६५$\frac{1}{4}$ दिन में अपने क्रान्तिवृत्त में घूमकर एक पूरा चक्कर करती है। वह क्रान्तिवृत्त का एक अंश करीब एक दिन में चलती है। उसके क्रान्तिवृत के एक अंश की दूरी १७४०९८९ मील है।

अथवा पृथिवी की एक दिन की चाल १७१७१३९ मील है। एक घड़ी में पृथिवी एक कला चलती है। एक कला की दूरी २९०१६ मील है। एक पल में एक विकला चलती है। एक विकला की दूरी ४८४ मील है।

सूर्य्य से चन्द्रमा की दूरी १६२०००००० मील है। चन्द्रमा के विम्ब का घेरा ७५४२८६ मील है। चन्द्रमा के क्रान्तिवृत्त का घेरा १०२९०४१२६९ मील है। चन्द्रमा ३० दिन में अपने

क्रान्तिवृत्त में घूमकर एक पूरा चक्कर करता है। वह एक दिन में अपने क्रान्तिवृत्त का १२ अंश चलकर तै करता है। उसके क्रान्तिवृत्त के १ अंश को दूरी २८५८४४८ मील है। और १२ अंश की दूरी ३४३०१३७६ मील है जो कि चन्द्रमा की एक दिन की चाल है।

पूर्णमासी को चन्द्रमा पृथिवी से ६४०००००० मील की दूरी पर होता है। उस दिन पृथिवी चन्द्रमा और सूर्य्य के मध्य होती है, जिससे चन्द्रमा पृथिवी, सूर्य्य, तीनों एक अंश में होते हैं।

पूर्णमासी से पन्द्रवें दिन आमावास्या होती है। आमावास्या को पृथ्वी और चन्द्रमा के मध्य सूर्य होता है। सूर्य्य पृथ्वी और चन्द्रमा के मध्यस्थ होने से पृथिवी के घुमाव से चन्द्रमा के क्रान्तिवृत्त के कभी १२ या कभी १८ अंश पृथ्वी से आच्छादित मालूम होते हैं, जिन में १८ अंश की दूरी ५१४५२०६४ मील है।

चन्द्रमा अपने क्रान्तिवृत्त के १८ अंश मार्ग को १½ दिन में तै करता है, जिससे आमावास्या के आरम्भ से और द्वितीया के अर्द्ध दिन तक चन्द्रमा सूर्य के विम्ब से आच्छादित रहता है।

यद्यपि सूर्य्य के विम्ब का घेरा १०८५५५५५ मील है और चन्द्रमा के क्रान्तिवृत्त के १८ अंश की दूरी ५१४५२०६४ मील है। लेकिन आमावास्या को चन्द्रमा पृथ्वी से २६००००००० मील की दूरी पर रहता है, और सूर्य्य पृथिवी से ९८०००००० मील की दूरी पर। इसलिये आमावास्या को पृथ्वी से चन्द्रमा दूर और

सूर्य्य समीप होने से सूर्य के विम्ब से चन्द्रमा के क्रान्तिवृत्त के १८ अंश आच्छादित होजाते हैं।

चन्द्रमा १८ अंश मार्ग को १½ दिन में चलकर तै करता है, इसलिये आमावास्या से द्वितीया के अर्द्ध दिन तक क्रान्तिवृत्त के १८ अंश में चन्द्रमा सूर्य्य के विम्ब से पृथ्वी से आच्छादित मालूम होता है, जिससे वह प्रतिपदा की रात्री में और कभी २ द्वितीया की रात्री में दिखाई देता है।

राहु और केतु ये दोनों ग्रह पृथ्वी के गिर्द घूमते हैं। वे दोनों ग्रह पृथ्वी के दोनों ओर पृथ्वी से २४००० मील की दूरी पर हैं। राहु बिलकुल गोल पिण्ड है और केतु मूली-आकार है। राहु के विम्ब का घेरा और केतु के सिरे का घेरा करीब २ बराबर हैं। उन के विम्ब का घेरा १७१२ मील है। केतु राहु से लम्बाई के कारण कुछ लम्बो पिण्ड है, लेकिन राहु की गोलाई केतु की गोलाई से कुछ अधिक है।

केतु का सिर उस के क्रान्तिवृत्त में पृथ्वी की ओर और पूंछ दूसरे पिण्ड की ओर रहता है। राहु और केतु का क्रान्तिवृत्त का घेरा १७५८५६ मील है। वे दोनों पिण्ड अपने मार्ग में समान चाल से एक दूसरे से समान दूरी पर चलते हैं। दोनों एक दिन में अपने क्रान्तिवृत्त में ११ अंश चलते हैं। उनके क्रान्तिवृत्त के ११ अंश की दूरी ५३६८ मील है और एक अंश की दूरी ४८८ मील है। दोनों पिण्ड ३३ दिन में अपने क्रान्तिवृत्त में घूमकर पृथ्वी की एक पूरी प्रदक्षिणा करते हैं।

चन्द्रमा अपने क्रान्तिवृत्त में जिस चाल के सम्बन्ध से सूर्य्य के गिर्द घूम रहा है ठीक उसी तरह राहु और केतु अपने क्रान्तिवृत्त में पृथ्वी के गिर्द घूम रहे हैं। इसलिये प्रत्येक पूर्णमासी का चन्द्रमा राहु पृथ्वी केतु सूर्य्य एक अंश में नहीं होते। चन्द्रमा का विम्ब ७५४२८६ मील, राहु का विम्ब १७१२ मील, पृथ्वी का विम्ब २५००० मील, केतु का विम्ब १७१२ मील, और सूर्य्य का विम्ब १०७५५५५५ मील है।

पृथ्वी के क्रान्तिवृत्त के एक अंश की दूरी १७४०९८९ मील है, जिससे प्रत्येक पूर्णमासी का चन्द्रमा राहु पृथ्वी केतु,सूर्य एक सीध में न होने से चन्द्रग्रहण नहीं हो सकता। और पूर्णमासी को पृथ्वी और सूर्य्य के मध्य केतु ग्रह के न होने से सूर्य्य ग्रहण भी नहीं हो सकता। क्यों कि पूर्णमासी के दिन रात्रि को पृथ्वी के रात्रि वाले हिस्से में सूर्य आच्छादित रहता है, इसलिये पूर्णमासी का सूर्य ग्रहण कभी नहीं हो सकता। पूर्णमासी को पृथिवी के रात्रि वाले हिस्से के सन्मुख चन्द्रमा होता है। यदि उस दिन चन्द्रमा और पृथिवी के मध्य एक ही अंश पर राहु अथवा केतु रहते हों तो भी चन्द्रग्रहण नहीं हो सकता, क्यों कि उन के विम्ब का घेरा १७१२ मील है और पृथिवी के क्रान्तिवृत्त के एक अंश की दूरी १७४०९८९ मील है। इसलिये पूर्णमासी को क्रान्तिवृत्त के एक अंश के कितने दूर स्थान पर राहु अथवा केतु रहता है और कितने दूर स्थान पर पृथिवी रहती है? जिस पूर्णमासी को एक अंश के भिन्न भिन्न स्थानों में चन्द्रमा राहु अथवा केतु और पृथिवी रहते हैं, उस पूर्णमासी

को चन्द्रग्रहण नहीं हो सकता। इसी तरह प्रत्येक आमावास्या को भी सूर्य्यग्रहण नहीं हो सकता। कभी कभी पूर्णमासी और आमावास्या को राहु और केतु, सूर्य पृथिवी चन्द्रमा के साथ एक ही अंश पर नहीं रहते, कुछ आगे पीछे हो जाते हैं। इसलिये प्रत्येक पूर्णमासी और प्रत्येक आमावास्या को चन्द्रग्रहण, सूर्य्यग्रहण नहीं हो सकते।

सूर्य्यग्रहण तभी हो सकता है, जब आमावास्या को पृथिवी केतु अथवा राहु और सूर्य्य चन्द्रमा एक अंश, एक कला, एक विकला में हो जाते हैं। पृथ्वी के क्रान्तिवृत्त के एक विकला की दूरी ४८४ मील है और राहु व केतु के बिम्ब का घेरा १७१२ मील है।

इसलिये आमावास्या को पृथ्वी का जो ४८४ मील का भाग क्रातिवृत्त के एक विकला में होगा, केतु भी उसी विकला में होगा और सूर्य्य भी उसी विकला में होगा, और पृथिवी के उस हिस्से में आमावास्या का दिन होगा। तब पृथिवी के क्रान्तिवृत्त के उस विकला में रहने वाले भाग से सूर्य्यग्रहण दिखाई देगा। उस काल में केतु पृथिवी और सूर्य के मध्यस्थ एक अंश एक कला, एक विकला में होने से पृथिवी से सूर्य का जितना हिस्सा केतु के बिम्ब से आच्छादित दिखाई देता है उसी को सूर्य ग्रहण कहते हैं। फिर पृथिवी और केतु के घुमाव से जितना समय एक विकला के अलग होने में लगेगा उतने समय तक सूर्य ग्रहण रहेगा।

पृथिवी से केतु कभी २ गोलपिण्ड की सूरत में दिखाई देता है। यदि उसके पूरे बिम्ब से सूर्य आच्छादित होगा, तो ग्रहण का बिम्ब गोल दिखाई देगा। और यदि सूर्य के आधे बिम्ब पर केतु का बिम्ब पड़ेगा अथवा केतु का अर्द्ध बिम्ब सूर्य के बिम्ब पर पड़ेगा तो ग्रहण अर्द्ध वृत्ताकार दिखाई देगा। प्रत्येक आमावास्या को यदि केतु पृथिवी और सूर्य के मध्य रहेगा तो राहु पृथिवी की दूसरी ओर रहेगा।

विशेष सूर्य ग्रहण का कारण केतु, और चन्द्रग्रहण का कारण राहु होता है। आमावास्या को चन्द्रमा सूर्य के बिम्ब से आच्छादित रहता है।

पूर्णमासी को भी चन्द्रग्रहण तभी होगा, जब चन्द्रमा राहु और पृथिवी एक अंश, एक कला, एक विकला में होंगे।

पृथिवी का वह भाग जो क्रान्तिवृत्त के एक अंश, एक कला एक विकला में रहे, यदि उस में पूर्णमासी की रात्रि हो और पृथिवी के उस भाग के और चन्द्रमा के मध्यस्थ एक अंश, एक कला, एक विकला में राहु हो तो चन्द्रग्रहण होगा।

अब शङ्का यह है कि सूर्य के बिम्ब का घेरा १०७५५५५५ मील, चन्द्रमा का बिम्ब ७५४२८६ मील, और केतु व राहु के बिम्ब का घेरा १७१२ मील है। इसलिये केतु और राहु के इतने छोटे बिम्बों से सूर्य ग्रहण और चन्द्रग्रहण के दिन कभी कभी सूर्य और चन्द्र बिम्ब कैसे आच्छादित हो जाते हैं ?

यह उदाहरण सर्वत्र सिद्ध है कि समीप वाली छोटी वस्तु से भी दूर की बड़ी वस्तु आच्छादित हो जाती है। पृथिवी से केतु २४००० मील की दूरी पर है, और सूर्य ९८०००००० मील की दूरी पर है। इसलिये केतु के १७१२ मील के बिम्ब से, पृथिवी से सूर्य का १०७५५५५५ मील का बिम्ब आच्छादित मालूम होता है।

वैसे ही पूर्णमासी को पृथिवी से चन्द्रमा ६४०००००० मील की दूरी पर रहता है। इसलिये राहु से चन्द्रमा का ७५४२८६ मील का घेरा आच्छादित मालूम होता है। केतु और राहु के कारण आमावास्या और पूर्णमासी को कभी कभी सूर्यग्रहण और चन्द्र-ग्रहण होते हैं, प्रत्येक आमावास्या और पूर्णमासी को सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण नहीं हो सकते।

कई एक वैज्ञानिकों के मतानुसार चन्द्रमा पृथिवी के गिर्द घूमता है। आमावास्या को चन्द्रमा, पृथिवी और सूर्य के मध्यस्थ होने से सूर्य आच्छादन करता है। इसलिये आमावास्या को सूर्य ग्रहण होता है। वैसे पूर्णमासी को, चन्द्रमा और सूर्य के मध्य-स्थ पृथिवी के होने से पृथिवी की छाया चन्द्रमा को आच्छादित कर पूर्णमासी को चन्द्रग्रहण होना बताते हैं। परन्तु यह सिद्धान्त ग़लत है। क्योंकि यदि पूर्णमासी को पृथिवी की छाया चन्द्रमा के ऊपर पड़ती तो चन्द्रमा का नित्य पृथिवी से बराबर दूरी पर घूमने के कारण प्रत्येक पूर्णमासी को पृथिवी की छाया अपनी नियत मर्य्यादा तक पहुंचने से चन्द्रमा को आच्छादन कर चन्द्रग्रहण होता, और प्रत्येक पूर्णमासी को एक ही तरह का

ग्रहण होता किसी पूर्णमासी को अर्द्ध-वृत्ताकार और किसी को पूर्णवृत्ताकार नहीं होता ।

क्यों कि पृथिवी की छाया प्रत्येक पूर्णमासी को अपनी नियत मर्य्यादा तक पहुंचती और चन्द्रमा नित्य पृथिवी के गिर्द अपनी समान चाल से समान दूरी पर घूमता होता। इसलिये यह बात बिलकुल सिद्ध होती कि प्रत्येक पूर्णमासी को चन्द्रग्रहण होता और नित्य एक ही शक्ल का ग्रहण होता। वह कभी गोल और कभी अर्द्ध गोल शक्ल में नहीं होता।

वैसे ही आमावास्या को जब चन्द्रमा के आच्छादन से सूर्य ग्रहण माना जाय तो वह भी असम्भव है। क्योंकि ग्रहण के रोज ग्रहण को देखने से मालूम होता है कि यदि अधिक से अधिक समय तक ग्रहण रहा तो दो वा चार घण्टे तक रह सकता है। फिर सूर्य और आच्छादन करने वाले पिण्ड की जुदाई होजाती है। इससे सिद्ध हुआ कि यदि चन्द्रमा से सूर्य आच्छादित होता तो अधिक से अधिक सात व आठ घण्टे में चन्द्रमा की सूर्य से जुदाई होने पर, आमावास्या को पृथिवी से चन्द्रमा दिखाई देना चाहिये था, क्योंकि चन्द्रमा की सूर्य से जुदाई हो जाती है। लेकिन ऐसा नहीं होता। आमावास्या के आरम्भ से चन्द्रमा कम से कम २४ घण्टे में पृथिवी से दिखाई देता है। यदि आमावास्या को २४ घण्टे तक चन्द्रमा सूर्य के साथ रहता है और सूर्य की कान्ति से चन्द्रमा कान्तिहीन होने से नहीं दिखाई देता तो प्रत्येक आमावास्या को सूर्यग्रहण कम से कम २४ घण्टे का होता, लेकिन ऐसा भी नहीं होता है।

इसलिये चन्द्रमा न पृथिवी का उपग्रह है, न पृथिवी के गिर्द घूमता है। एवं, न सूर्यग्रहण का कारण चन्द्रमा है और न चन्द्रग्रहण का कारण पृथिवी की छाया है।

जिन विद्वानों ने चन्द्रमा को पृथिवी का उपग्रह मानकर सूर्य ग्रहण और चन्द्रग्रहण को सिद्ध किया है, उन्होंने राहु, केतु की चालों को चन्द्रमा की चाल माना है। क्यों कि चन्द्रमा सूर्य के गिर्द, और राहु व केतु पृथिवी के गिर्द अपने २ क्रान्ति-वृत्तों के अंशों में करीब २ एक ही सम्बन्ध से घूम रहे हैं।

पूर्व समय के वैज्ञानिक गणितज्ञों ने सूर्यग्रहण और चन्द्र-ग्रहण का नियत समय सिद्ध करने के लिये व ग्रहों की चाल को समझाने के लिए पृथिवी को स्थिर माना है और पृथिवी का क्रान्ति-वृत्त निश्चित किया है। गणित में पृथिवी के अंश, कला, विकला को माना है। क्योंकि ग्रहों के क्रान्तिवृत्त भिन्न भिन्न हैं और वे एक ही क्रान्तिवृत्त में नहीं घूम रहे हैं।



अध्याय १८



पिण्डों का परस्पर सम्बन्ध ।

—:0:—

आकाश में हमारे सूर्य की तरह अनेक सूर्य बने। हमारी पृथिवी की तरह अनेक ठोस पिण्ड बने और कितने ही जल के पिण्ड बने हैं। उन पिण्डों में अनगिनत पिण्ड हमारे सूर्य और पृथिवी से बड़े और कितने ही उनसे छोटे हैं। समस्त महा आकाश में असंख्य सूर्य और अन्य पिण्ड उत्पन्न हुये। एक सूर्य जितने पिण्डों पर तेज व प्रकाश डाल सका उतने पिण्ड एक सूर्य के शासन में हो गये। उनका नाम एक ब्रह्माण्ड कहा गया। इसी तरह अनेक ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुये।

सूर्य महातेज-पुञ्ज पिण्ड है। वह अपने स्थान में बड़ी तेजी से घूम रहा है। सूर्य के प्रबल आकर्षण से उसके समीपी पिण्डों का खिचाव उसकी ओर होने लगा और वायु अपने बल के प्रभाव से पिण्डों को दूसरी ओर खींचने लगा। लेकिन पृथिवी आदि पिण्ड अपने बल के प्रभाव से आकाश में एक नियत स्थान में सूर्य की ओर से वायु की ओर घूमने लगे। इस क्रम से पृथिवी के एक अर्धभाग को सूर्य अपनी ओर

खींचता है और वायु उसके दूसरे अर्धभाग को अपनी ओर। इसी तरह पृथिवी आदि पिण्ड दिन रात के चक्कर में घूमने लगे।

पिण्डों का जो अर्धभाग सूर्य के सन्मुख हुआ उसमें प्रकाश व तेज पहुंचने से दिन हुआ। और दूसरी ओर के हिस्से में अप्रकाश व अतेज होने से अन्धकार व रात्रि हुई। इस तरह जितने छोटे बड़े पिण्ड महाकाश में हैं, उनकी परिधि के हिसाब से उनमें उतने ही छोटे बड़े दिन रात होने लगे।

वायु के प्रबल धक्कों से पिण्ड अपने अपने स्थानों में दिन रात के चक्करों में घूमने के अतिरिक्त वृत्ताकार सूर्य के गिर्द घूमने लगे। पिण्डों के सूर्य के गिर्द वृत्ताकार मार्ग में घूमने से पक्ष, मास, ऋतु, साल बनने लगे और अतीत समय से पिण्डों के अपने इस नियत क्रम पर घूमने से सम्वत्सर, युग बनने लगे।

प्रत्येक पिण्ड भिन्न २ चालों से सूर्य के गिर्द घूमने लगे। पिण्डों के छोटा बड़ा होने से उनकी चालों में अन्तर आने लगा। जिस समय एक पिण्ड में दिन होता है तो दूसरे पिण्ड में रात्रि होने लगी। कभी एक पिण्ड में दिन होता है तो दूसरे पिण्ड में भी दिन हो जाता है। और कभी एक पिण्ड में रात्रि होती है तो दूसरे पिण्डों में भी रात्रि हो जाती है। पिण्डों के तेजी से घूमने के कारण उनका गोल आकार बन गया। कभी २ एक पिण्ड दूसरे पिण्ड के अर्द्ध गोल से छिप जाता है। इसी क्रम पर सब पिण्डों व पृथिवी में दिन रात होने लगे।

सूर्य पृथिवी के अर्द्ध गोल हिस्से में छिप जाता है। तब पृथिवी के उस हिस्से में दिन होता है। जिसके सन्मुख सूर्य होता है और जिस हिस्से से सूर्य छिपा है, उसमें रात्रि होती है। अर्थात् पृथिवी के जिस अर्द्ध गोल भाग में पृथिवी की छाया पड़ती है, उसमें रात्रि हो जाती है।

पृथिवी के दिन रात के चक्कर में घूमने की चाल से और वृत्ताकार सूर्य के गिर्द घूमने की चाल से, अर्थात् इन दोनों चालों के घूमने से उस में कभी दिन बड़ा, कभी रात्रि बड़ी, कभी दिन छोटा कभी रात्रि छोटी और कभी दिन रात बराबर होते हैं।

जब पृथिवी अपनी चाल के घुमाव से अपना अधिक अर्द्ध भाग सूर्य के सन्मुख ले जाती है, तब पृथिवी के उस अधिक हिस्से में सूर्य के सन्मुख होने से अधिक गर्मी मालूम होती है। पृथिवी के उस अधिक हिस्से को सूर्य से विमुख होने में अथवा सूर्य से छिपने में भी अधिक समय लगता है। इसलिये उस मौसिम में दिन बड़े होते हैं और उन दिनों में गर्मी अधिक होती है। लेकिन उस मौसम में पृथिवी के दूसरे न्यून अर्द्ध भाग में रात्रि छोटी होती है और उस मौसम में उस भाग में तेज भी कम समाता है।

फिर पृथिवी के घुमाव से पृथिवी का कमती वाला गोलार्द्ध सूर्य के सामने होता है। कमती होने के कारण पृथिवी का वह हिस्सा सूर्य के सामने से जल्दी छिप जाता है। इसलिये उस

हिस्से में उन दिनों सूर्य का तेज कमती समाता है और दिन भी छोटे होते हैं। उन दिनों पृथिवी के अधिक गोलार्द्ध में रात्रि बड़ी होती है। यही कारण है कि उस मौसिम में पृथिवी के उत्तरी गोलार्द्ध में दिन छोटे होते हैं और गर्मी कम पड़ती है।

फिर पृथिवी की चाल से पृथिवी का ठीक अर्द्ध गोल हिस्सा सूर्य के सामने हो जाता है। उस मौसम में दिन रात बराबर होते हैं और सर्दी गर्मी भी समान होती हैं। इन्हीं चालों से पृथिवी बराबर सूर्य के गिर्द घूम रही है।

पृथ्वी की तरह चन्द्रमा मंगल बुध वृहस्पति शुक्र शनैश्चर आदि पिण्डों में भी इन चालों से सूर्य के गिर्द घूमने से दिन रात का क्रम जारी है। वे सब पिण्ड सूर्य्य के तेज और प्रकाश से प्रकाशित होते हैं। इन पिण्डों में भी पृथिवी की तरह अपना तेज व प्रकाश इतना ज्यादा नहीं है कि वे अपने आप को सूर्य की सहायता के बिना प्रकाशित कर सकें। पिण्डों की चालों के घुमाव से उन का उदय अस्त होना भी होता है।

पृथ्वी की रात्री का स्वभाव अन्धकारमय होने पर भी पूर्णमासी को पृथ्वी की रात्रि प्रकाशित होती है। इसका कारण क्या है? पूर्णमासी को पृथ्वी के अन्धकार (रात्रि) वाले हिस्से के सन्मुख चन्द्रमा के अर्द्ध गोल में दिन होता है। इसलिये चन्द्रमा के दिन का प्रकाश, पृथ्वी की रात्रि के अन्धकार को आच्छादन कर प्रकाश डालता है।

पूर्णमासी को पृथ्वी के अर्द्ध गोल (हमारी प्रकाशित रात्रि)

के सिवाय पृथ्वी के दूसरे अर्द्धगोल रात्रि वाले भाग में भी प्रकाश होता है, क्यों कि हमारी पूर्ण गोलाकार पृथ्वी की ओर चन्द्रमा का अर्द्धगोलाकार दिन वाला हिस्सा होता है और चन्द्रमा का रात्रि वाला अन्धकार हिस्सा दूसरे पिण्डों की ओर होता है।

चन्द्रमा में जो प्रकाश है, वह केवल चन्द्रमा का ही प्रकाश नहीं है। वह चन्द्रमा और सूर्य्य के प्रकाश के योग से उत्पन्न होता है। अगर चद्रमा में अपना ही प्रकाश होता तो कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष की सब तिथियों में पूर्णमासी की तरह चन्द्रमा के पूर्ण विम्ब पर प्रकाश होता। लेकिन यह नहीं होता, क्यों कि चन्द्रमा के अर्द्धगोल पर सूर्य्य के प्रकाश से प्रकाश उत्पन्न होता है। और, अर्द्धगोल जो सूर्य्य के विमुख रहता है उस में सूर्य्य के प्रकाश के बिना प्रकाश उत्पन्न नहीं होता। उस में रात्रि बनी रहती है।

आमावास्या को चन्द्रमा पृथ्वी की दोनों अर्द्धगोल रात्रियों में सूर्य के विम्ब से आच्छादित रहता है। आमावास्या से प्रतिपदा की रात्रि को चद्रमा के दिन का पन्द्रहवां हिस्सा पृथ्वी की ओर प्रकाशित होता है, किन्तु सूर्य्य के साथ उदय अस्त होने से सूर्य्य के प्रकाश के कारण दिखाई नहीं देता। इसी से कभी कभी प्रतिपदा को चन्द्रमा अदृश्य रहता है।

प्रतिपदा से पूर्णमासी तक प्रतिदिन चन्द्रमा के दिन का पन्द्रहवां हिस्सा पृथ्वी की ओर प्रकाशित होता है। और प्रतिपदा से पूर्णमासी तक प्रतिदिन पौन घण्टा सूर्य्य से पीछे उदय,

अस्त होता है। और, होते होते पूर्णमासी के दिन पृथिवी की रात्रि की और चन्द्रमा का पूर्ण दिन हो जाता है।

फिर पूर्णमासी की प्रतिपदा से आमावास्या तक चन्द्रमा की रात्रि का पन्द्रहवां हिस्सा पृथिवी की ओर होता है, और सूर्य्य अस्त होने से प्रतिदिन पौन घंटा पीछे उदय होता जाता है।

चन्द्रमा पृथिवी से तीस गुना बड़ा है। पृथिवी २४ घण्टे में एक दिन और एक रात्रि करती है। अथवा अपनी गोलाई का एक चक्कर घूमती है। और चन्द्रमा पृथिवी के पन्द्रह दिन में पूर्णमासी का एक दिन कर सकता है और पृथिवी के पन्द्रह दिन में आमावास्या की एक रात्रि कर सकता है, अथवा तीस दिन में चन्द्रमा अपनी गोलाई का एक चक्कर दैनिक गति में घूमता है।

पृथिवी चन्द्रमा से सूर्य्य के समीप है और चन्द्रमा पृथिवी के मुकाबले सूर्य्य से दूर है। चन्द्रमा का सूर्य्य के गिर्द घूमने वाला वृत्ताकार मार्ग भी पृथिवी के सूर्य्य के गिर्द घूमने वाले मार्ग से बड़ा है।

सूर्य्य के गिर्द घूमने में पृथिवी और चन्द्रमा अपने अपने वृत्ताकार मार्गों में एक दूसरे के विपरीत घूमते हैं। चन्द्रमा आमावास्या और पूर्णमासी के कारण तीस दिन में सूर्य्य के गिर्द घूमकर एक पूरी प्रदक्षिणा करता है, और पृथिवी एक वर्ष में सूर्य्य के गिर्द घूम कर एक पूरी प्रदक्षिणा करती है।

चन्द्रमा में १५ दिन का शुक्लपक्ष और १५ दिन का कृष्णपक्ष

होता है । किन्तु पृथिवी में ६ माह का शुक्लपक्ष उत्तरायण होता है, और ६ माह का कृष्णपक्ष दक्षिणायण होता है ।

सूर्य्य पृथिवी और चन्द्रमा के घुमाव की चालों से ही दिशाओं का ज्ञान होता है । पृथिवी के सामने सूर्य्य के आने की ओर को पूर्वदिशा कहा गया, और पृथिवी से सूर्य्य के लोप व छिपने की ओर को पश्चिम दिशा कहा गया । पृथिवी के अपने क्रान्तिवृत्त में उत्तरायण घूमने से उत्तर दिशा कहा गया, और चन्द्रमा के दक्षिणायण घूमने से दक्षिण दिशा कहा गया । इसी तरह दिशायें निश्चित की गई हैं ।

मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर आदि पिण्ड भी पृथिवी और चन्द्रमा की तरह दोनों चालों से सूर्य्य के गिर्द घूमने वाले हैं । इन में भी दिन रात होने का क्रम जारी है । ये सब पिण्ड सूर्य्य के तेज से प्रकाशित होते हैं । इन में भी हमारी पृथिवी की तरह सूर्य्य प्रकाश और तेज डालता है ।

वे सब पिण्ड अपने अपने मार्गों में हमारी पृथिवी से बहुत दूर हैं । इसलिये पृथिवी से बहुत छोटे दिखाई देते हैं, जिन को हम तारा व ग्रह कहते हैं । वे ग्रह कभी उदय और कभी अस्त होते हैं । पृथिवी और उन ग्रहों की सूर्य्य के गिर्द घूमने की चालों से जब पृथिवी की रात्रि वाले अर्धगोल के सन्मुख इन ग्रहों का दिन वाला अर्धगोल हिस्सा होता है तब उन के दिन वाला अर्धगोल हिस्सा चमचमाते तारा रूप में पृथिवी से दिखाई देता है । उस समय वे ग्रह उदय हुए माने जाते हैं ।

और जब पृथिवी के रात्रि वाले अर्धगोल के सन्मुख उन ग्रहों का भी रात्रि वाला अर्धगोल हिस्सा होजाता है, तब अन्धकार होने से वे ग्रह पृथ्वी से दिखाई नहीं देते। अथवा एक पिण्ड के अर्धगोल से जब दूसरा पिण्ड अदृश्य हो जाता है, उस समय वे ग्रह अस्त हुये माने जाते हैं।

वृहस्पति और शुक्र ग्रहों में कभी कभी तीन तीन माह तक पृथ्वी की रात्रि से रात्रि होती रहती है। या पृथ्वी के तीन तीन माह तक पृथ्वी की ओर वृहस्पति व शुक्र का रात्रि वाला हिस्सा होता है और दिन वाला अर्धगोल हिस्सा दूसरे पिण्डों की ओर होता है। और फिर सूर्य्य के गिर्द पृथ्वी, वृहस्पति, शुक्र, इन ग्रहों के घुमाव की चालों से पृथ्वी की रात्रि से इन ग्रहों का दिन वाला हिस्सा होजाता है। और फिर कभी पृथ्वी की अर्द्धरात्रि से इन पिण्डों का दिन वाला हिस्सा दिखाई देता है।

इसीतरह पृथ्वी, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर ये सब पिण्ड अपनी अपनी चालों से सूर्य्य के गिर्द घूमते रहते हैं। कभी एक ग्रह के दिन वाले हिस्से की ओर दूसरे पिण्ड का रात्रि वाला हिस्सा होता है। कभी एक ग्रह के रात्रि वाले हिस्से के सन्मुख दूसरे पिण्ड का दिन वाला हिस्सा होता है। कभी एक ग्रह की रात्रि से दूसरे ग्रहों की रात्रि हो जाती है। और कभी एक पिण्ड के अर्द्धगोल से दूसरा पिण्ड छिप जाता है।

ये सब पिण्ड अपने अपने मार्गों में एक दूसरे से इतने दूर हैं कि घूमने पर एक दूसरे से कभी नहीं टकरा सकते। इन सब

पिण्डों के अपनी अपनी चालों में घूमने के मार्ग, किसी के सूर्य्य से समीप हैं और किसी के सूर्य्य से दूर हैं। कोई पिण्ड बहुत बड़े हैं और कोई पिण्ड छोटे हैं। अपनी अपनी परिधि के हिसाब से इन सब में दिन रात बड़े छोटे होते रहते हैं। इन सब पिण्डों की दोनों चालों का एक साथ घुमाव बड़ा कौतुक जनक है। मानों वे सब पिण्ड आकाश की क्रीडास्थली में परस्पर मिलजुल कर खेल रहे हों।

कभी एक पिण्ड में दिन होता है, तो दूसरा पिण्ड उस के सन्मुख रात्रि करता है, कभी एक पिण्ड दूसरे पिण्ड से छिप जाता है। कभी एक पिण्ड सूर्य्य के उत्तर घूमता है, तो दूसरा दक्षिण घूमता है। वास्तविक इन सब पिण्डों में परस्पर बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है।

सूर्य्य के तेज और आकर्षण के सिवाय इन सब पिण्डों का भी आपस में प्रकाश तेज और आकर्षण होता है। सब पिण्ड परस्पर एक दूसरे से अपने २ प्रकाश तेज और आकर्षण का सम्बन्ध रखते हैं। इन सब पिण्डों में सूर्य्य के तेज के अतिरिक्त अपना भी तेज होता है। किन्तु सब पिण्डों में बराबर नहीं होता किसी में ज्यादा और किसी में कम होता है। हरेक पिण्ड अपने अपने आकर्षणों से सूर्य्य का प्रकाश और तेज खींचने में बड़ी सहायता पाते हैं।

जिस पिण्ड में अपना जितना ज्यादा आकर्षण होता है, वह उतना ही ज्यादा सूर्य्य का तेज अपने ऊपर खींच सकता

है। जिस में जितना अधिक तेज होता है उस में उतना ही अधिक आकर्षण होता है। और जो जितना छोटा ग्रह है, उस में उतना ही कम तेज है। वह उतना ही कम सूर्य्य का तेज खींच सकता है। किन्तु जिस ग्रह को जितने तेज व प्रकाश की आवश्यकता है, उस में उतना ही तेज व प्रकाश होता है। इसलिये हरेक पिण्ड का तेज व प्रकाश की अपनी अपनी आवश्यकतानुसार न्यूनाधिकता नहीं होती।

हमारी पृथ्वी में जिसतरह पञ्चतत्व हैं और उन तत्वों से स्थूल रूप में पृथ्वी की समस्त प्राप्य वस्तु बनी हैं, उसी तरह सब ग्रहों में तत्व हैं। और उन तत्वों से वहां की प्राप्य वस्तु बनी हैं।

हमारी पृथिवी में जिस तरह जीवधारी हैं और भिन्न भिन्न सूरत के हैं, उसी तरह सब पिण्डों में जीवधारी हैं और भिन्न भिन्न तरह के हैं।

हमारी पृथिवी में जिसतरह पांच तत्व बराबर नहीं हैं। उसीतरह अन्य ग्रहों में भी तत्व बराबर नहीं हैं। किसी ग्रह में कोई तत्व अधिक है और किसी में कोई तत्व कमती है। अथवा किसी ग्रह में सुख सम्बन्धी तत्व अधिक है, किसी में दुःख सम्बन्धी तत्व अधिक है, और किसी ग्रह में सुख दुःख सम्बन्धी तत्व बराबर हैं।

जिन ग्रहों में सुख सम्बन्धी तत्व अधिक हैं, उन ग्रहों की वस्तु उन तत्वों से बनी हुई अधिक सुख सम्बन्धी हैं। जिन

ग्रहों में दुख सम्बन्धी तत्व अधिक हैं, उन तत्वों से बनी हुई उन ग्रहों की वस्तु अधिक दुःख सम्बन्धी हैं। और जिन ग्रहों में सुख दुःख सम्बन्धी तत्व बराबर हैं, उन ग्रहों में उन तत्वों से बनी हुई वस्तु सुख दुःख सम्बन्धी बराबर हैं।

जो पिण्ड जितने बड़े हैं, उनमें उतने ही बड़े दिन रात होते हैं। उन पिण्डों में उतना ही अधिक सुख सम्बन्धी तत्व व प्राप्य वस्तु हैं। और उन पिण्ड निवासी जीवधारियों की आयु उसी सम्बन्ध से अधिक है। जो जितने छोटे पिण्ड हैं, उनमें उतने ही छोटे दिन रात होते हैं। उन पिण्डों में उतना ही अधिक दुःख सम्बन्धी तत्व व प्राप्य वस्तु हैं। और उन पिण्ड--निवासी जीवधारियों की आयु उसी सम्बन्ध से न्यून है।

पृथिवी, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, इन पिण्डों के अलावा हमारे सूर्य मण्डल में दो ग्रह और हैं जिनको राहु और केतु के नाम से कहते हैं। वे दोनों पिण्ड पृथिवी के गिर्द घूमने वाले हैं। उनमें अपना तेज व प्रकाश बहुत कमती है और सूर्य के तेज व प्रकाश से भी वे अन्य पिण्डों की तरह प्रकाशित नहीं होते। उनमें अन्धकार बना रहता है। वे दोनों ग्रह अन्य ग्रहों के मुकाबले में बहुत छोटे हैं और पृथिवी से बहुत समीप हैं।

इन ग्रहों के पृथिवी के गिर्द घूमने में कभी कभी पृथिवी और सूर्य के बीच हो जाने से पृथिवी से सूर्य अदृश्य हो जाता है, या सूर्य का कुछ हिस्सा अदृश्य होता है, उसको सूर्य-ग्रहण कहते हैं। फिर वे पृथिवी के गिर्द अपने अपने घुमाव

की चालों से कभी पृथिवी और चन्द्रमा के बीच हो जाते हैं जिससे चन्द्रमा या चन्द्रमा का कुछ हिस्सा पृथिवी से नहीं दिखाई देता, उसको चन्द्रग्रहण कहते हैं।

पृथिवी, चन्द्रमा, राहु, केतु इन सब ग्रहों के घुमाव की चालों से ऐसा समय कभी कभी आता है। वह समय नियत नहीं है। उन दोनों ग्रहों में दुःख सम्बन्धी तत्व व उन तत्वों से बनी हुई वहां की प्राप्य वस्तु विशेष दुःख सम्बन्धी हैं। अन्य ग्रहों की तरह इन ग्रहों में भी जीवधारी हैं।

राहु गोल पिण्ड है। केतु मुद्गराकार व मूली की शक्ल की तरह है। राहु से केतु में कुछ विशेष तेज होता है। इसलिये कभी कभी प्रकाशित हो जाता है। और उस समय प्रकाशित होता है, जब पिण्ड अपने घुवाव की चालों से ऐसे सम्बन्ध में होते हैं कि एक पिण्ड दूसरे पिण्ड को अपने तेज और आकर्षण से एक दूसरे की ओर खींचने लगता है। पिण्डों के इस परस्पर तेज व आकर्षण के खींचातानी-युद्ध से एक दूसरा पिण्ड, एक दूसरे पिण्ड के कमजोर हिस्सों को अपने ऊपर खींच लेता है और उस समय विशेषतया बलवान पिण्ड कमजोर पिण्ड के हिस्सों को खींचता है, जिससे उल्कापात होता है।

उस समय केतु ग्रह अपने घुमाव की चालों से उन ग्रहों के तेज व आकर्षण (बिजली) के बीच होने से अपने ऊपर सूर्य का प्रकाश खींचने के लिये एक नवीन तेज प्राप्त कर लेता है।

अथवा पिण्डों के तेज के संयोग से और सूर्य के तेज से केतु

ग्रह प्रकाशित हो जाता है, उसको पुच्छलतारा भी कहते हैं। किन्तु यह ग्रह अन्य ग्रहों की तरह केवल सूर्य के तेज से प्रकाशित नहीं हो सकता, वह तब ही प्रकाशित हो सकता है, जब अन्य पिण्डों के तेज से तेजित होकर सूर्य का प्रकाश और तेज खींचने में समर्थ होता है। उसी समय पुच्छलतारा रूप में दिखाई देता है। ऐसा समय कभी कभी आता है क्योंकि ग्रहों का ऐसे सम्बन्ध में होना नियत नहीं है।

हमारे सूर्यमण्डल व ब्रह्माण्ड के अतिरिक्त आकाश में अनन्त सूर्यमण्डल व ब्रह्माण्ड हैं, जिनको हम सप्तऋषि कहते हैं। वह भी एक सूर्यमण्डल व ब्रह्माण्ड है। वह हमारे सूर्यमण्डल का समीपी ब्रह्माण्ड है। हमारे सूर्यमण्डल की तरह सप्तऋषिमण्डल में ग्रह हैं। उसमें ८ ग्रह हैं। एक ध्रुवतारा और सात ग्रह सप्तऋषि तारों के नाम से कहे जाते हैं।

ध्रुवतारा उन सप्तग्रहों का सूर्य है। उसके तेज और प्रकाश से वे सप्तग्रह भी प्रकाशित होते हैं। हमारे सूर्य की तरह ध्रुवतारा भी एक बड़ा तेजोपुञ्ज प्रकाशमय सूर्य है। वह अपने नियत स्थान में बड़ी तेजी से घूम रहा है। घूमने के कारण वह अपने समीपी पिण्डों में सुगमता से तेज व प्रकाश डाल सकता है।

ध्रुवतारा हमारे सूर्यमण्डल से बहुत दूर है। परन्तु अपने अत्यन्त तेज व प्रकाश के कारण हमारी पृथिवी तक दिखाई देता है। वह हमारे सूर्य की तरह अपने नियत स्थान पर है। इस

लिये पृथिवी से भी नित्य एक ही स्थान में दिखाई देता है। पृथिवी से सूर्य के मुकाबले ध्रुवतारा बहुत दूर है इसलिये पृथिवी के घुमाव से वह सूर्य की तरह घूमता हुआ मालूम नहीं होता, अतः नियत स्थान में दिखाई देता है।

ध्रुवतारा अपने नियत स्थान पर घूमने वाला एक बड़ा तेजोपुञ्ज प्रकाशमय सूर्य है। वह अपने तेज और प्रकाश से सप्त-ऋषि पिण्डों पर प्रकाश व तेज डालता है और अपने तेज व आकर्षण से उन सब पिण्डों को अपनी ओर खींचे हुए रहता है। वे सातों पिण्ड ध्रुव सूर्य के गिर्द घूमते हैं।

उन पिण्डों में भी हमारे सूर्यमण्डल के पिण्डों की तरह दिन रात होने का क्रम प्रचलित है। वे पिण्ड भी सब आपस में बराबर नहीं है। एक दूसरे से एक दूसरे में छोटाई, बड़ाई का अन्तर है। कोई पिण्ड ध्रुव सूर्य के समीप हैं, और कोई दूर हैं। सब पिण्ड अपने अपने मार्गों में ध्रुव सूर्य के गिर्द घूमते हैं और एक दूसरे से इतने भिन्न भिन्न दूर हैं कि अपने घुमाव से कोई पिण्ड किसी पिण्ड से टकरा नहीं सकते और न अन्य ब्रह्माण्ड व हमारे ब्रह्माण्ड के पिण्डों से टकरा सकते हैं।

ध्रुवमण्डल के सप्तग्रहों में तत्व व उन तत्वों से बनी हुई वहां की प्राप्य वस्तु होती हैं। उन सब पिण्डों में जीवधारी बसते हैं। किन्तु सब पिण्डों में तत्व प्राप्य वस्तु और जीवधारी एक ही तरह के नहीं होते, पिण्डों के सम्बन्ध से उनमें भिन्नता होती है।

इसी तरह महाकाश में अनन्त पिण्ड और ब्रह्माण्ड हैं। वे सब एक दूसरे से कुछ न कुछ अन्तर और सम्बन्ध रखते हैं। हम जितने तारे देखते हैं वे सब पिण्ड हैं और कोई उन पिण्डों के सूर्य हैं। उन में से कोई सूर्य की तरह अग्नि के गोले हैं और कोई पृथिवी चद्रमा मंगल बुध वृहस्पति शुक्र शनैश्चर की तरह हैं। शक्ल आकार में वे सब पिण्ड एक से नहीं हैं, तरह २ के हैं। कितने ही सूर्यादि पिण्ड गेन्द की तरह गोल हैं, पृथिवी गोल कद्दू के आकार की है, केतु मूली के आकार का है। इसी तरह सब पिण्ड महाकाश में भिन्न भिन्न शक्ल के हैं।

ध्रुवतारा की तरह पृथिवी से बहुत तारे स्थिर दिखाई देते हैं। वे तारे भी अपने अपने स्थानों में घूमने वाले सूर्य हैं और अपने समीपी पिण्डों में तेज व प्रकाश डालते हैं। वे पृथिवी से बहुत दूर हैं, इसलिये बहुत छोटे दिखाई देते हैं। बहुत से पिण्ड पृथिवी से इतने दूर हैं कि वे दिखाई भी नहीं देते।

महा आकाश के पिण्डों में कोई पिण्ड इतने बड़े बड़े हैं कि हमारी पृथिवी की पूर्ण आयु होने तक उनमें एक दिन हो सकता है, और हमारी पृथिवी के लय रहने तक उनकी एक रात्रि हो सकती है। अथवा हमारी पृथिवी का एक जन्म से दूसरे जन्म होने तक उन पिण्डों की परिधि का एक चक्कर घूम सकता है। अथवा उन पिण्डों में एक दिन और एक रात्रि हो सकती है। परन्तु वे पिण्ड पृथिवी से इतने दूर हैं कि वे पृथिवी से दिखाई भी नहीं देते या बहुत छोटे तारारूप में दिखाई देते हैं।

हम तारों को जितने छोटे देखते हैं वे उतने छोटे नहीं हैं। वे सब बड़े बड़े पिण्ड हैं। उन पिण्डों में बहुत से उन पिण्डों के सूर्य हैं और बहुत से बड़े बड़े पिण्ड हैं।

आकाश में असंख्य पिण्ड होने पर भी उन सब का ऐसा अच्छा प्रबन्ध है कि वे अपने अपने क्रान्तिवृत्तों में घूमने पर एक दूसरे से नहीं टकराते। नित्य एक दूसरे से सामानान्तर दूरी पर रहते हैं और सब एक दूसरे के आकर्षण पर टिके हैं। जिस तरह सूर्य अपने आकर्षण से अपने पिण्डों को अपनी ओर खींचे रहता है, उसी तरह एक ब्रह्माण्ड दूसरे ब्रह्माण्ड को अपनी ओर आकर्षित करता रहता है। आकाश में सब पिण्ड परस्पर एक दूसरे के आकर्षण से अपने अपने क्रान्तिवृत्त मार्गों में कार्य--प्रवृत हैं।



अध्याय १९

स्थूल शरीर की उत्पत्ति और विनाश ।

प्राणियों के स्थूल शरीर की उत्पति के मुख्य दो कारण हैं। पहिला पिता का शुक्र और दूसरा माता का रज। दोनों के योग से माता के गर्भ में स्थूल पञ्च भौतिक शरीर वाले प्राणियों की उत्पति होती है।

शुक्र की एक अवस्था होती है। उसमें चैतन्य सत्ता, दिव्य स्वरूप, और तेज होता है।

किन्तु माता के रज की परिवर्तन शील दो प्रकार की गतियां होती हैं और प्रत्येक गति में चौदह २ प्रकार की क्रियायें होती हैं। रज की एक प्रकार की गति वाली चौदह क्रियायों में उत्पादन शक्ति और दूसरे प्रकार की गति वाली चौदह क्रियाओं में विनाशकृत शक्ति होती है। उस अवस्था में रज पूर्ण तमोगुण युक्त होने से स्त्रियों के ऋतु काल में उनकी योनियों से विनाश व पतित हो जाता है।

रज में अतेज, विनाशी गुण, अन्धकार स्वरूप होता है और उस की गति परिवर्तन शील होती है ।

शुक्र में जो स्थूलपन होता है उसमें भी पुरुष के शरीर सम्बन्धी कुछ माया कृत रज का पञ्च भौतिक अंश होता है। यदि शुक्र में मिला हुआ शरीर का माया कृत पञ्च भौतिक भाग अलग किया जाय तो शुक्र में केवल एक अवस्था युक्त दिव्य स्वरूप, शुद्ध, चैतन्य सत्ता रह जाये ।

वैसे ही स्त्रियों के शरीर को उत्पन्न करने वाले शुक्र की पञ्च भौतिक सत्ता को उनके रज से पृथक् किया जाये तो रज में केवल विनाशकारी अन्धकार स्वरूप ही रहे ।

जिस की एक अवस्था हो, तेज युक्त—दिव्य स्वरूप हो और जिस में चैतन्य सत्ता हो, उसके गुण को सत्वगुण कहते हैं ।

जिस में बढ़ना घटना आदि परिवर्तन शील गति हो, जड़ हो , अन्धकार स्वरूप हो और विनाशकारी गुण हो, उसके गुण को तमोगुण कहते हैं ।

स्मरण रहे कि माता के रज में विनाश कारी तमोगुण होता है, जिस के कारण स्त्रियों की योनियों से ऋतुकाल में रज की विनाश गति होती है । किन्तु रज की विनाश गति के पश्चात् योनि में उस की विनाश करने वाली क्रिया, उत्पादन क्रिया में परिवर्तित हो जाती है । यदि स्त्रियों के शरीर की बनावट में शुक्र

का सत्वगुण अंश न होता तो रज की विनाश गति पूर्ण तमोगुण के पश्चात् परिवर्तित नहीं हो सकती।

विश्वविराट् सृष्टि की उत्पति और विनाश में महाप्रकृति के परिवर्तनशील तमोगुण के भी ठीक यही दो प्रकार के भेद होते हैं। उन में कोई अन्तर नहीं होता।

महाप्रकृति के उग्र तमोगुण भेद से प्रकृति से उत्पन्न होने वाली सृष्टि का विनाश होता है। उसके पश्चात् उग्र तमोगुण में जो विनाश क्रिया होती है, वह अणु रूप से शेष क्रिया-रूप प्रकृति ब्रह्म चैतन्य की सत्ता से विनाश नहीं हो सकती। वह चैतन्य की सत्ता से विनाश गति से परिवर्तित हो कर सृष्टि की उत्पति के लिये उत्पादन क्रिया में समर्थ होती है।

जैसे स्त्रियों के ऋतु काल में रज का विनाश होने से योनि में रज की क्रिया समूल नष्ट नहीं होती बल्कि रज विनाश होने के पश्चात् उत्पादन क्रिया में बदल जाता है। रज में उन्हीं चौदह दिनों के अन्दर शुक्र की सत्ता से स्त्रियों के गर्भ में गर्भाधान रहता है। रज उत्पादन क्रिया के पश्चात् फिर विनाश गुण धारण करता है, जिस से वह अपनी गति के चौदह दिनों के अन्त में विनाश तमोगुण के कारण दो या तीन दिनों तक योनि से पतित होता रहता है। ऐसे ही ठीक चक्र विश्व विराट् के चौदह लोकों की उत्पति और विनाश में भी महाप्रकृति के हैं।

स्त्रियों की योनियों में सूक्ष्म क्रिया रूप तमोगुणी रज १४ दिन तक उत्पादन क्रिया में युक्त रहता है। उसके पश्चात्

उसमें विनाश क्रिया बन जाती है। वह भी चौदह दिन तक रहती है। रज उग्र तमोगुण युक्त होने से विनाश गति को प्राप्त होता है। रज के विनाश व पतित होने के पश्चात् उग्र तमोगुण शान्त हो कर फिर स्त्रियों की योनियों में रज की उत्पादन क्रिया शक्ति पैदा होती है।

इसी तरह स्त्रियों की योनियों में रज का चक्र चन्द्रमा के शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष की १४ तिथियों की तरह व माला के फेर की तरह बराबर घूमता रहता है। जब तक स्त्रियों की योनियों में रज का चक्र घूमता रहता है, तभी तक उनमें गर्भाधान की शक्ति बनी रहती है। लेकिन रज का माला के चक्र की तरह घुमावदार फेरा नहीं होता। योनि में रज के उत्पादन और विनाश तमोगुण क्रिया के दो भेद, चौदह चौदह दिनों में उन्हीं १४ स्थानों में होते हैं, जिनको योनि-चौदह-लोक भी कह सकते हैं। महा प्रकृति की योनी में भी चौदह ही लोक होते हैं, जिनके विस्तार में उत्पादन और विनाश होने वाला अखिल विश्व विराट् उत्पन्न और विनाश होता रहता है।

महा प्रकृति के उग्र तमोगुणी विनाशी क्रिया से समस्त विश्वविराट् विनाश होता है। उस के पश्चात् उग्र तमोगुण शान्त हो कर उत्पादन क्रिया सूक्ष्म अणु रूप से ब्रह्म चैतन्य की चैतन्य सत्ता में शेष सुरक्षित रह जाती है। वह फिर चैतन्य की सत्ता से उत्पादन गुण धारण कर प्रथम सत्यलोक की उत्पति करती है। उसके पश्चात् क्रमशः तप आदि लोकों को उत्पन्न करते हुए भूलोक की रचना तक प्रकृति का तमोगुण न्यून और

ब्रह्म चैतन्य की सत्ता से प्राप्त होने वाला सत्वगुण अधिक होता है। भूलोक की रचना में दोनों गुण समान होते हैं। उसके पश्चात् अतललोक से पाताल लोक तक की रचना में तमोगुण इसी सम्बन्ध से अधिक होता रहता है। जिस सम्बन्ध से भूलोक से सत्यलोक की रचना में सत्वगुण अधिक होता है।

पाताल लोक की अवधि के पश्चात् फिर महाप्रकृति का विनाशकारी उग्र तमोगुण प्रथम पाताल लोक का नाश करते हुए क्रमशः अन्तिम सत्यलोक का विनाश करता है।

किन्तु ऋतुकाल में रज पतित होने के पश्चात् स्त्रियों की योनियों में रज उत्पादन क्रिया से प्रथम योनि सत्यलोक उत्पन्न नहीं करता। माया कृत शरीर के विकार से प्रथम दिन स्त्रियों की योनियों में पाताललोक की रचना होती है। दूसरे दिन रसातल की, इसी तरह क्रमशः प्रतिदिन महातल, तलातल, सुतल, वितल, अतल, भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यलोक की रचना होती है। उसके पश्चात् स्त्रियों की योनियों में रज की विनाश क्रिया उत्पन्न हो जाती है।

योनि में रज की लोक-उत्पादन--क्रिया चन्द्रमा के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से चतुर्दशी तक प्रत्येक तिथि के चन्द्र विम्ब में युक्त, प्रकाश अप्रकाश के सम्बन्ध की तरह समझना चाहिये। जैसे शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के चन्द्र विम्ब में प्रकाश न्यून से न्यून और अन्धकार अधिक से अधिक होता है, प्रतिपदा से लेकर प्रत्येक तिथि में प्रकाश का भाग बढ़ता और अन्धकार

का भाग घटता रहता है, लेकिन सप्तमी तक प्रकाश न्यून और अन्धकार अधिक रहता है, उसके उपरान्त प्रकाश का भाग प्रति दिन अधिक २ बढ़ता रहता है और अन्धकार घटता रहता है, यहां तक कि चतुर्दशी को चन्द्र बिम्ब में प्रकाश अधिक और अन्धकार न्यून से न्यून रह जाता है।

वैसे ही स्त्रियों के ऋतुकाल के पश्चात् उज्ज्वल रज और तमोगुणी रज का भेद प्रति दिन प्रथम दिन से १४ दिन तक होता रहता है। रज में प्रथम दिन अन्धकार का अधिक अंश और उज्ज्वलता का न्यून अंश होता है लेकिन प्रथम दिन से रज में उज्ज्वल अंश बढ़ता है, और अन्धकार अंश न्यून होता रहता है। आठवें दिन रज में उज्ज्वल अंश अन्धकार-अंश से अधिक हो जाता है। उसके उपरान्त अन्धकार--अंश न्यून हो जाता है।

यहां पर मैं कुछ वर्णों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहता हूं। यदि स्त्रियों के ऋतुकाल के पश्चात् प्रथम दिन से तीन दिन तक स्त्रियों का गर्भाधान रहे तो वह सन्तति उत्पन्न अवस्था में मलीनता, मूर्खता, अज्ञानता युक्त होगी। यदि ४ दिन से ७ दिन के बीच गर्भाधान रहेगा तो सन्तति लोभी, चिन्ता युक्त, भीरु होगी। यदि आठवें दिन से ग्यारहवें दिन तक गर्भाधान रहेगा तो वह सन्तति शूरवीर, तेजस्वी और शासन की सत्ता जमाने वाली होगी। और यदि बारहवें दिन से चौदहवें दिन के अन्दर गर्भाधान रहेगा तो वह सन्तति परम बुद्धिमान, ज्ञानी, अग्रदर्शी और तत्व विज्ञान को जानने वाली होगी।

उन दिनों में भी प्रथम दिन के गर्भाधान की अपेक्षा तीसरे दिन की गर्भाधान वाली सन्तति में अन्तर आ जाता है। वैसे चार दिन की गर्भाधान वाली और सात दिन की गर्भाधान वाली सन्तति में अन्तर हो जाता है। वैसे ही आठ, ग्यारह, बारह और चौदह दिन की गर्भाधान वाली सन्तति में अन्तर पड़ जाता है। वास्तविक एक २ दिन के गर्भाधान वाली सन्तति में गुण, कर्म, स्वभाव का अन्तर हो जाता है।

रज में शुक्र प्रवेश होने के समय यदि शुक्र में सम्मिलित मायाकृत पञ्चभौतिक द्रव्य रज के पञ्च भौतिक द्रव्य से अधिक बलिष्ट हो तो माया कृत शरीर में पुरुष की उत्पति होती है। यदि शुक्र में सम्मिलित मायाकृत पञ्चभौतिक द्रव्य, रज के मायाकृत पञ्चभौतिक द्रव्य से न्यून बलिष्ठ और रज अधिक बलिष्ठ हो तो मायाकृत (स्थूल) शरीर में स्त्री की उत्पत्ति होती है। और यदि शुक्र व रज का समान बल और समान भाग हो तो स्थूल शरीर में नपुंसक उत्पन्न होता है।

स्त्रियों की योनियों में रज की उत्पादन क्रिया वाली गति में जब शुक्र प्रवेश होता है, तब प्रतिदिन रज की होने वाली क्रिया शुक्र चैतन्य सत्ता से स्त्रियों के गर्भ में शुक्र के चारों ओर रज का एक पिण्ड बनाती है। शुक्र की चैतन्य सत्ता से रज की विनाश गति भी रुक कर तब उत्पादक बन जाती है। अथवा रज की उत्पादन और विनाश दोनों गतियाँ शुक्र की चैतन्य सत्ता से उत्पादक वनकर शुक्र के चारों ओर स्त्रियों के गर्भ में

उनके पञ्चभौतिक शरीर के रस (रज) से एक पञ्चभौतिक पिण्ड बना कर जागृत अवस्था में बढ़ाती रहती हैं।

स्त्रियों के गर्भ में ऋतुकाल में स्त्रियों की योनियों से रज को बाहर प्रवाहित करने वाली एक नली होती है। उस नली का दूसरा भाग स्त्रियों के गर्भ में वृक्ष की जड़ों के जाल की तरह फैला रहता है। गर्भावस्था में शुक्र उसी नली के पहिले भाग के मुंह द्वारा योनि के गर्भाशय में प्रवेश होता है। नली के दूसरी ओर वृक्ष की जड़ों की तरह जो जाल होता है, उसके द्वारा नली स्त्रियों के गर्भ से रस लेकर गर्भ में शरीर-पिण्ड बनाती रहती है। उस नली के जड़ की सहायता से गर्भ में बच्चों के शरीर का पोषण होता है। वह नली बच्चों के पेट में नाभी से लगी रहती है, जिसको नाल भी कहते हैं। गर्भ में उसी का दूसरा भाग वृक्ष की जड़ों की तरह स्त्रियों के गर्भाशय में फैला रहता है।

गर्भ में बच्चे का पञ्चभौतिक शरीर रज के उत्पादन और विनाश दोनों गतियों वाले चौदह क्रिया भेदों से उत्पन्न होता है। इसलिये बच्चे का शरीर गर्भ के चौदह लोक-विस्तार से बनता है। उसमें ज्ञानशक्ति, निर्णयशक्ति, विचारशक्ति और इन्द्रियों द्वारा होने वाली क्रिया शक्ति शुक्र के सतोगुण से उत्पन्न होती है।

जब बच्चा गर्भ में परिपूर्ण जागृत हो जाता है तब उसका नाभि में जो नाल लगा होता है, उसके दूसरे भाग के हिस्से का सम्बन्ध जो गर्भ में वृक्ष की जड़ की तरह फैला होता है,

गर्भ से विच्छेद हो जाता है और बच्चा गर्भ से निकल कर पैदा हो जाता है । फिर जैसे वह गर्भ में रज की पोषण सत्ता से बढ़ता था, उसी तरह पञ्च भौतिक खाद्य पदार्थों के रस से बाहर भी उसका शरीर बढ़ता रहता है, और बढ़ते बढ़ते पूर्ण जवानी तक बढ़ता रहता है। जवानी के उपरान्त पञ्च भौतिक शरीर में तमोगुण सत्त्वगुण से कुछ अधिक हो जाता है और तमोगुण बढ़ते बढ़ते जब शरीर में उग्र रूप धारण करता है तब प्राणियों की मृत्यु हो जाती है ।

पहिले वर्णन हो चुका है कि शुक्र में जो चैतन्य सत्ता है उसकी नित एक गति होती है। रज की जो दो प्रकार की गतियाँ होती हैं, अर्थात् उत्पादन और विनाश, इन दोनों का परिवर्तन होता है ।

रज उत्पादन गति से परिवर्तित हो कर विनाश की ओर और विनाश गति से परिवर्तित होकर उत्पादन की ओर होता रहता है । उन दोनों गतियों के अलग २ नाम स्थिति और प्रलय कह सकते हैं ।

प्रकृति के उत्पादन-क्रियाभेद को जिसका नाम विद्या रूप प्रकृति भी है, स्थिति कहते हैं । उसमें उत्पादन शक्ति होती है । प्रकृति के विनाश तमोगुण को काल कहते हैं, जो मायाकृत स्थिति का परिवर्तन कर प्रलय अथवा विनाश की ओर ले जाता है । उसको अविद्या रूप प्रकृति कहते हैं ।

स्थिति में जहां काल अपना उग्र तमोगुण धारण करता है, वहां स्थिति में मरण और प्रलय होती है ।

माता के गर्भ में जहां प्राणियों के माया कृत पञ्च भौतिक शरीर की स्थिति होती है वहां शुक्र के सत्वगुण सत्ता से उस रज में चेतनता उत्पन्न होती है और उस अवस्था में रज की तमोगुण शक्ति उत्पादन युक्त रहती है।

फिर माता के गर्भ में प्राणियों का स्थूल पञ्चभौतिक शरीर रज की उत्पादन और विनाश दोनों प्रकार की गतियों के योग से बनता है।

उत्पादन रज में शुक्र संयुक्त होकर उसकी चैतन्य सत्ता से प्राणियों के शरीर की जागृत-स्थिति होती है। रज की विनाश-क्रिया के साधारण तमोगुण से प्राणियों के शरीर में निद्रा पैदा होती है। रज की जो दो प्रकार की गतियां उत्पादन और विनाश योनि में होती थीं, वे प्राणियों के शरीर में जागृत और निद्रा दो अवस्थाओं में उत्पन्न होती हैं।

प्राणियों की शरीर-स्थिति में इन दोनों अवस्थाओं का संग्राम बराबर बना रहता है। दोनों अवस्थाओं का तमोगुण परिवर्तन रूप से प्राणियों के माया कृत शरीर को विनाश की ओर परिवर्तित करता रहता है।

प्राणियों के शरीर में जब तक शुक्र की चैतन्य सत्ता से रज का तमोगुण न्यून रहता है तब तक उस की उत्पादन क्रिया से प्राणियों के शरीर का पोषण होते हुए वह बढ़ता रहता है।

जब रज की उत्पादन क्रिया का तमोगुण शुक्र के सत्वगुण से अधिक बढ़ जाता है तब शरीर का बढ़ना बंद होकर उपरान्त

क्रमशः शरीर का शोषण होने लगता है, जिससे पञ्चभौतिक शरीर की इन्द्रियां जरा अथवा रुग्णवस्था में बलहीन होती रहती हैं ।

जब प्राणियों के शरीर में उत्पादन तमोगुण से विनाश तमोगुण अधिक बढ़ जाता है, तब प्राणियों के माया कृत स्थूल पञ्चभौतिक शरीर का मरण हो जाता है ।

मृत्यु अवस्था में स्थूल पञ्चभौतिक शरीर जड़त्व को प्राप्त हो कर उसमें समाया हुआ जो उग्र विनाशकारी तमोगुण होता है, वह मृतक शरीर के तत्वों को अपने विशेष उग्र स्वभाव से विच्छिन्न कर महातत्वों में विभाजित करता है । वह मृतक शरीर के तत्वों को महातत्वों में मिलाने की क्रिया ठीक एक साल तक कर सकता है । उपरान्त वह तमोगुण फिर सूक्ष्म हो कर अपने स्थान को जाता है ।

प्राणियों की जीवित अवस्था में जो चैतन्य सत्ता रहती है वह विनाश नहीं होती, केवल पञ्चभौतिक शरीर ही विनाश हो कर पञ्च महाभूतों में विभाजित होता है ।

स्मरण रहे कि शुक्र में जो तेजोमय चैतन्य स्वरूप रहता है, उसका परिवर्तन नहीं हो हकता । उसकी नित्य एक अवस्था है । जीवित स्थूल शरीर में जिस तरह वह चैतन्यमय होकर रहता है, उसी तरह प्राणियों के माया कृत पञ्च भौतिक शरीर की मृत्यु के पश्चात् भी वह जीव-शरीर में ज्यों का त्यों एक ही अवस्था में बना रहता है । उसको जीवात्मा कहते हैं ।

जीवात्मा की चैतन्य सत्ता प्रकृति के विनाशकारी उग्र तमोगुण से भी सूक्ष्म है। इसलिए परिवर्तन और विनाश करने वाला महाप्रलय का उग्र तमोगुण प्रलय काल में भी चैतन्य का कुछ मान अन्तर नहीं कर सकता। और अन्तिम उग्र तमोगुण भी घटते घटते चैतन्य सत्ता के आधार में समा जाता है। जैसे अग्नि से सूक्ष्म तत्व वायु है, और वायु प्रचण्ड अग्नि से भी भस्म नहीं हो सकता, किन्तु अग्नि बुझ कर स्वतः ही वायु में मिल जाता है।

इसी तरह शुक्र में जो एक अवस्था वाला तेजोमय दिव्य स्वरूप चैतन्य है, वह प्राणियों के स्थूल पञ्चभौतिक शरीर के मृत्यु काल में विनाश नहीं होता। विनाश करने वाला उग्र तमोगुण मृतक शरीर के तत्वों को महातत्वों में विभाजित करने पर शान्त होकर एक साल के पश्चात् जीवात्मा की इच्छा में आश्रित हो जाता है। अलबत्ता शुक्र में जो मायाकृत स्थूल पंच-भौतिक भाग रहता है, उसका शरीर के साथ मायाकृत होने से विनाश हो जाता है, केवल शेष जीवात्मा रह जाता है, जिस में बुद्धि मन और इन्द्रियों की सूक्ष्म इच्छा बनी रहती है।

स्थूल पंचभौतिक शरीर के मृत्युकाल में उग्र तमोगुण पंच-भौतिक शरीर में रहता है। उसको वह सब ओर से घेर लेता है, जिससे उत्पादन क्रिया रूप तमोगुण का स्थूल पञ्चभूत मृतक शरीर से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। जीवात्मा में जो क्रिया रूप इच्छा होती है वह भी तमोगुण का एक अंश है।

उत्पादन-क्रिया रूप इच्छा पञ्चभौतिक शरीर से अपना सम्बन्ध विच्छेद किसी काल में नहीं चाहती, लेकिन इच्छा के तमोगुण से उग्र तमोगुण प्रवल होकर पञ्चभौतिक शरीर में अपना विनाशकारी प्रभाव प्रवलता से जमा देता है। इसलिये प्राणियों के पञ्चभौतिक स्थूल शरीर से उत्पादन क्रिया रूप इच्छा का सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। प्राणियों के मृत्युकाल में इच्छा एक अवस्था वाले तेजोमय दिव्य स्वरूप चैतन्य सत्ता में रचना तमोगुण भेद सहित आश्रित हो जाती है। चैतन्य की उस अवस्था को जीवात्मा कहते हैं।

प्राणियों के मरण काल में उग्र तमोगुण तो पञ्चभौतिक मृतक शरीर में रहता है और उत्पादन क्रिया रूप तमोगुण इच्छा भेद से जीवात्मा में आश्रित रहता है।

उग्र तमोगुण जब एक साल में पञ्चभौतिक शरीर को सड़ा गला या भस्म कर महातत्वों में उसके तत्वों को मिला देता है, तब वह फिर शान्त होकर सूक्ष्म रूप से जीवात्मा की इच्छा के तमोगुण में आश्रित होता है। जीवात्मा की उस अवस्था को जीव कहते हैं।

प्राणियों की जीवित अवस्था में जो इच्छा प्रधान होती है, शरीर के मरण काल में वही इच्छा रूप-उत्पादन प्रकृति आत्म-चैतन्य स्वरूप में लिप्त होकर आश्रित रहती है। आत्मा चैतन्य में जहां इच्छा आश्रित रहती है, वहीं मन की गति बनी रहती है। जहां मन रहता है वहां बुद्धि होती है, और बुद्धि आत्मा में आश्रित रहती है।

आत्मा में ज्ञान शक्ति होती है, बुद्धि में निर्णय शक्ति, मन में विचार शक्ति और इच्छा में क्रिया शक्ति होती है। इच्छा की क्रिया शक्ति से ही स्थूल पञ्चभौतिक शरीर की जीवित अवस्था में प्राण आदि स्थूल शरीर की इन्द्रियों की क्रियायें होती हैं।

उग्र तमोगुण अन्धकार रूप से इच्छा और प्राण के मध्यस्थ उत्पन्न होता है। प्राणियों की निद्रावस्था में उसका साधारण अंश इच्छा की क्रिया शक्तियों को अन्धकार रूप से आच्छादित करता है। इसलिये स्थूल शरीर की इन्द्रियां अपने विषयों से अज्ञान हो जाती हैं। लेकिन निद्रावस्था में इच्छा की क्रिया शक्तियों को उग्र तमोगुण का साधारण अंश विनाश नहीं कर सकता। इसलिये निद्रा में प्राण की क्रिया बदस्तूर बनी रहती है।

जब निद्राकाल में इच्छा की उत्पादन क्रिया के विस्तार को उग्र तमोगुण का साधारण अंश ढक लेता है तब यदि उस काल में इच्छा का तमोगुण सृष्टि--उत्पादन के लिये प्रबल हो तो इच्छा अपने उत्पादन तमोगुण संकल्प से उग्र तमोगुण के साधारण अन्धकार विस्तार में, जिसका विस्तार इच्छा से प्राण आदि पञ्चभौतिक शरीर की ओर रहता है, उसमें स्वप्न की सृष्टि रचती है, लेकिन वह अन्धकार--विस्तार असत्य है जो जागते ही नाश हो जाता है। इसलिये उसमें उत्पन्न होने वाली स्वप्न की सृष्टि भी असत्य होती है। अन्धकार के नाश होने पर स्वप्न की सृष्टि भी नष्ट हो जाती है। स्वप्न की उत्पादन क्रिया शक्ति इच्छा में होती है, विचार शक्ति मन में,

निर्णय शक्ति बुद्धि में और ज्ञान युक्त चैतन्य शक्ति आत्मा में होती है ।

निद्रा के पश्चात् जब उग्र तमोगुण के साधारण अन्धकार का परदा इच्छा से हट कर इच्छा और प्राण के बीच लोप हो जाता है, तब इच्छा की पूर्ण उत्पादन क्रिया से स्थूल शरीर की इन्द्रियां अपने २ विषयों में जागृत हो जाती हैं, उसको जागृत अवस्था कहते हैं ।

यदि निद्रावस्था में इच्छा का उत्पादक तमोगुण क्रिया करने से शान्त रहे तो निद्रा की उस अवस्था में स्वप्न की सृष्टि उत्पन्न नहीं होती और निद्रा की शान्त अवस्था बनी रहती है। लेकिन उस अवस्था में भी इच्छा में उत्पादक तमोगुण का अभाव नहीं होता, जिसके कारण प्राणी निद्रा के पश्चात् जागृत होकर कार्यों में प्रवृत हो जाते हैं ।

निद्रावस्था में जो अन्धकार का आकार उत्पन्न होता है, इच्छा में उसका स्थान है । जब वह विस्तृत होकर इच्छा को ढक लेता है तब इच्छा और प्राण के बीच पञ्चभौतिक शरीर की ओर अन्धकार छाजाता है । उसके पश्चात् फिर वह घट कर सूक्ष्म रूप से इच्छा के उत्पादन क्रिया तमोगुण भेद में समा जाता है । निद्रा का अन्धकार भी माता के रज के विनाश अंश से प्राणियों के शरीर में उत्पन्न होता है । उसके साधारण अंश से प्राणियों की निद्रावस्था होती है, मध्य अंश से प्राणियों की मृत्यु और महा अंश से मृतक शरीर के तत्व छिन्न भिन्न हो कर महातत्वों में विभाजित होते हैं ।

प्राणियों की जीवित अवस्था में जो इच्छा प्रधान होती है, मरण काल में वही इच्छा रूप प्रकृति मन में लित होकर आश्रित होती है। इच्छा जीवित अवस्था में भी सूक्ष्म रूप से प्राणियों के मन में आश्रित रहती है और मृत्यु के पश्चात् भी सूक्ष्म रूप से जीव के मनमें आश्रित रहती है। जीव में जहां इच्छा आश्रित रहती है, वहीं मन की गति बनी रहती है। जहां मन रहता है, वहीं बुद्धि होती है। बुद्धि आत्मा में आश्रित होती है। इच्छा इन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न होती है, इन्द्रियां अपने अपने तत्व सम्बन्धी विषयों में रत होती हैं, और इन्द्रिय सम्बन्धी भोग स्थूल शरीर से होते हैं।

इसलिए जीवित शरीर में इच्छा के जागृत रहने से मृत्यु के पश्चात् जीव इच्छानुकुल पुनर्जन्म को प्राप्त होता है। मनुष्य का पुनर्जन्म उसकी इच्छा के मुताविक मनुष्य-समुदाय, या गाय भैंस भेड़ बकरी घोड़ा इत्यादि, व थलचर, जलचर, नभचर, कीट, पशु आदि अनेक जाति के समुदाय में होता है।

जीवित शरीर में सब मनुष्य-समुदाय की इच्छा एक ही तरह की नहीं होती। प्रत्येक की इच्छायें भिन्न भिन्न तरह की होती हैं। इसी तरह जितने कीट पशु आदि प्राणी होते हैं, उनकी भी मनुष्यों की तरह भिन्न भिन्न इच्छायें होती हैं। सृष्टि में जितने भी कीट पशु आदि प्राणि बसते हैं, उन सब में इच्छा होती है।

जीवित शरीर में जिन मनुष्यों की इच्छा पुत्र, पौत्र व स्त्री

आदि मनुष्य-समुदाय में होती है, वे मरने के पश्चात् पुनर्जन्म में मनुष्य योनि में उत्पन्न होते हैं ।

जिन की इच्छा गाय, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़ा, ऊंट, हाथी इत्यादि जानवरों में रहती है, मरने के पश्चात् उनका पुनर्जन्म उन्हीं जानवरों में होता है ।

जिनकी इच्छा हंस, मोर, मैना, तोता आदि पक्षियों में होती है, वे मरने के पश्चात् उन्हीं पक्षियों में जन्म लेते हैं । जिनकी इच्छा मछली आदि जलचर जीवों में होती है, उनका पुनर्जन्म उन्हीं में होता है ।

जो मनुष्य देव, यक्ष, भूत प्रेतों का पूजन करने से उन की इच्छा करते हैं, वे मृत्यु के पश्चात् उन्हीं लोकों में पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं । इसी तरह सृष्टि के समस्त प्राणियों का अपनी इच्छा के मुताबिक मरने के बाद पुनर्जन्म होता है ।

इच्छा जीवात्माओं में सूक्ष्म अंकुर रूप उत्पादन शक्ति है । वह जीवात्माओं में समाई रहती है । जैसे बृक्षों की उत्पादन शक्ति सूक्ष्म अंकुर रूप से बीजों में समाई हुई रहती है, और वह पृथ्वी आदि तत्वों की सहायता से बृक्षों को पैदा करने वाला अंकुर पैदा करती है, जिससे पत्ते पुष्प फल इत्यादि बृक्षों की सारी सृष्टि उत्पन्न होती है । बृक्षों की वह सारी सृष्टि पत्ते, पुष्प, फल आदि उत्पत्ति से पहिले उसी अंकुर के अन्तर्गत बीज में समाई हुई रहती है ।

इसी तरह जीवात्माओं में आश्रित अंकुर रूप इच्छा पुनर्जन्म के शरीर की सृष्टि को उत्पन्न करती है। मनुष्यादि प्राणियों में विभिन्न इच्छा होती हैं। इसलिए वे अपनी २ इच्छा के मुताबिक पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं। प्राणियों की जिस काल में मृत्यु होती है, वे उसी काल में पुनर्जन्म को ग्रहण नहीं कर सकते। प्राणियों के मरण काल में जब मृतक शरीर के पञ्च भौतिक तत्व विभाजित होकर अपने २ तत्वों में जा मिलते हैं, तब जीव-शरीर का भी तो कोई स्थान होता है, जहां वह मृत्यु के पश्चात् फिलहाल स्थान पाता है।

जिस तरह मनुष्यों के मृतक शरीर का पृथ्वीतत्व महापृथिवी तत्व में मिल जाता है, शरीर जल तत्व महाजल तत्व में, शरीर अग्नि तत्व महाअग्नि तत्व में, शरीर वायुतत्व महावायु तत्व में, और शरीर आकाशतत्व महा आकाश तत्व में मिल जाता है, उसी तरह जीवात्मा जो वायु आकाश से भी सूक्ष्म और तटस्थ है आकाशादि तत्वों में नहीं मिलता और न उन में टिक सकता है। मृत्यु के पश्चात् भूलोक के तत्वों से प्राप्त होने वाले स्थूल शरीर को जीव स्थूल भूलोक में त्याग कर भूलोक के पञ्च तत्वों के विस्तार से बाहर भुवः लोक के विस्तार में पहुंचता है, जिसको चन्द्रलोक व पितृलोक भी कहते हैं।

पितृलोक में वे ही जीवात्मा पहुंचते हैं जिनकी इच्छा में भूलोक सम्बन्धी वस्तुओं की इच्छा होती है। वे मृत्यु के पश्चात् सूक्ष्म जीव रूप से पितृलोक में जाते हैं और पितृलोक में स्थूल भागों की इच्छा से भूलोक में आकर स्थूल शरीर में पैदा

होते हैं। मनुष्य की मृत्यु के पश्चात् कम से कम एक साल जीव पितृलोक में रहता है। वह उग्र तमोगुण जिससे मृत्यु होती है और जो मृतक शरीर के पञ्चभूतों को एक साल तक पञ्च महाभूतों में मिलाता रहता है, शरीर पञ्च तत्वों को पञ्च महा तत्वों में विभाजित करने के पश्चात् शान्त होकर पितृलोक में जीव की इच्छा के उत्पादक तमोगुण में समाता है।

उसके पश्चात् जीव की पितृलोक में प्रवल इच्छा होती है और उसके मुताबिक पितृलोक से पतित होकर भूलोक में जन्म लेता है। यदि उस जीव की इच्छा मनुष्य-समुदाय में बनी हो तो वह मनुष्यों में जन्म लेता है। इसी तरह जिसकी गाय, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़ा, मच्छली, पक्षि आदियों में होती है, वह उन्हीं में जन्म लेता है।

प्रथम वर्णन हो चुका है कि स्त्रियों की योनियों में रज की चौदह प्रकार की क्रियायें योनि के १४ लोकों में उत्पादन और विनाश भेद से होती रहती हैं, जिससे गर्भ में शुक्र की चैतन्य सत्ता से प्राणियों के स्थूल शरीरों की उत्पत्ति १४ लोकों के विस्तार में होती है। और उत्पत्ति के पश्चात् रज से उत्पन्न होने वाले प्राणियों के शरीर में समाया हुआ उग्र तमोगुण, माता से उत्पन्न होने वाले स्थूल पञ्चभौतिक शरीर को विनाश कर उसके पञ्च तत्वों को महापञ्च तत्व में मिलाता है और जीवात्मा १४ लोकों में से उस लोक में जाता है, जैसी उसमें इच्छा होती है।

इसी तरह महाप्रकृति की योनि में चौदह महालोकों की

उत्पादन और विनाश क्रियायें रहती हैं। परमात्मा की चैतन्य सत्ता से उन्हीं विस्तारों में महाप्रकृति चौदह लोकों के अण्ड, पिण्ड ब्रह्माण्डों की स्थिति रचती है। स्थिति के पश्चात् महा प्रकृति का विनाशकारी तमोगुण चौदह लोकों के अण्ड पिण्ड ब्रह्माण्डों की स्थिति में समा जाता है। वह अपने उग्र तमोगुण से महाप्रलय में चौदह लोकों की स्थिति का विनाश करता है।

प्राणियों की जीवित अवस्था में मन इच्छा के वशीभूत होकर शरीर चौदह लोकों में भ्रमण करता है। जब मन को इच्छा से यावत् सृष्टि मात्र में सर्वत्र सत्य ही सत्य प्रतीत होने लगता है, उस काल में मन ज्ञान-इच्छा से शरीर सत्यलोक में रहता है।

जब मन सात्विकी इच्छा से ध्यान समाधि में सत्य तत्व का चिन्तन करता है, उस काल में मन इच्छा सहित शरीर तपःलोक में रहता है।

जब मन इच्छा से समत्व ज्ञान द्वारा समस्त प्राणियों को अपने समान देखता है, उस काल में मन इच्छा सहित शरीर जनःलोक में रहता है।

जब मन इच्छा से असत्य कर्मों को त्याग, सत्य कर्मों में प्रवृत होता है, उस काल में मन इच्छा सहित शरीर महःलोक में रहता है।

जब मन सात्विकी इच्छा से जप यज्ञ दान और व्रत करता

है, उस काल में मन इच्छा सहित शरीर स्वः (स्वर्ग) लोक में रहता है ।

जब मन इच्छा से फल चाहने वाले कर्म करता है, उस काल में मन इच्छा सहित शरीर भुवःलोक में रहता है ।

जब मन इच्छा से फल भोग करता है, उस काल में मन इच्छा सहित भूलोक में रहता है ।

जब मन अभिमान की इच्छा से अपने को बड़ा और दूसरे को छोटा समझता है, उस काल में मन इच्छा सहित शरीर अतल लोक में रहता है ।

जब मन इच्छा से अपने स्वार्थ के लिये क्रोध करता है, उस काल में मन इच्छा सहित शरीर वितल लोक में रहता है ।

जब मन इच्छा सहित लोभ के वशीभूत होकर अनधिकार वस्तुओं का हरण करता है, उस काल में मन इच्छा सहित शरीर सुतल लोक में रहता है ।

जब मन इच्छा से किसी प्राणी के प्रति विश्वासघात करता है, उस काल में मन इच्छा सहित शरीर तलातल लोक में रहता है ।

जब मन इच्छा से किसी वस्तु के मोह में शोकित होता है, उस काल में मन इच्छा सहित महःतल लोक में रहता है ।

जब मन इच्छा से असत्य (झूठी गवाही, झूठी बहस, झूठा

फैसला इत्यादि) कर्मों में रत रहता है, उस काल में मन इच्छा सहित शरीर रसातललोक में रहता है ।

जब मन इच्छा से निर्दोष जीवों का बध करता है, उस काल में मन इच्छा सहित शरीर पाताल लोक में रहता है ।

जिस तरह जीवित शरीर में इच्छा बनी रहती है उसी तरह मृत्यु के पश्चात् भी जीव-शरीर में इच्छा बनी रहती है। इच्छा जीवित शरीर में भी सूक्ष्म और मृत्यु के पश्चात् जीव-शरीर में भी सूक्ष्म होती है। जीवित शरीर में प्राणि जिस वस्तु की अधिक इच्छा करता है मृत्यु के पश्चात् जीव की इच्छा में उस वस्तु की आसक्ति बनी रहती है।

प्राणियों के स्थूल पञ्चभौतिक शरीर के मृत्युकाल में पञ्च भौतिक शरीर के चौदह लोक आकार में विनाशकारी उग्र तमोगुण समा जाता है, जिससे जीवात्मा मृतक शरीर को त्याग कर इच्छा के मुताबिक विश्वविराट् के चौदह लोकों में से उस लोक में पहुंचता है, जिस लोक की इच्छा मृत्युकाल में जीवात्मा के शरीर में बनी रहती है।

मृत्यु के समय जीवात्मा की इच्छा में यदि यावन्मात्र सर्व सृष्टि में सर्वत्र सत्य ही सत्य प्रतीत होता हो तो उस अवस्था में जीवात्मा शरीर सत्यलोक को त्याग कर विश्वविराट् के सत्यलोक में जाता है।

मृत्यु के समय जीवात्मा की इच्छा में ज्ञान समाधि द्वारा सत्य तत्त्व का चिन्तन होता हो तो उस अवस्था में जीवात्मा विश्वविराट् के तपःलोक में पहुंचता है।

मृत्युकाल में जो जीवात्मा इच्छा से सृष्टि की समस्त वस्तुओं को परमात्मा की समझ कर किसी में आसक्त नहीं होता, वह विश्वविराट् के जनलोक में पहुंचता है।

असत्य कर्मों को त्याग कर इच्छा से सत्य कर्मों में प्रवृत रहने वाला जीवात्मा मृत्यु के पश्चात् विश्व ब्रह्माण्ड के महःलोक में पहुंचता है।

जो मनुष्य जीवित अवस्था में अपनी प्राप्य वस्तुओं को परमात्मा की समझ कर यज्ञ व दान द्वारा अग्नि व ब्राह्मण आदिकों को परमात्मा रूप समझ कर उनको अर्पण करता है, या जप और व्रत द्वारा अपनी आसुरिक वृतियों को रोकता है, जिससे अपने द्वारा किसी को क्लेश न पहुंचे, इस प्रकार की इच्छा वाला जीवात्मा मृत्यु के पश्चात् विश्वविराट् के स्वः (स्वर्ग) लोक में पहुंचता है।

जो जीवात्मा इच्छा से फल चाहने वाले कर्मों में रत रहता है, वह मृत्यु के पश्चात् विश्वविराट् के भुवः (पितृ) लोक में पहुंचता है।

जब जीवात्मा स्थूल फल भोग करता है, तब स्थूल शरीर से विश्वविराट् के भूलोक में रहता है।

मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा की इच्छा में (छोटे बड़े या किसी तरह का) अभिमान भेद होने से वह विश्वविराट् के अतललोक में जाता है।

जब मन इच्छा से अपने स्वार्थ के लिये क्रोध करता है, तब जीवात्मा मृत्यु के पश्चात् वितल लोक में जाता है।

लोभ के वशीभूत होकर अनधिकार वस्तु की इच्छा वाला जीव मृत्यु के पश्चात् विश्वविराट् के सुतल लोक में जाता है।

किसी प्राणि के प्रति विश्वास घात की इच्छा वाला जीव मृत्यु के पश्चात् विश्वविराट् के तलातल लोक में जाता है।

इच्छा से सांसारिक वस्तुओं के मोह में शोकित रहने वाला जीव मृत्यु के पश्चात् विश्वविराट् के रसातल लोक में जाता है।

इच्छा से असत्य कर्मों (झूटी गवाही, झूठा फैसला, झूठी बहस इत्यादि) में रत रहने वाला जीव मृत्यु के पश्चात् विश्व-विराट् के महातल लोक को जाता है।

इच्छा से निर्दोष जीवों का घातक जीवात्मा मृत्यु के पश्चात् विश्वविराट् के पाताल लोक में पहुंचता है।

एवं, प्राणियों की मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा इच्छा की आसक्ति से विश्वविराट् के चौदह लोकों में पहुंचता है।

जब प्राणि सत रज तम, तीनों प्रकार की इच्छाओं से समूल रहित हो जाता है, तब वह जीवात्मा मृत्यु के पश्चात् मोक्ष को

प्राप्त होता है । वही जीवात्मा का परम धाम है । ज्ञानी उस को नहीं भूलते । उस की प्राप्ति के बिना जीवात्मा को सत्य आनन्द नहीं हो सकता ।



अध्याय २०



वनस्पति ।

—:o:—

पृथ्वी में वनस्पतियों के स्थूल शरीर को उत्पन्न करने वाले रज रूप गर्भ केशर और चन्द्रमा में शुक्र रूप पराग केशर हैं। चन्द्रमा का प्रकाश महा वायुमण्डल के कारण जैसे पृथ्वी में पहुंचता है, वैसे ही चन्द्रमा से पराग महावायुमण्डल द्वारा पृथ्वी को प्राप्त होता है।

गर्भ केशर के दो भेद होते हैं। उत्तरायण में सतोगुणी भेद और दक्षिणायण में तमोगुण भेद। पराग के भी दो प्रधान और दो गौण भेद होते हैं। पूर्णमासी के पूर्णप्रकाश चन्द्रविम्ब से पूर्ण सतोगुणी शुक्ल पराग और आमावास्या के अन्धकार युक्त चन्द्रविम्ब से पूर्ण तमोगुणी (काला) पराग। इन के अतिरिक्त शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की चौदह तिथियों के प्रकाश अप्रकाश युक्त चन्द्रविम्ब से चौदह प्रकार के रजोगुणी पराग उत्पन्न हुए।

वनस्पति-सृष्टि के आरम्भ में पृथ्वी के गर्भ केशर को प्रथम पूर्ण सतोगुणी पराग केशर प्राप्त हुआ, क्योंकि सतोगुण ही सृष्टि

रचने का आदि कारण है। फिर पूर्ण तमोगुणी पराग केशर पृथ्वी के गर्भ केशर को प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् चन्द्रमा के शुक्ल-पक्ष और कृष्णपक्ष की चौदह तिथियों के प्रकाश के साथ पृथ्वी को चौदह प्रकार के रजोगुणी पराग केशर प्राप्त हुए। उन में से प्रथम सात प्रकार के रजोगुणी पराग केशरों के योग में क्रमशः सतोगुण अधिक, तमोगुण न्यून और अन्य सात प्रकार के रजो-गुणी पराग केशरों के योग में क्रमशः तमोगुण अधिक सतोगुण न्यून हुए।

जैसे शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की चौदह तिथियों के चन्द्रविम्बों पर सात तिथियों में प्रकाश भिन्न भिन्न सम्बन्ध से अधिक, अन्धकार न्यून और सात तिथियों के चन्द्रविम्बों पर अन्धकार विभिन्न सात प्रकार के सम्बन्ध से अधिक, प्रकाश न्यून होते हैं, ठीक उसी सम्बध से चौदह प्रकार के रजोगुणी पराग केशरों में सतोगुण और तमोगुण के भेद होते हैं। सतोगुण और तमोगुण के योग भेदों से और भी असंख्य पराग केशर चन्द्रमा से उत्पन्न होकर पृथिवी को प्राप्त हुए।

जल तत्व से संयुक्त पृथिवी में गर्भ केशर उत्पन्न होता है। गर्भ केशर चिपकदार होता है, जैसे मिट्टी जल से संयुक्त होनेपर चिपकदार होती है। पराग चिपकदार नहीं होता। उसमें उड़ने वाला खुरखुरापन होता है, जिससे वायु उसको सुगमता से उड़ा सकता है।

वनस्पतियों की उत्पति के आरम्भ काल में पृथिवी के जल स्थल संयुक्त सुमेरु के पङ्क स्थान में सर्व प्रथम गर्भ केशर उत्पन्न

हुआ और वहां चन्द्रमा के पूर्ण प्रकाश के साथ पूर्ण तमोगुण पराग केशर वायुमण्डल से उड़ कर गर्भ केशर में संयुक्त हो गया। पश्चात् आमावास्या के पूर्ण अन्धकार युक्त चन्द्रविम्ब से पूर्ण तमोगुणी पराग महावायु मण्डल से उड़ कर पृथिवी के गर्भ केशर को प्राप्त हुआ। फिर शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की चौदह तिथियों के प्रकाश अप्रकाश संयुक्त चौदह प्रकार के रजोगुणी चन्द्रविम्बों से चौदह प्रकार के रजोगुणी पराग वायु द्वारा पृथिवी में गर्भ केशर को प्राप्त हुए। इसी तरह चन्द्रमा से पैदा होने वाले अन्य अनन्त पराग पृथिवी को प्राप्त हुये।

वनस्पति सृष्टि के आरम्भ में गर्भ केशर के चिपकदार परमाणुओं को पराग के परमाणु प्राप्त होने पर उन दोनों के योग से एक तरह की उत्पादन शक्ति उत्पन्न हो गई। वह शक्ति आकाश, वायु, तेज, जल, और पृथिवी तत्व की सहायता से अवस्था को प्राप्त हुई।

उस अवस्था में पराग का भाग गर्भकेशर के सतोगुण अंश को ग्रहण कर अङ्कुर रूप में पैदा होकर पृथिवी से ऊपर महावायु-मण्डल में चन्द्रमण्डल की ओरबढ़ने और फैलने लगा, और गर्भ केशर का भाग पराग के तमोगुण अंश को ग्रहण कर जड़ रूप में पृथ्वी के अन्दर। पराग और गर्भ केशर संयुक्त होने से पहिले जो अदृश्य थे, वे अंकुर और जड़ रूप में पञ्चतत्व की सहायता से पैदा हो कर दृश्यमान होगये। जैसे बीजों से पैदा होने वाली वनस्पतियों के तने और जड़ों के भाग उत्पन्न होकर, तने पृथिवी से ऊपर महा वायुमण्डल की ओर और जड़ें पृथिवी के अन्दर

बढ़ती फैलती हैं। ठीक यही कर्म वनस्पतिसृष्टि के आरम्भ में संयुक्त पराग और गर्भकेशर के पराग भाग से तने की और गर्भ केशर भाग से जड़ की उत्पत्ति हुई।

वनस्पतियों के तने चन्द्रमा से उत्पन्न होने वाले परागों की शक्ति से उत्पन्न होते हैं। इसलिये तने के अंग प्रतिअंगों की रचना पञ्चभूतों की सहायता से पृथिवी से ऊपर चन्द्रमण्डल की ओर होती है, जिससे तनों का सर्वाङ्ग पृथिवी से ऊपर बढ़ता और फैलता है। जड़ का भाग पृथिवी से उत्पन्न होने वाले गर्भ केशर की शक्ति से पैदा होता है। इसलिये वनस्पतियों की जड़ें पृथिवी में सम्मिलित पञ्चभूतों की सहायता से पृथिवी के अन्दर बढ़ती और फैलती हैं।

पिण्डज स्थूलभूतों के शरीर में जैसे चौदह लोक रचना होती है, वैसे ही वनस्पतियों में भी चौदह लोक शरीर रचना उत्पन्न होती है। अथवा जैसे चन्द्रमा चौदह तिथियों में भ्रमण करता है, वैसे ही पराग वनस्पतियों के विस्तार को चौदह लोक में उत्पन्न कर उन में भ्रमण करता है।

सतोगुणी सप्तलोकों के विस्तार में वनस्पतियों के तने और तमोगुणी सात लोकों के बिस्तार में उनकी जड़ें पैदा होती हैं। जड़ की रचना में तमोगुण की अधिकता से उसका नाम जड़ रखा गया है।

वनस्पतियों के तनों का विस्तार सतोगुणी सप्तलोकों में इस प्रकार होता है:—भूलोक में तना, भुवःलोक में टहनियां,

स्वःलोक में कोंपल, महः लोक में पत्ते, जनःलोक में पुष्प, तपः लोक में गुद्दा और सत्यलोक में बीज होते हैं।

और जड़ के भाग तमोगुणी सप्तलोकों में इस प्रकार होते हैं:—अतल लोक में जड़ का विस्तार, वितल लोक में रेशे (जड़ के मुंह), सुतल लोक में जल कोष, तलातल लोक में वायु कोष, महःतल लोक में गन्ध कोष, रसातल लोक में तेज कोष, पाताल लोक में चन्द्रमा जो कि कन्द वाली बनस्पतियों के कन्दों में पराग रूप से रहता है।

जैसे माता के गर्भ में उत्पन्न होने वाले प्राणियों की शरीर-बनावट में माता के शरीर में सम्मिलित पंचभूतों के योग से प्रथम सिर की रचना उत्पन्न होती है, वैसे ही पृथिवी के गर्भ में उत्पन्न होने वाली बनस्पतियों की उत्पत्ति में (पृथिवी में सम्मिलित पञ्चभूतों के योग से) प्रथम तनों की रचना उत्पन्न होती है और तब जड़ों की। किन्तु साधारण दृष्टि में प्रथम जड़ की और तब अंकुर की उत्पत्ति प्रतीत होती है।

जड़ की अन्तिम सीमा में बनस्पति को उत्पन्न करने वाले पराग केशर का कुछ सतोगुण अंश होता है। वह अपने प्रभाव से पृथिवी के गर्भ केशर द्वारा उत्पन्न होने वाली जड़ों में जो पृथिवी वायुतत्व होता है, उसकी रजोगुणी शोषण शक्ति से पृथिवी में सम्मिलित वायु को, जिसमें रस गन्ध और पृथिवी के सूक्ष्म अंश तेज सहित घुलकर मिले होते हैं, उनको शोषता है। जड़ का वायु भूगर्भ वायु के साथ रस गन्ध तेज को शोषकर

बनस्पतियों की जड़ों में पहुंचाता है। और वहां से वे जड़ के अंग प्रतिअंगों में होते हुए तने के अंग प्रतिअंगों में पहुंचते हैं, जिससे तने के सारे अङ्ग प्रतिअङ्ग वायुमण्डल की ओर बढ़ते और फैलते हैं।

जड़ का शोषणवायु तने में पहुंचकर तने के सारे अङ्ग प्रतिअङ्गों यानी छाल, टहनियों, कलियों, पत्तों, पुष्पों और फलों में शोषण शक्ति उत्पन्न करता है, जिससे वे सब अपने स्पर्श करने वाले वायु को शोषकर रस, प्रकाश, तेज, गन्ध और परागों को ग्रहण करते हैं, जोकि बनस्पतियों को स्पर्श करने वाले महावायुमण्डल में पहिले से मिले होते हैं। वे तने में पहुंच कर तने के सारे अङ्ग प्रतिअङ्गों में भ्रमण करते हुए जड़ के अङ्ग प्रतिअङ्गों में पहुंचते हैं। उन्हीं से तना और जड़ के अङ्ग प्रतिअङ्ग सुदृढ़ बनकर बढ़ते और फैलते हैं।

वनस्पतियां जड़ों के द्वारा भूगर्भ से और तनों के द्वारा महा वायु मण्डल से जिन रस, गन्ध, पृथिवी के सूक्ष्म अणु, तेज और परागों का ग्रहण करती हैं, वे उन के खाद्य पदार्थ हैं।

जड़ का वायु जड़ और तने के अंग प्रतिअंगों में भ्रमण कर दूषित होने से तने की छाल के अवयवों द्वारा निकल कर महावायु मण्डल में मिल जाता है। और तने का वायु तने और जड़ के अंग प्रति अंगों में घूम कर दूषित होने से जड़ की छाल के अवयवों द्वारा बाहर निकल कर भूगर्भ वायु से मिल जाता है। वनस्पतियों के तने का भाग महावायु मण्डल से स्पर्श होने वाले वायु को दिन भर शोषता है, और जड़ का भाग

उस वायु के दूषित होने पर पृथिवी के अन्दर त्यागता है। किन्तु रात्रि को जड़ का भाग भूगर्भ से पृथिवी में सम्मिलित वायु को शोषता है, और तने का भाग उसको दूषित होने पर महा वायुमण्डल में छोड़ता है।

वनस्पतियां हमारी तरह हर समय सांस लेती और छोड़ती नहीं। वे तनों के द्वारा दिन भर वायु शोषती हैं और रात्रि भर उनके द्वारा बाहर फैंकती हैं। जड़ों के द्वारा रात्रि भर पृथिवी से वायु शोषती हैं और दिन भर उन के द्वारा बाहर फैंकती हैं। इस क्रम से जड़ों के हिस्से में रात्रि का और तनों के भाग में दिन का अधिक बल प्राप्त होता है।

पृथिवी के अन्दर जहां बनस्पतियों की जड़ें होती हैं वहां तेज रस को पतला बनाता है। उस पतले रस में मिट्टी के अणु घुल कर मिले होते हैं। वनस्पतियों की जड़ें उस रस को सुगमता से शोष लेती हैं। महावायु मण्डल तेज के कारण जल को भाप द्वारा और पृथिवी के सूक्ष्म अंश गन्ध को ग्रहण कर तनों के विस्तार में फैलाता है, जिनको वे अपने अवयवों द्वारा शोष कर ग्रहण करते हैं। बनस्पतियों की जड़ और तनों के अंग प्रतिअंगों में विचरने वाला रस, जल से उत्पन्न होता है। पृथिवी तत्व से जड़-तनों के अंग प्रति अंगों में स्थूल-पन और गन्ध पैदा होती है। पृथिवी तत्व रस में घुल कर वायु के कारण जड़ तनों के सारे अंग प्रतिअंगों में पहुंच कर उनको पुष्ट करता है।

पराग केशर के रचना भाग से उत्पन्न होने वाली बनस्पतियों के तने, सतोगुणी सप्त लोकों में इस प्रकार सात प्रकार की रचना उत्पन्न करते हैं:—तना, टहनियां, कोंपलें, पत्ते, पुष्प, फल और बीज। किन्तु जड़ें पृथिवी के तमोगुणी गर्भ केशर के रचना भाग से उत्पन्न होने के कारण एक ही अवस्था में बढ़ती हैं। उसमें तने की तरह कोंपल, पत्ते और पुष्प इत्यादि नहीं होते।

जड़ें एक ही अवस्था में बढ़कर तमोगुणी सप्त-लोकों के विस्तार में बढ़कर सात भेद बनाती हैं। (१) जड़ का विस्तार, (२) जड़ के रेशे, (३) जड़ का जल कोष, (४) वायु कोष (५) गन्ध कोष (६) तेज कोष (७) बनस्पतियों की आत्मा (पराग)

इस तरह वनस्पतियां तने और जड़ के सर्वाङ्गों में उत्पन्न होती हैं:—अतल लोक में जड़ का विस्तार, भूलोक में तने का, बितल लोक में जड़ के रेशे, भुवःलोक में तने पर टहनियां, सुतल लोक में जड़ का जल कोष, स्वः लोक में तने पर कोंपलें, तलातल लोक में जड़ का वायु कोष, महःलोक में तने पर पत्तियां, महः तललोक में जड़ का गन्ध कोष, जनःलोक में तने पर पुष्प, रसातल लोक में जड़ में तेज कोष, तपः लोक में तने पर फल में रसदार गुद्दा, पाताल लोक में जड़ में चन्द्रमा (पराग) जो कन्द वाली बनस्पतियों की कन्दों में बीज रूप में होता है, और सत्य लोक में तने पर बीज उत्पन्न होते हैं। बीज में भी जो उत्पादन शक्ति होती है, वह उसको पराग से प्राप्त होती है।

वनस्पतियों की जड़ों का स्थूलपन उत्पन्न होने पर तनों का स्थूलपन उत्पन्न होता है। जड़ के रेशे उत्पन्न होने पर तने पर टहनियां, जड़ में जल कोश बनने पर तने में कोंपलें, जड़ में वायु कोष बनने पर तने पर पत्तियां उत्पन्न होती हैं। इस लिये पत्तियों में वायुशोषण की अधिक शक्ति होती है। जड़ में गंध कोष बनने पर तने पर पुष्प उत्पन्न होते हैं। इसलिए पुष्पों में गंध उत्पन्न होती है। जड़ में तेज कोष बनने पर तने में फल के गुद्दे में रस की परिपक्व अवस्था उत्पन्न होती है। जड़ में पराग केशर की परिपक्व अवस्था से तने में बीज की उत्पादन शक्ति पैदा होती है।

गुणों के कारण जैसे पराग के मुख्य चार प्रकार के भेद बताये गये हैं, वैसे ही रूप-रंग से भी उनमें चार प्रकार के प्रधान भेद होते हैं:—जो पूर्णमासी का पूर्ण प्रकाश युक्त सतोगुणी पराग होता है, उसका शुक्ल रूप होता है। जो आमावास्या में पूर्ण अन्धकार युक्त तमोगुणी पराग केशर होता है, उसका काला रूप होता है। जो शुक्लपक्ष के अधिक प्रकाश, न्यून अप्रकाश युक्त रजोगुणी पराग होता है उसका पीला रूप होता है। और जो कृष्णपक्ष के अधिक अप्रकाश, न्यून प्रकाश युक्त रजोगुणी पराग होता है, उसका लाल रूप होता है। लेकिन पराग का साधारणतः पीला रूप होता है। और गर्भ केशर का साधारण रूप पृथिवी का सा मटियाला होता है। गर्भ केशर के उस मटियाले रंग के भी दो भेद सुफेद और काले होते हैं।

पराग और गर्भ केशर के रूपों के योग से उत्पन्न होने वाली

वनस्पतियों के अंग प्रतिअंगों का रूप-रंग इस तरह उत्पन्न होता हैः-सुफेद, काला, पीला और लाल। चार प्रकार के रङ्गों से वनस्पतियों की जड़ों का रंग सुफेद, काला, पीला और लाल चार प्रकार का होता है। वे चारों रंग गर्भ केशर के मटियाले रंग से आच्छादित होकर जड़ों की बाहरी छाल का रंग कुछ काल पश्चात् पृथिवी का सा हो जाता है।

वनस्पतियों के तने भी जो जड़ से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं, उत्पत्ति काल में उनके रंग भी पराग के रंगों की तरह चार प्रकार के होते हैंः-अर्थात् सुफेद, काले, पीले और लाल। उत्पत्ति से कुछ काल पश्चात् सब प्रकार के तनों की बाहरी छाल का रंग गर्भ केशर के मटियाले रंग से आच्छादित होकर पृथिवी का सा हो जाता है। किन्तु जड़ों और तनों की छालों के मटियाले रंग के साथ परागों के चार प्रकार के रंग सम्मिलित होने से किसी के जड़ और तने की छाल का रंग सुफेद्-मटियाला, किसी के जड़ तने की छाल का रंग काला-मटियाला, किसी के जड़ तने की छाल का रंग पीला-मटियाला और किसी के जड़ तने की छाल का रंग लाल-मटियाला हो जाता है।

इसी तरह वनस्पतियों की छालों के अन्दर जो काष्ठ होते हैं, उनके रंग भी चार प्रकार के होते हैंः-अर्थात् शुक्ल पराग से उत्पन्न काष्ठ का रंग सुफेद्, काले पराग से उत्पन्न काष्ठ का रंग काला, पीले पराग से उत्पन्न काष्ठ का रंग पीला, और लाल पराग से उत्पन्न काष्ठ का रंग लाल होता है।

सब प्रकार के रंगों वाले काष्ठ में गर्भ केशर का मटियाला

रंग सम्मिलित होता है। वनस्पतियों के अन्य अंगपृति अंगों से जड़ तना और टहनियों में पृथिवी तत्व अधिक होता है। इस लिये उन में अन्य अंग पृतिअंगों की अपेक्षा पृथिवी का अधिक रंग आता है। पराग का रंग इन में न्यूनता से सम्मिलित रहता है।

टहनियों में प्रथम कोंपलें पैदा होती हैं। कोंपलों के रंगों में भी गर्भकेशर का रंग पराग के रंग से कुछ अधिक होता है। इसलिये कोंपलें कोई सुफेद-मटियाले रंग वाली, कोई काले मटियाले रंग वाली, कोई पीले-मटियाले रंग वाली और कोई लाल-मटियाले रंग वाली होती हैं।

कोंपलों के पश्चात् उन में पत्तियां उत्पन्न होती हैं। उन का रंग गर्भकेशर के तमोगुणी काले रंग और पराग के साधारण पीले रंग के योग से हरा होता है। पत्तियों के रंग में पराग और गर्भकेशर के रंगों की समानता होती है। इसलिये काले और पीले रंगों के समान योग से उन में हरा रंग आता है।

पत्तियों के हरेपन में भी पराग के चार प्रकार के रंगों के भेद से किसी वनस्पति में सुफेद हरियाली वाली, किसी में काली हरियाली वाली, किसी में पीली हरियाली वाली, और किसी में लाल हरियाली वाली पत्तियां होती हैं। पत्तियों में वायुतत्व की अधिकता के कारण वनस्पतियों के अन्य अङ्गों से वायु-शोषण की विशेष शक्ति होती है।

वनस्पतियों में पत्तियों की उत्पत्ति के पश्चात् पुष्प उत्पन्न

होते हैं। उन के रंगों में पराग का रंग अधिक और गर्भकेशर का रंग न्यून हो जाता है। पराग के रंगों की तरह पुष्प-सृष्टि में भी मुख्य चार प्रकार के रङ्ग होते हैं। सुफेद पराग से पुष्पों का रंग सुफेद, काले पराग से पुष्पों का रङ्ग काला, पीले पराग से पुष्पों का रँग पीला, और लाल पराग से पुष्पों का रङ्ग लाल होता है। पुष्प-सृष्टि में अन्य रङ्ग इन्हीं रङ्गों के योग भेद से पैदा होते हैं।

इन सब पुष्पों में पराग के साथ जो गर्भकेशर रहता है, यद्यपि उस का रङ्ग पुष्पों में पराग के रङ्गों के साथ न्यून मात्रा से रहता है, तथापि वह पुष्पों में गन्ध गुण से अधिक रहता है।

गर्भकेशर के रङ्गों की तरह गन्ध में भी दो भेद सुगन्ध और दुर्गन्ध होते हैं। जिन पुष्पों में गर्भकेशर की सतोगुणी गन्ध होती है उन में सुगन्ध, और जिन में तमोगुणी गन्ध होती है उन में दुर्गन्ध होती है। जब जड़ के भाग में गन्ध कोष बनता है, तब तने के भाग में पुष्प पैदा होते हैं। वनस्पतियों के जड़, तने के भाग में विचरने वाला वायु जड़ के गन्धकोष से गन्धभेदों को पुष्पों में पहुंचाता है, जिससे पुष्पों में गन्ध आती हैं। पुष्पों में रङ्गों के अतिरिक्त रचना भेद से पराग और गर्भ केशर बीजों में समान होते हैं। पराग और गर्भकेशर जो वनस्पतियों के तनों और जड़ों की रचना में पृथक् होजाते हैं, पुष्पों में संयुक्त होकर वनस्पति उत्पादक बीजों की रचना करते हैं।

पुष्पों के कारण वनस्पति-सृष्टि चार प्रकार की होती है।

पराग और गर्भकेशर के भेद से तीन प्रकार के पुष्पों से बीजों को रचना होती है, और चौथे प्रकार के पुष्पों में बीज पैदा नहीं होते।

प्रथम वर्णन हो चुका है कि गर्भ केशर पृथिवी तत्व में होता है, इसलिये जिन पुष्पों में गर्भ केशर होता है वे फल युक्त होते हैं। फल पृथिवी का सूक्ष्म रूप समझना चाहिये। दूसरे प्रकार के पुष्प जिनमें पराग होता है वे फलयुक्त नहीं होते। उनके अन्दर एक तरह के रेशे अथवा एक डण्ठल सा होता है, जिनमें खुरखुरेपन वाले अणु होते हैं। उन्हीं को पराग कहते हैं। इन दोनों प्रकार के अलग अलग पुष्पों से गर्भ केशर और पराग इस प्रकार से संयुक्त होकर बीजों की रचना करते हैं।

पराग खुरखुरा होने से वायु में उड़ने वाला होता है। उसके परमाणु वायु में उड़कर गर्भ केशर युक्त पुष्पों के गर्भ केशर में जा मिलते हैं। या पुष्पों से रस लेने वाले भ्रमर व शहद की मक्खियों के अङ्गों में लिपट कर उनके द्वारा गर्भकेशर के पुष्पों में पहुंचता है। वायु अथवा भ्रमर या शहद की मक्खियों द्वारा पराग गर्भकेशर के पुष्पों में पहुंचने पर गर्भकेशर पराग में लिपट कर दोनों फलों के अन्दर समा कर बीजों की रचना करते हैं। गर्भकेशर फलों के अन्दर समाने पर पुष्प मुरझा कर विनाश हो जाते हैं। जिन फलदार पुष्पों के गर्भकेशर में पराग किसी तरह नहीं पहुंच सक्ता, उन पुष्पों के फलों में बीज की क्रिया नहीं हो सक्ती। वे पुष्प फलों के सहित सड़ गल कर नष्ट हो जाते हैं।

बनस्पतियों में ऐसे भेद वाले सबसे बड़े पुष्प कद्दू के होते हैं। कद्दू के एक प्रकार के पुष्प गर्भकेशर युक्त और दूसरे प्रकार के पराग युक्त होते हैं। गर्भ केशर वाले पुष्प फलों में होते हैं। उनके अन्दर चिपकदार केशर होता है। और जो पराग वाले पुष्प होते हैं, वे फलों में नहीं होते। उनके अन्दर एक लम्बा सा डण्ठल होता है जिस पर छोटे छोटे पीले रङ्ग वाले खुरखुरे अणु होते हैं। उन्हीं को पराग कहते हैं।

जब पराग पुष्पों से वायु अथवा भ्रमर या शहद की मक्खियों द्वारा गर्भकेशर युक्त पुष्पों में पहुंचता है, तब गर्भकेशर पराग को ग्रहण कर पैदा होने वाले फलों में समाकर उनके अन्दर दोनों बीजों के रूप में धीरे धीरे बढ़कर उत्पादक शक्ति बनते हैं। फलों के अन्दर जैसे जैसे बीजों की रचना होती है, वैसे ही वैसे फल भी बढ़ते रहते हैं। बनस्पतियों के तनों और जड़ों में विचरने वाले पराग और गर्भकेशर धीरे धीरे फलों के अन्दर आकर बीजों में उत्पादन शक्ति बनते हैं। फलों के परिपक्व होने पर बीजों में उत्पादन शक्ति पूर्णतया पैदा हो जाती है।

कद्दू के अतिरिक्त भुजेला (पेठा) ककड़ी, गोदड़ी, खरबूजा तरबूज इत्यादि अनेक बनस्पतियों में पराग और गर्भकेशर के भेदों से दो प्रकार के पुष्प होते हैं। उनमें भी कद्दू के पुष्पों की क्रिया की तरह फलों में बीजों की उत्पत्ति होती है। उनके फलों के परिपक्व होने से बीजों में पूर्ण उत्पादन शक्ति होती है।

बनस्पति-सृष्टि में अधिक बनस्पतियां ऐसी हैं, जिनमें पराग और गर्भकेशर के भेदों से भिन्न भिन्न दो तरह के पुष्प

नहीं होते, अपितु उनके एक ही प्रकार के पुष्पों में पराग और गर्भकेशर को धारण करने वाले दो भाग होते हैं। ऐसे पुष्पों के अन्दर एक प्रकार के रेशे होते हैं। वे किसी के अन्दर कई बारीक रेशे होते हैं और किसी के अन्दर एक मोटा सा डण्ठल होता है। उन सब प्रकार के रेशों में पराग होता है और उनके जड़ के भाग में पुष्पों के अन्दर गर्भकेशर होता है। ऐसे पुष्प प्रायः फलदार होते हैं। उन पुष्पों के पूर्ण खिलने पर रेशों में पराग के खुरखुरे अणु तय्यार हो जाते हैं और उनकी जड़ों में पुष्पों के अन्दर गर्भकेशर में भी पूर्ण चिपकदारपन तय्यार हो जाता है।

वायु की टकरों के कारण रेशों से पराग गिर कर पुष्पों के अन्दर गर्भकेशर से संयुक्त होता है। वे दोनों फल के अन्दर समाकर फलों की परिपक्व अवस्था तक धीरे धीरे बीजों की रचना करते हैं। गर्भकेशर और पराग के जो सतोगुण अंश बनस्पतियों के जड़ों और तनों के अङ्ग प्रति अङ्गों में रस के साथ भ्रमण करते हैं, वे फलों में पहुंच कर बीजों की उत्पादन शक्ति बनते हैं। बीजों की पूर्ण उत्पादन शक्ति पैदा होने तक वे रस के साथ फलों में आकर उनको बढ़ाते रहते हैं। बीजों की उत्पादन शक्ति फलों को परिपक्व करती है। बनस्पतियों के सर्वाङ्ग से फलों में रस आकर बीजों का इस तरह पोषण होता है कि जैसे माता का सर्वाङ्ग रस रूपी दूध स्तनों में जमा होकर बच्चे का पोषण करता है।

सन, खुमानी, आड़ू, अनार, केला, सेव, नासपाती, सरसों

गेहूं, जौ, धान, राई, मण्डुवा लाई इत्यादि बहुत सी बनस्पतियों में इसी तरह के पुष्प पैदा होते हैं। इन सब पुष्पों में रेशे व डण्ठल होते हैं। जैसे, सन के पुष्प के अन्दर एक मोटा सा डण्ठल होता है और शेष बनस्पतियों के पुष्पों में रेशे होते हैं। उन सब में पराग होता है। रेशों की जड़ों में पुष्पों के अन्दर गर्भकेशर होता है। पुष्पों के पूर्ण खिलने पर पराग गिर कर गर्भकेशर से मिल जाता है। इन दोनों के संयोग से इन सब बनस्पतियों में फल और बीज पैदा होते हैं।

गोभी, मूली, प्याज, जवास, गुलाब और गेंदा, इन में भी इसी तरह के पुष्प होते हैं। इनमें भी पराग और गर्भकेशर की उपरोक्त क्रिया से बीज पैदा होते हैं।

जिन बनस्पतियों में छोटे छोटे पुष्पों के झुण्ड (बौर) होते हैं उनमें भी गर्भकेशर और पराग के दो स्थान विद्यमान रहते हैं। उन पुष्पों के अन्दर बारीक बारीक रेशों में पराग और उनकी जड़ों में पुष्पों के अन्दर गर्भकेशर होता है। पराग और गर्भकेशर के संयोग से उनमें फल और बीज पैदा होते हैं। आम और अखरोट के पुष्पों के झुण्ड में पराग और गर्भकेशर के दो भेद होते हैं, जिनके योग से उनमें फल व बीज पैदा होते हैं।

बनस्पति-सृष्टि में कुछ बनस्पतियां ऐसी हैं, जिन में केवल पराग पुष्प होते हैं, गर्भकेशर वाले नहीं। गर्भकेशर ऐसी बनस्पतियों के तनों के सर्वाङ्ग में भ्रमण करता है। तने के

अन्दर विचरने वाला वायु पुष्पों से पराग को रस द्वारा खींच कर उनको गांठों में ठहराता है। वहां पराग गर्भकेशर में संयुक्त होने से बीजों की रचना होती है। जैसे मक्की के पौदों के सिर पर एक प्रकार की बाल सी होती है, उसमें पराग वाले पुष्प लगते हैं, जिनमें पराग होता है लेकिन गर्भकेशर नहीं होता। गर्भकेशर मक्की के पौदों के सर्वाङ्ग में भ्रमण करते हुए बाल में पुष्प उत्पन्न होने की अवधि पर मक्की के पौदों की गांठ में जमा हो जाता है।

पौदों की जिस गाण्ठ में अधिक गर्भकेशर जमा होता है, तनों में विचरने वाला वायु वहां पुष्पों से रस द्वारा पराग को खींच कर गर्भकेशर से संयुक्त करता है। जिन गाण्ठों में पराग और गर्भकेशर संयुक्त होते हैं, उनमें पराग वाले पुष्पों के डण्ठलों की तरह एक एक डण्ठल पैदा होते हैं; जिन पर पराग और गर्भकेशर के योग से अनेक बीजों की उत्पत्ति होती है।

बीजों के साथ एक तरह के रेशे भी पैदा होते हैं। वे डण्ठल के अन्दर से पैदा होकर बाहर महावायु मण्डल तक सम्बन्ध रखते हुए बीजों को पुष्ट करने में सहायक होते हैं। यदि मक्की के पौदों की एक ही गाण्ठ पर पराग और गर्भकेशर संयुक्त हों तो उस गाण्ठ पर एक डण्ठल सा पैदा होकर उसमें एक फल लगता है। यदि दो या तीन गाण्ठों में वे संयुक्त हों तो उन दोनों या तीनों गाण्ठों में दो या तीन मक्की के फल पैदा होते हैं। मक्की के किसी पौदे की बाल में पराग और गर्भकेशर का योग होने से बाल में भी बीज पैदा होते हैं।

बनस्पति-सृष्टि में कुछ ऐसी बनस्पतियां हैं, जिनके पुष्पों में न पराग होता है और न गर्भकेशर, उनमें केवल गन्धगुण होता है। ऐसे पुष्पों में बीज उत्पन्न नहीं होते, जैसे जाई चमेली इत्यादि। इनके पुष्पों में न तो पराग होता है न गर्भकेशर, केवल वे सतोगुणी गन्ध युक्त होने से सुगन्धित होते हैं। इनमें बीज पैदा नहीं होते और न इनके अन्दर रेशे होते हैं। पराग और गर्भकेशर इन बनस्पतियों के तनों और जड़ों के अंग में होते हैं। इसलिये इनकी जड़ों और टहनियों में बीज की तरह वृक्ष बनने की शक्ति होती है।

बहुत सी बनस्पतियां ऐसी हैं, जिनकी कन्दों में बीज की शक्ति होती है और तने के भाग में पुष्प होते हैं। जैसे हल्दी, उसकी कन्दों में बीज की शक्ति और तने के भाग में पुष्प होते हैं। उनमें न पराग होता है, न गर्भकेशर और न बीज होते हैं।

सृष्टि में कुछ बनस्पतियां ऐसी हैं जिनमें न तो पुष्प होते हैं और न फल, जैसे ईख। उसमें न तो पुष्प होते हैं, और न फल। बीज की शक्ति ईख की गाण्ठों में और गुद्दा का रस तना के सर्वाङ्ग में होता है।

कई बनस्पतियों में पुष्प नहीं होते लेकिन उनके तने के भाग में फल और बीज पैदा होते हैं, जैसे अंजीर गूलर पीपल और तीमल इत्यादि। इनमें फल होते हैं और फलों के अन्दर बीज होते हैं, मगर पुष्प नहीं होते। इनके तनों के भाग में विचरने वाला जो रस होता है, उसमें पराग और गर्भकेशर

संयुक्त रहते हैं। प्रायः इनके रस का रङ्ग सुफ़ेद और उसमें चिपकदारपन होता है। सुफ़ेद रङ्ग वाला पराग होता है, और चिपकदारपन वाला गर्भकेशर, जिनकी उत्पादन अवधि में वृक्षों से फलों की उत्पत्ति होती है। और फलों की परिपक्व अवस्था में उनके अन्दर बीजों में उत्पादन शक्ति पैदा होती है। इन वनस्पतियों के तने के हिस्से में जहां रस बाहर की तरफ रचना करता है, वहीं फल पैदा होते हैं।

पराग और गर्भकेशर के योग से पुष्पों में फल उत्पन्न होते हैं। वृक्षों के अंगों में घूमने वाला रस फलों में जमा होता है। फलों की शक्ल गर्भकेशर से बनती है। उन को एक तरह की सूक्ष्म पृथिवी समझना चाहिये। जैसे महापृथ्वी के जल संयुक्त स्थानों में पहिले गर्भकेशर पैदा हुआ था, उसी तरह फलों के रसयुक्त गुद्दों में वृक्षों के सर्वाङ्ग से गर्भकेशर आता है। पराग के सतोगुण तमोगुण और रजोगुण भेदों से फलों में रस भेद होते हैं। तेज तत्त्व के कारण फलों में रसों की परिपक्व अवस्था होती है। वनस्पतियों की जड़ों में जब तेज कोष पैदा होता है, तब फलों में रस परिपक्व होते हैं।

सूक्ष्म पृथ्वी रूप फलों में तेज, जल, पृथिवी, वायु और आकाश तत्वों के कारण गर्भकेशर और पराग के संयुक्त होने से बीजों की रचना होती है। उन के संयोग से फलों के अन्दर बीजों की रचना ठीक उस सम्बन्ध से होती है, जैसे वनस्पति-सृष्टि के आरम्भ में पराग और गर्भकेशर पृथ्वी में संयुक्त होकर

वनस्पति उत्पादन शक्ति बने थे। फलों के भी मुख्य चार प्रकार के रंग होते हैं सुफेद, काला, पीला और लाल।

वनस्पति-सृष्टि के आरम्भ में जैसे चन्द्रमा से मुख्य चार प्रकार के पराग, गर्भकेशर के पृथक् पृथक् अँशों में संयुक्त होने से पृथिवी में चार प्रकार की वनस्पति-उत्पादन बीज बने थे, वैसे ही समस्त वनस्पतियों में चार प्रकार के बीज पैदा होते हैं।

१ वनस्पतियों की कन्दों (जड़ों) में बीज की उत्पादन-शक्ति पैदा होती है। जैसे, आलू हल्दी कचालू इत्यादि अनेक वनस्पतियों की कन्दों में बीज की शक्ति होती है।

२ वनस्पतियों की गांठों में बीज की शक्ति पैदा होती है, जैसेः—ईख। इस में न तो कन्दवाली वनस्पतियों की तरह कन्द होता है और न फल वाली वनस्पतियों की तरह फल होते हैं, केवल गाण्ठ में बीज की शक्ति पैदा होती है।

३ वनस्पतियों के फलों के गुद्दे में बीज की शक्ति पैदा होती है। जैसेः—गेहूं, जऊं, धान, मक्की, सरसों, ज्वार, बाजरा, मण्डुवा, चना, हरहर, मटर, उड़द, मूंग, सन, अलसी इत्यादि। इन के फलों के गुद्दे में बीज की शक्ति पैदा होती है।

४ वनस्पतियों के फलों के गुद्दे के अन्दर बीज होते हैं। वे किसी के अन्दर गुठलीदार होते हैं और किसी के अन्दर बिना गुठली वाले, जैसे आम खुमानी आरु इत्यादि। इन के बीज गुठलीदार होते हैं। और नारंगी, नींबू, अनार, कद्दू, ककड़ी,

गोदड़ी, तरबूज, खरबूज, अंगूर, अञीर इत्यादि के बीज गुठलीदार नहीं होते। अनार के बीज का छिल्का एक ऐसे ढंग का है, जो गुठलीदार बीजों के छिल्के से हलका और बिना गुठलीवाले बीजों के छिलकों से सख्त होता है। गुठली और बिना गुठली वाले बीजों के छिलकों में सिर्फ पृथिवी तत्व की न्यूनाधिकता होती है। जिन बीजों के छिलकों में पृथिवी तत्व की अधिकता होती है, वे सख्त होते हैं, और जिन के छिलकों में पृथ्वी तत्व की न्यूनता होती है वे हलके होते हैं।

अखरोट और बादाम के फलों के रसदार गुद्दे गुठलियों के अन्दर बीज में होते हैं। पराग और गर्भकेशर का संयोग होने से उन्हीं में उत्पादन शक्ति होती है।

कई वनस्पतियां ऐसी हैं जिनकी कन्दों में भी बीज की शक्ति होती है और तना में भी बीज पैदा होते हैं उन में भी उत्पादन शक्ति होती है। ऐसी वनस्पतियों के बीज गुठलीदार नहीं होते। जैसे बाराहीकन्द, तरड़ी, मुंगई इत्यादि। इन की कन्दों में भी बीज की शक्ति होती है और फलों में भी।

पृथ्वीतल में समस्त वनस्पतियों की कन्दों, गाण्ठों, फलों और गुठलियों व छिलकों के अन्दर पराग और गर्भकेशर के संयोग से उत्पादन शक्ति (चाहे किसी की कन्द में हो, चाहे गाण्ठ में, चाहे फल में, चाहे गुठली और छिलका के अन्दर हो) बनती है। वनस्पतियों में पैदा होने वाले सब प्रकार के बीज चन्द्रमा से प्राप्त होने वाले परागों और पृथ्वी से पैदा होने वाले

गर्भकेशर के योग से बनते हैं । बीजों का स्थूल रूप गर्भकेशर से बनता है और उस में पराग आत्मा रूप से रहता है ।

पञ्च तत्वों की सहायता से सब प्रकार के बीज वनस्पतियों को पैदा करते हैं । चन्द्रमा विभिन्न परागों से समस्त वनस्पतियों को उत्पन्न और पोषण करने वाला परमात्मा है । जैसे जीवों के मायामय अनन्त शरीरों को परमात्मा आत्मा रूप होकर उत्पन्न और पोषित करता है, वैसे ही चन्द्रमा जड़ गर्भकेशर के साथ बीजों में संयुक्त होकर अनन्त पराग भेदों से समस्त वनस्पतियों को जड़ शरीर में उत्पन्न कर पोषित करता है ।

गुणों के कारण वनस्पतियों में मुख्य चार प्रकार के भेद होते हैं:—

पहिला, वनस्पति सृष्टि के आरम्भ में पूर्ण सतोगुणी पराग से अमृत, संजीवनी आदि वनस्पतियां पैदा हुईं । उन के रसों में पूर्ण सतोगुणी रस होने से नाशकारी तमोगुण अंश का लेशमात्र नहीं रहता है । विशेषतया ऐसी वनस्पतियां सृष्टि के आरम्भ में पैदा होती हैं । इन का रस ग्रहण करने से प्राणी मात्र अजर अमर होसक्ते हैं ।

दूसरा, पूर्ण तमोगुणी पराग से मीठा तेलिया आदि हलाहल जहरीली रसदार वनस्पतियाँ पैदा हुईं । उन में पूर्ण तमोगुणी रस होने के कारण, सतोगुण का बिलकुल अभाव होता है । ऐसी वनस्पतियों का रस ग्रहण करने से प्राणी प्राणान्त होते हैं ।

तीसरे, सात प्रकार के रजोगुणी पराग, जिन में सतोगुण विभिन्न भेदों से अधिक और तमोगुण न्यून होता है, उन से उत्पन्न होने वाली वनस्पतियां केला, अंगूर, अनार, मूंग, धान, गेहूं, जऊ, बादाम इत्यादि हैं। इन के रसों में सतोगुण तमोगुण सम्मिलित होते हैं, किन्तु सतोगुण अधिक और तमोगुण न्यून होता है। इसलिये इन वनस्पतियों के रसों को ग्रहण करने से अधिकतर प्राणी आरोग्य, प्रसन्नमन, निर्भययुक्त, बलवान, शुक्रशाली, हृदय में दयावान् और बुद्धिमान्, प्रकाशवान् होते हैं।

चौथे, सातप्रकार के रजोगुणी पराग, जिन में तमोगुण विभिन्न भेदों से अधिक और सतोगुण न्यून होता है, उन से उत्पन्न होने वाली वनस्पतियां, धतूरा, पोस्त, (जिससे अफीम बनती है) भांग, तम्बाखू, लहसन, प्याज, कुल्थ इत्यादि हैं। इन के रसों में मिश्रित तमोगुण, सतोगुण होते हैं, लेकिन तमोगुण अधिक और सतोगुण न्यून होता है। इसलिये इन वनस्पतियों के रसों को ग्रहण करने से प्राणियों में विशेषतया उन्माद, रोग, शोक, क्रोध, निर्बलता, व्यभिचार, भीरुपन, निर्दयता और बुद्धि में अन्धकार उत्पन्न होता है।

इन सब वनस्पतियों की उत्पत्ति इस प्रकार हुई:—चन्द्रमा से प्रथम प्रकाश युक्त पूर्ण सतोगुणी पराग पूर्ण सतोगुणी गर्भकेशर को पृथिवी के जल स्थल संयुक्त पंक स्थान में प्राप्त होकर प्रथम अमृत आदि बूटियां और सुफेद पुष्प वाले कमल पैदा

हुए। उनके पश्चात् चन्द्रमा से पूर्ण तमोगुणी अन्धकार युक्त पराग तमोगुणी गर्भकेशर को प्राप्त होकर उनसे हलाहल जहरीले रस युक्त बूटियां और नील पुष्प वाले कमल पैदा हुए। उनके पश्चात् चन्द्रमा से सात प्रकार के रजोगुणी पराग जिन के योग में सतोगुण अधिक होते हैं, वे पृथिवी की उत्तरायण में पैदा होने वाले गर्भकेशर को प्राप्त हुए, जिनसे केला, अंगूर अनार, हल्दी, पीपल, ईख, श्रीफल, आम, चन्दन, धान इत्यादि बहुत सी बनस्पतियां उत्पन्न हुईं।

उनके पश्चात् चन्द्रमा से सात प्रकार के रजोगुणी पराग जिन में तमोगुण अधिक होते हैं, वे पृथिवी के दक्षिणायण में उत्पन्न होने वाले गर्भकेशर को प्राप्त हुए, जिनसे धतूरा, अफीम भाङ्ग, तम्बाखू, लहसन, प्याज, कुल्थ इत्यादि अनन्त बनस्पतियां पैदा हुईं। इसी प्रकार समस्त बनस्पतियों में गुणों के अनुसार मुख्य चार प्रकार के भेद होते हैं। उनमें से जो दो प्रकार की रजोगुण रस युक्त बनस्पतियां हैं, उनके रसों में सतोगुण और तमोगुण की न्यूनाधिकता से रसों में रजोगुण के मुख्य दो ही भेद होते हैं, सतोगुण और तमोगुण।

चन्द्रमा के शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष के सम्बन्ध से (पराग और गर्भकेशर के संयोग से पैदा होने वाली) बनस्पतियों के जड़ और तने के अंगों में रसों के भ्रमण करने की दो गतियां होती हैं। शुक्लपक्ष में तना के भाग में विचरने वाले रस में मीठापन और जड़ के भाग में कड़वापन होता है। किन्तु कृष्ण

पक्ष में तना के भाग के रस में कड़वापन और जड़ के भाग में मीठापन होता है।

इसी प्रकार शुक्ल और कृष्णपक्ष के सम्बन्ध से बनस्पतियों में मीठे और कड़वे रस तनों और जड़ों के अंगों में बराबर घूमते रहते हैं। शुक्लपक्ष में तना के भाग में मीठे रस का चढ़ाव, जड़ के भाग में कड़वे रस का उतराव और कृष्णपक्ष में तने के भाग में कड़वे रस का चढ़ाव, जड़ के भाग में मीठे रस का उतराव होता है। इसी तरह समस्त बनस्पतियों में रसों का चढ़ाव उतराव होता रहता है। उन रसों का यथार्थ बोध हमारी जिह्वा नहीं कर सकती, एक प्रकार की छोटी छोटी कीड़ियां कर सकती हैं। शुक्लपक्ष में बनस्पतियों के तनों का भाग काटने से मीठेपन के कारण उन पर कीड़ियां लगती हैं और कृष्णपक्ष में काटने से कड़वे रस के कारण उन पर कीड़ियां नहीं लगती।

गर्भकेशर के सतोगुण, तमोगुण, रजोगुण भेदों से बनस्पतियां तीन प्रकार की होती हैं। उनमें से एक तरह की बनस्पतियां ऐसी हैं, जो उत्तरायण के गर्भकेशर में पैदा होकर बीजों के परिपक्व होने तक जीवित रहती हैं। उसके पश्चात् वे धीरे धीरे सूख कर विनाश हो जाती हैं। उन बनस्पतियों के सर्वाङ्ग में विचरने वाले पराग और गर्भ केशर बीजों में समाने पर बीज परिपक्व होते हैं। उनमें पैदा होने वाले बीज चाहे तने के भाग में हों चाहे जड़ के भाग में। बीजों के परिपक्व होने पर वे सर्वाङ्ग सहित सूख कर विनाश हो जाती हैं। जैसे धान, मक्की, ज्वार, मूंग अरहर, ककड़ी, कद्दू, तोरिया, खरबूजा, तरबूज इत्यादि। इन

के बीज तने के भाग में होते हैं। और हल्दी, आलू, विदारीकन्द आदि अनेक बनस्पतियों के बीज कन्दों में होते हैं।

विशेषतया ये बनस्पतियां उत्तरायण में पैदा होती हैं और बीजों के परिपक्क होने पर धीरे धीरे सूखकर विनाश होजाती हैं।

दूसरे प्रकार की बनस्पतियां दक्षिणायण के गर्भ केशर में पैदा होकर बीजों के परिपक्क होने तक जीवित रहती हैं, पश्चात् धीरे धीरे सूखकर विनाश होती हैं। उन बनस्पतियों का पोषण करने वाले पराग और गर्भ केशर बीजों के परिपक्क होने पर, बीजों में समा जाते हैं। उनमें भी पैदा होने वाले बीज किसी के तने में होते हैं और किसी के जड़ में। जैसे गेहूं, जौ, मटर, मसूर, सरसों, लाई, ल्हसण, प्याज, तम्बाखू, पोस्त आदि अनन्त बनस्पतियां ऐसी हैं जो प्रायः दक्षिणायण में पैदा होती हैं और बीजों के परिपक्क होने पर वे सूख कर विनाश होजाती हैं।

तीसरे प्रकार की जो बनस्पतियां हैं, वे इन दोनों प्रकार की बनस्पतियों की तरह बीजों के परिपक्क होने पर विनाश नहीं होतीं। वे अपनी आयु में कितने ही बार फल और बीजों को पैदा करती हैं। जैसे आम, अनार, खुमानी, आड़ू, अमरूद, लीची, लुकाट, सेव, नास्पाती, चीड़, बांज, सागून, देवदार, साल, नारङ्गी, नींबू, अञ्जीर इत्यादि अनन्त बनस्पतियां ऐसी हैं, जो अपनी आयु में फल और बीजों को कई बार पैदा करती हैं।

उत्तरायण और दक्षिणायण के सम्बन्ध से इन बनस्पतियों के तने और जड़ के सर्वाङ्ग में विचरने वाले रस में दो तरह के

भेद होते हैं । उत्तरायण में जब पृथिवी का गर्भ केशर सतोगुण ग्रहण करता है, तब उनमें जो सोमरस (प्राणपद रस) होता है, वह भी सतोगुण गति में प्रवृत होता है । जैसे चन्द्रमा शुक्लपक्ष में सतोगुण गति धारण करता है, वैसे ही पराग सतोगुण गति धारण कर प्रथम जड़ के जल कोष में प्रवेश करता है । वहां पराग और गर्भ केशर के सतोगुण का योग होने से सोमरस बनता है ।

जल कोष से वह तने के भाग में पहुंच कर कोंपलियों को उत्पन्न करता है । पराग जड़ के जलकोष से धीरे धीरे वायु कोष में प्रवेश करता । उसके प्रभाव से सोमरस कोंपलियों में पत्तियों की उत्पत्ति करता है । पत्तियों में वायु शोषण की विशेष शक्ति होती है ।

पराग वायु कोष से फिर धीरे धीरे गन्धकोष में जाता है । उसके प्रभाव से तनों के भाग में पुष्प उत्पन्न होते हैं और पुष्पों में गन्ध पैदा होती है । पराग गन्ध कोष से फिर तेजकोष में जाता है, जिससे तनों के भाग में सोमरस के कारण फलों की उत्पत्ति होकर धीरे धीरे उनके गुद्दे परिपक्क होते हैं । फलों में रस (सोमरस) के परिपक्क होने पर उसके साथ पराग और गर्भ केशर संयुक्त होकर बीजों में उत्पादन शक्ति पैदा करते हैं । बीजों में बनस्पतियों के समस्त आकार विस्तार रूप, रङ्ग, रस, गुण सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहते हैं । उनके परिपक्क होने पर सोमरस बनस्पतियों के सर्वाङ्ग से फलों में जमा हो जाता है और उनके सर्वाङ्ग में तमोगुणी रस रह जाता है ।

वह अपने विनाश गुण से बीजों के परिपक्क होने के पश्चात् कोंपलें, पत्ते, पुष्प और फलों को तनों से पतित कर तनों के अंग प्रतिअंगों में उतरते हुये दक्षिणायण के आरम्भ में जड़ के भाग में प्रवेश करता है। उसी काल में वृक्ष पतझड़ होते हैं। रस जड़ के भाग में उतर कर दक्षिणायण में जड़ के विस्तार को बढ़ाता और फैलाता हैं। फिर दक्षिणायण के अन्त और उत्तरायण के आरम्भ में वनस्पतियों को जीवित रखने वाला पराग सतोगुण धारण करता है और वनस्पतियों में फिर सोमरस की उत्पति हो कर वे फूलती फलती हैं। वे वनस्पतियां प्रथम वनस्पतियों की तरह बीजों के परिपक्क होने पर विनाश नहीं होतीं। वे अपनी अवस्था में उपरोक्त क्रम से कई बार फल और बीजों को पैदा करती हैं।

समस्त बनस्पतियों में सोमरस के प्रधान छै भेद होते हैं। अर्थात् मीठा, कड़वा, खट्टा, चलमला, खारा और चरपरा। बाकी समस्त रस इन्हीं रसों के योग भेद से वनस्पतियों में पैदा होते हैं। परागों के मुख्य ४ भेद होते हैं और गर्भकेशर के दो भेद, इन्हीं छै भेदों से उपरोक्त छै रस पैदा होते हैं।

समस्त वनस्पतियों में तनों और जड़ों की शक्लें दो तरह की होती हैं। वनस्पति सृष्टि में कुछ वनस्पतियां ऐसी हैं, जिन के तनों के भाग में टहनियां नहीं होतीं, जैसे ईख, मक्की, गेहूं, जऊ, धान, मण्डवा इत्यादि। और कुछ वनस्पतियां ऐसी हैं, जिन के तने के भाग में टहनियां होती हैं, जैसे आम, अनार, बादाम,

खुमानी आड़ू इत्यादि । तने की तरह उन में जड़ें भी दो प्रकार की होती हैं ।

कुछ वनस्पतियों की सिर्फ एक जड़ होती है, जैसे गाजर, मूली शलगम इत्यादि । ऐसी जड़ों को मूसल जड़ कहते हैं । और कुछ वनस्पतियों की जड़ें पृथ्वी के अन्दर जाल की तरह फैली होती हैं, जैसे आम, अनार, अंजीर, नारंगियां इत्यादि । ऐसी जड़ों को झकरा जड़ कहते हैं ।

समस्त वनस्पतियों के बीजों में सूक्ष्म रूप से जैसा स्वाद युक्त रस होता है, वह बृक्ष रूप में प्रवृत होकर (चन्द्रमा, पृथ्वी, जल से) वैसा ही रस ग्रहण करता है । और बीज में सूक्ष्मता से जैसा रंग विद्यमान रहता है, बृक्षों में उसी का प्रकाश होता है । सुमेरु स्थान के पश्चात् जल से जैसे जैसे पृथ्वी के अन्यभाग उत्पन्न हुये, उन सब में वनस्पतियां पैदा हुईं, इसी तरह पृथ्वी में समस्त वनस्पतियों की उत्पत्ति हुई ।

उत्तरायण और चन्द्रमा के शुक्ल पक्ष में वनस्पतियों में सोमरस का चढ़ाव होता है । दक्षिणायण और कृष्णपक्ष में सोमरस का उतराव होता है । लेकिन उत्तरायण और शुक्ल पक्ष में वनस्पतियों में उर्वरा शक्ति न्यून रहती है । इसलिये उन मे वनस्पतियों के शरीर अधिक दृढ़ नहीं रहते । दक्षिणायण और कृष्णपक्ष में वनस्पतियों में उर्बरा शक्ति सबल होकर रहती है । इसलिये उन में वनस्पतियों के शरीर अधिक दृढ़ रहते हैं ।

॥ इति ॥

ओ३म् शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

विद्वानों की सम्मतियां।

श्री ब्रह्मचारी चेतनस्वरूप जी वेदान्ताचार्य, दर्शनाचार्य, न्यायाचार्य, हृषीकेश--

विश्वदिग्दर्शन संज्ञक पुस्तक श्रीमान् पं० रामरत्न जी का उपज्ञ है। मैंने इस ग्रन्थ को आदि से अन्त तक सावधान मन से श्रवण किया, प्रत्येक विषय का निरूपण अश्रुतपूर्व प्रक्रिया से हुआ है। ग्रन्थकर्त्ता का मुख्य तात्पर्य्य अखण्डैकरस सच्चिदानन्द ब्रह्म में है। सृष्टि की तथा सृष्ट्यन्तर्गत व्यष्टियों की उत्पत्ति स्थिति प्रलय का वर्णन विलक्षण रूप से किया गया है, जिससे सुनकर आश्चर्य्य होता है। तथापि यह कृति साध्वी है।

यया यया भवेत् पुंसां व्युत्पत्तिः प्रत्यगात्मनि।
सा सैव प्रक्रियेह स्यात् साध्वी सा चानवस्थिता॥

ग्रन्थकर्त्ता ने इस प्रकिया को अपने मन से कल्पना नहीं किया है, किन्तु आजानसिद्ध सूर्य्यसंयम से हुई संप्रज्ञात समाधि में इनको जैसा जैसा त्रिभुन का साक्षात् हुआ है, उसी को इन्होंने ग्रन्थ में निवद्ध किया है। वह भी अंशतः, साकल्येन नहीं। क्योंकि आप कहते हैं कि "मैं जो कुछ देखता हूं, सारे को जन्मभर लिख कर भी निवद्ध नहीं कर सकता, थोड़े से थोड़ा लिखता हूं" इस वचन से यह उनके ज्ञान का ज्ञेयैक देश मात्र है। इसलिये सर्व शास्त्र के विषयों को सर्व शास्त्र से

विलक्षण रीति से प्रतिपादन किया गया है। विशेषतः सृष्टि की उत्पत्ति के चिन्तक प्राच्य और पाश्चात्य वैज्ञानिक लोग, प्राचीन और नवीन गणक, भू और खगोल के तत्ववेत्ता, शरीर रचना सम्बन्धी विज्ञान में विशारद तथा वनस्पति विद्या में दक्ष लोग इस ग्रन्थ को पढ़कर चकित और व्यपगत-मद होंगे।

पं० जी को हम धन्यवाद देते हैं और जनता से आग्रह करते हैं कि वह इस ग्रन्थ को सादर पढ़े और मनन करे। यद्यपि इस प्रकार का यह प्रथम ग्रन्थ है और स्थल स्थल पर समझने के लिये विशेषतः व्याख्या सापेक्ष है, तथापि ग्राह्य है।

श्री स्वामी तपोवनम् जी हृषीकेश क्षेत्र—

श्रीमान् पं० रामरत्नजी का लिखा हुआ विश्वदिग्दर्शन नामक ग्रन्थ को मैंने देखा है। उसमें एक विलक्षण नवीन शैली से विश्व सृष्टि का निरूपण करते हैं, ग्रन्थ जो समीचीन और निर्दोष रीति से अपने विषय को प्रतिपादन करता है।

पं० जी की प्रतिभा और विचार--शक्ति प्रशंसनीय है। आशा करता हूं कि इससे पाठक वर्ग उपकार उठायेंगे।

आदि अन्त मैंने विशेष करके देखा है। ग्रन्थ वैज्ञानिक और आध्यात्मिक विषय का प्रतिपादक होने से ऐसे ग्रन्थ के प्रचारण में सज्जनों का प्रोत्साहन अवश्य होना चाहिये।

श्री गोस्वामी गणेशदत्त जी प्रधान मन्त्री अ० भा० सनातनधर्म महासभा बनारस—

श्रीमान पं० रामरत्न थपल्याल के निर्माण किये हुये विश्व-दिग्दर्शन नामक पुस्तक को देखा। इस पुस्तक के सम्बन्ध में मेरे मित्रवर्ग ब्रह्मचारी चेतनस्वरूप व स्वामी तपोवनम् विद्वान अनुमति दाताओं ने अच्छी सम्मति दी है। जिनके आधार पर मैं इस पुस्तक का पूर्णतया समर्थन करता हूं कि यह नवीन विचार की पुस्तक जनता के लिये बड़ी लाभ दायक है।

श्री पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए० चीफ जज टिहरी—

मैंने श्रीमान् पं० रामरत्न थपल्याल कृत विश्वदिग्दर्शन का बहुत सा भाग पढ़ा है। जैसा नाम ही से प्रकट है, पुस्तक में विश्व रचना और तत्व सम्बन्धी अनेक बातों का वर्णन है। ग्रन्थकारक का कहना है कि उन्होंने जो कुछ लिखा है अनुभव का साक्षात् करके लिखा है। यह बात विचित्र है। पुस्तक में अन्य किन्हीं ग्रन्थों का सहारा लेना प्रकट नहीं होता। कुछ बातें जैसे सूर्य्य-ग्रहण चन्द्र-ग्रहण का कारण राहु केतु, चन्द्रमा का सूर्य्य की परिक्रमा करना, चन्द्रमा का पृथ्वी से बड़ा होना, उसकी पृथ्वी से दूरी इत्यादि वैज्ञानिकों की खोज के प्रतिकूल है। तो भी पुस्तक विलक्षण और देखने योग्य है।

हिन्दी प्रचारिणी सभा शिमला—

इस में किञ्चित् मात्र भी सन्देह नहीं है कि श्री पं० रामरत्न जी थपल्याल ने इस ग्रन्थ को लिख कर बड़े साहस और उपकार का कार्य्य किया है। पुस्तक के अवलोकन से प्रतीत होता है कि सब समावेश पण्डित जी की मानसिक शक्तियों का सङ्गठन है। इस पुस्तक के लिये उन्हों ने, जैसा कि उनका कथन है, किसी अन्य ग्रन्थ की सहायता नहीं ली, केवल अपने बुद्धिबल द्वारा ही सब विचार गणित-क्रियाओं के फलाफल का निरूपण किया है।

इस ग्रन्थ में शरीररचना, तत्वविज्ञान, खगोल, वनस्पति विद्या इत्यादि विषयों पर प्रकाश डाला है। हिन्दी प्रचारिणी सभा को प्रसन्नता है कि उन्हें इस पुस्तक को इस स्थिति में देखने का अवकाश प्राप्त हुआ है। पण्डित जी ने पुस्तक को रोचक बनाने का भरसक प्रयत्न किया है और वे इस में पूर्ण सफल हुये हैं। पुस्तक अभिनन्दनीय है। पुस्तक की भाषा सरल और सुमानी है। विद्वान समुदाय इस ग्रन्थ से बहुत कुछ लाभ प्राप्त कर सकता है। जनता इस को अपना कर लाभ उठायेगी।

श्री पं० नरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ महाविद्यालय ज्वालापुर, हरद्वार—

विश्वदिग्दर्शन तो अनुभव की बात है, जो देखने की शक्ति रखता है। ग्रन्थ के देखने से स्पष्ट है कि लेखक ने चिरकाल

तक पूर्ण अनुभव के पश्चात् अपना मन्तव्य प्रकाशित किया है। तथापि लेखक महोदय ने इस गहन तत्व को प्रकट करने का पूर्ण प्रयत्न किया है। तदर्थ धन्यवाद के पात्र हैं।

श्री पं० गयाप्रसाद जी शुक्ल एम० ए०, प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज देहरादून—

पण्डित रामरत्न थपल्याल ने अपनी "विश्वदिग्दर्शन" पुस्तक लिख कर हिन्दी का बहुत उपकार किया है। यह पुस्तक तत्व विज्ञान, शरीर रचना, खगोल, वनस्पति विद्या इत्यादि विषयों का बड़े मार्मिक ढंग से विवेचन करती है तथा मौलिक विचारों से पूर्ण है। आशा है हिन्दी जगत् में इसका यथेष्ट आदर होगा।

श्रीपण्डित गजाधर जी डबराल, तिमली बानप्रस्थ, कैलाश आश्रम—

श्रीयुत पं० रामरत्न जी की निर्मित विश्वदिग्दर्शन पुस्तक के अवलोकन से प्रतीत होता है कि इस प्रकार की पुस्तक का लिखना विना दूसरे ग्रन्थों की सहायता के असम्भव नहीं तो बहुत कठिन जरूर है, और यह प्रमाणित है कि यह पुस्तक पं० जी के मानस-सरोवर की स्वतन्त्र धारा है। इसलिये मैं पं० जी की बुद्धिमता व ज्ञान की प्रशंसा के साथ आपके बुद्धि--विलास के वास्ते परमात्मा से प्रार्थना करता हूं। और यह भी अनुमान

करता हूं कि यदि पं० रामरत्न जी को सत्पुरुषों द्वारा पूरा उत्साहित किया जाय तो इस लेख से यह भी प्रमाणित होता है कि इनके हृदयागार में इससे और भी अधिक भण्डार है, वह भी लोकोपकारार्थ विकसित हो जावेगा।

मैं सहर्ष अपनी अनुमति प्रकट करता हूं कि यह पुस्तक सर्व साधारण के उपयोगी है।

श्री पं० हरिदत्त जी शास्त्री, राजगुरु विद्यारत्न टिहरी-

प्रायः समय २ पर विद्वानों के अभिनव आविष्कार निबन्ध आदि देखने का सुअवसर मिल जाता है। किन्तु आज पं० रामरत्न थपलियाल जी का विश्वदिग्दर्शन (जोकि उनकी तपस्या या इष्टोपासना का फल मुझे ज्ञात हो रहा है) पढ़ने से मुझे अत्यन्त आनन्द हुआ यद्यपि उक्त पं० जी ने इस अपने आविष्कार को किसी दूसरे आचार्य्य प्रणीत ग्रन्थ का अनुयायी नहीं रक्खा है, केवल इस ब्रह्माण्ड की रचना जो उनको इष्टदेव के प्रसाद से अनुभव हुई, उसे वैज्ञानिक प्रणाली पर चारुरूप से सिद्ध कर दर्शाया है। पाठक इसके पढ़ने से इस आविष्कार की उच्चता समझ लेंगे। मैं उस चित् शक्ति से प्रार्थना करता हूं कि इस ग्रन्थ से हमारे भारतीय पूर्ण लाभ उठाकर पं० जी को यशस्वी बनावेंगे।

श्री पं० राघवाचार्यजी शास्त्री विद्यालङ्कार मुख्याधिष्ठाता दर्शन महाविद्यालय, मुनिकी रेती—

महात्मा रामरत्न ने विश्वदिग्दर्शन नाम का कोई पुस्तक बनाया है। वह मैंने देखा है। उसमें जो पद्धति दिखाई है, उसको देखकर हम अनुमान करते हैं कि इन्होंने कोई सिद्धि को प्राप्त करके उक्त ग्रन्थ बनाया। और इन्होंने लोकोत्तर बुद्धि को प्राप्त कर नई शैली से (नहीं होता हुआ भी ऐसा) ग्रन्थ लोगों को प्रसन्नता के लिये बनाया। उक्त ग्रन्थ अति उपकारक प्रतीत होता है। और इस ग्रन्थ में अद्वैत को लेकर के सम्पूर्ण तत्वों को दिखलाया है। इसलिये उक्त शास्त्र बड़ा उपकारक है।

